Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राग जिज्ञासा

[मोक्षमूलक सङ्गीत का आध्यात्मिक विवेचन]

देवेन्द्रनाथ शुक्ल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"उत्तर में 'राग, रागिनी, पुत्र, भार्या' ऐसी राग रचना का वर्णन करने वाले ग्रन्थों पर भी हमने थोड़ी-बहुत टीका की थी। यह टीका हमने किसी दोष दृष्टि से नहीं की। अपितु हमारे कहने का आशय इतना ही था, कि वह रचना उस काल में कौन से तत्त्वों पर की गई थी, इसका स्पष्टीकरण ग्रन्थों में नहीं मिलता। पुन: आज के रागस्वरूप ग्रन्थों के रागस्वरूपों से सर्वथा भिन्न हो जाने के कारण वह प्राचीन रचना आज असुविधाजनक होगी।"

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग ४, पृ० ७२९

"यह सब हमारे जीवन में तो कैसे होगा? प्रत्येक पीढ़ी को इस पवित्र कार्य में यथाशक्ति, यथामति सहयोग देना चाहिए, ऐसा ईश्वरीय सङ्केत है।"

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग ४, पृ० ६६१

पं० विष्णुनारायण भातखण्डे द्वारा किया गया पीढ़ियों का आह्वान व्यर्थ नहीं गया। आह्वान से प्रेरित आचार्य बृहस्पति ने महर्षि भरत द्वारा निर्दिष्ट श्रुति, स्वर, ग्राम और मूर्च्छना पद्धति का सप्रयोग स्पष्ट करके सङ्गीतजगत् की अविस्मरणीय सेवा की। अत: पूर्व, विदेशी सङ्गीतज्ञों के मत से प्रभावित भारतीयों ने भी भरतोक्त, निर्विवाद मूर्च्छना-पद्धति को जटिल, दुर्बोध तथा अप्रयोज्य कहकर इससे पिण्ड छुड़ा लिया था। आचार्य बृहस्पति तथा ठा० जयदेव सिंह के समकालीन अनेक भारतीय, अभारतीय विद्वानों ने अपनी रुचि, ज्ञान और साधन सीमा के अनुसार भारतीय सङ्गीत की मूल्यवान् सेवा की। निस्सन्देह बीसवीं शती भारतीय सङ्गीत के सर्वतोमुखी विकास की शती है। शास्त्र, सिद्धान्त, तदनुयायी क्रियापक्ष, पर्याप्त परिष्कृत रूप में उपस्थित किए गए।

10-4

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनाहत का स्फुरण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राग जिज्ञासा

[मोक्षमूलक सङ्गीत का आध्यात्मिक विवेचन]

लेखक
देवेन्द्रनाथ शुक्ल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

RAG JIGYANSA

by

Devendranath Shukla

प्रथम संस्करण : २००१ ई०

मूल्य : ३०० रुपये

प्रकाशक

देवेन्द्रनाथ शुक्ल

शुक्ल निकेत

सी० १७९-४५३ बेतिया हाता

गोरखपुर-२७३ ००१

वितरक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी-२२१ ००१

फोन व फैक्स : (०५४२) ३५३०८२, ३५३७४१

E-mail : vvp@vsnl.com ● E-mail : vvp@ndb.vsnl.net.in

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-२२१ ००१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

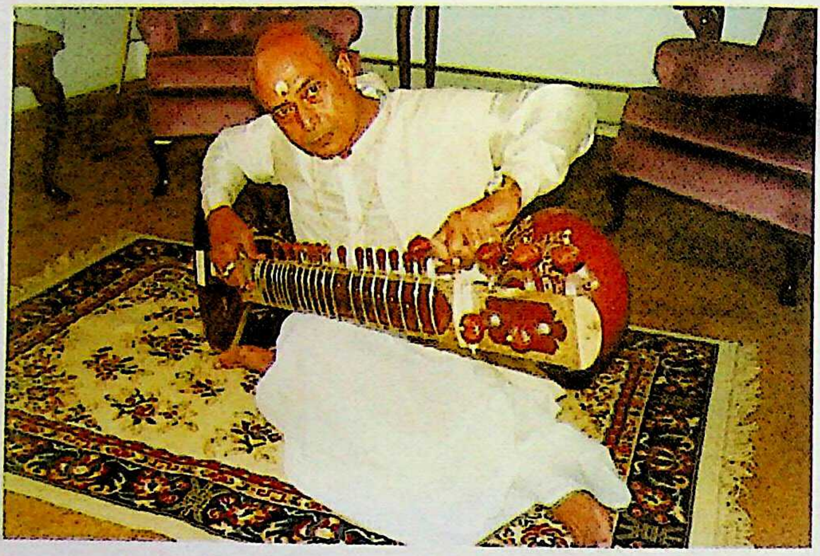

देवेन्द्रनाथ शुक्ल

लेखक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देवेन्द्रनाथ शुक्ल

संस्कृत भाषा के ज्ञाता।

सङ्गीतशास्त्र के विशेषज्ञ।

उत्तर प्रदेश के नगर गोरखपुर की सङ्गीत संस्था 'रागश्री' के दस वर्षों तक मनोनीत अध्यक्ष।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्वक्षेत्रीय, अन्तर्विश्वविद्यालयीय, युवा सङ्गीत समारोह के निर्णायकों में एक, नवम्बर १९८९ ई०।

सन् १९७५-७६ ई० में आकाशवाणी, गोरखपुर द्वारा ११ श्रेणियों की 'पुरानी यादें' के प्रसारक। 'पुरानी यादें' लगभग एक सौ वर्षों के गायन-वादन की व्याख्या सहित सोदाहरण प्रस्तुति थी।

श्री ५ महाराजाधिराज महेन्द्रवीर विक्रम शाहदेव (अधिराज्य नेपाल) के समक्ष सितार वादन कर्ता।

वॉयस ऑफ अमेरिका द्वारा साक्षात्कार और सितार वादन प्रसारित किया गया, २० जनवरी १९९१ ई०।

कोलोराडो, बोल्डर (U.S.A.) में आयोजित, विश्वव्यवहार विषयक ४५वीं वार्षिक (अप्रैल १९९२ ई०) सभा के आमन्त्रित सभासद। सभा में 'The Indian Music and Peace' शीर्षक निबन्ध के सोदाहरण प्रस्तुतकर्ता।

१४ अगस्त १९९२ के कार्यक्रम के उपलक्ष्य में लिखित पंक्तियाँ, The Breckenridge Music Institute extends grateful thanks to the following.......

.......D. N. Shukla for a fascinating program and performance.

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा आचार्य नरेन्द्रदेव नामित पुरस्कार प्राप्त, 'ब्राह्मण समाज का ऐतिहासिक अनुशीलन' ग्रन्थ के प्रणेता। उक्त ग्रन्थ अमेरिकन कांग्रेस लाइब्रेरी, कोलोराडो U.S.A. द्वारा संगृहीत है।

नृतत्त्वीय पुरातत्त्व (Anthropoarchaeological) के अनुपम निदर्शक ग्रन्थ 'एक संस्कृति : एक इतिहास' के रचयिता।

गोरखपुर युगल जूनियर चैम्बर-२००० द्वारा दिनांक १५ अगस्त को शाल, प्रतीक-चिह्न आदि द्वारा, सङ्गीतसेवा के उपलक्ष्य में सम्मानित।

सम्प्रति, निःशुल्क सङ्गीत शिक्षा और लेखन।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

केसरकुमारी

पितृव्यायाः स्मृताविष्टां, रागजिज्ञासिकामिमाम्।
केसरकुमार्याः शुक्लो, देवेन्द्रोऽर्पयते मुदा॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संवाद

सुधी पाठक!

पूरी पुस्तक में 'मैं' को स्थान नहीं दिया गया है। किन्तु समस्त विस्तार का मूल 'एकोऽहम्' है। अतः आशा है, इस प्रारम्भिक 'मैं' को अन्यथा नहीं लेंगे। अच्छा है, बात शुरू से ही शुरू की जाय। मैं गाँव में पैदा हुआ। वहीं पला-बढ़ा। चाचा जी विश्वम्भरनाथ शुक्ल, सितार, बाँसुरी, हारमोनियम और वायलिन बजाते थे। नित्य-नियमित। मेरा शैशव इन वाद्यों की आकृति और ध्वनि से परिचित हो चुका था। सभी वाद्यों में मुझे सितार की ध्वनि सबसे अधिक आकर्षित करती थी। अकस्मात् दो दिन की बीमारी में चाचाजी का देहान्त हो गया। अभी मैं पाँच बरस का भी नहीं हुआ था।

दिन बीते। मैं आठ बरस का हुआ। प्रबल जिज्ञासा जन्मजात थी। अब भी बनी हुई है। वयस्कों, वयोवृद्धों की बातें बड़े ध्यान से सुनता था। किसी से सुना, फुनगिलास बाजा एकदम आदमी की तरह गाता है। हूबहू। दौड़ा-दौड़ा चाचीजी (केसर कुमारी) के पास पहुँचा। ये मिर्ज़ापुर के प्रतिष्ठित पाण्डेय परिवार की कन्या थीं। ज़िला जज पं० रामावतार पाण्डेय की पौत्री। चाचीजी से पूछा— चाची! कोई बाजा आदमी की तरह गा सकता है क्या? यद्यपि चाचीजी का बचपन चोंगेवाले ग्रामोफोन से खेलते बीता था तथापि मुझे चकित करने के उद्देश्य से उन्होंने कहा—क्या मालूम? मिर्ज़ापुर जाऊँगी तो पता करूँगी।

कुछ दिनों बाद चाचीजी मिर्ज़ापुर गईं। वापस आईं। साथ लाईं, कुत्ता छाप 'हिज़ मास्टर्स वायस' ग्रामोफोन और बहुत से रिकार्ड। इनमें ड्रामा-सीता बनवास, ग़ज़ल, क़व्वाली, भजन, कजरी, चैती आदि के रिकार्डों के साथ प्रो० इनायत ख़ाँ, सितारिये, उ० फ़ैयाज ख़ाँ, पं० विनायक राव पटवर्धन, पं० ॐकारनाथ ठाकुर, गंगूबाई हंगल, प्रो० निसार हुसैन ख़ाँ आदि के रिकार्डों के साथ नारायणराव व्यास और उस्ताद अब्दुल करीम ख़ाँ की गायी, 'पिया बिन नाहीं आवत चैन' ठुमरी झिंझोटी का प्रसिद्ध रिकार्ड भी था। यूँ तो मुझे सङ्गीत की सभी विधाएँ पसन्द थीं किन्तु 'पक्के गाने-बजाने' का स्थान सर्वोपरि था। शास्त्रीय सङ्गीत की श्रेष्ठता मेरे मन में इन्हीं रिकार्डों द्वारा अङ्कित की गई।

इन्हीं दिनों मैंने बाँसुरी बजाना शुरू कर दिया। बिना किसी से समझे-सीखे। मात्र चींचीं-पींपीं। बिना गुरु के आगे बढ़ पाने का सवाल ही नहीं था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बस्ती ज़िले के प्रसिद्ध रईसों में एक चेतिया गाँव के त्रिपाठी जी थे। इनके गाँव में कुछ कथक परिवार स्थायी रूप से आबाद थे। इनमें एक थे कथक शिवनाथ। ये सितार बजाते थे। पिताजी ने इनको मुझे सितार बजाना सिखाने के लिए नियुक्त किया। यह क्रम केवल दो महीने तक चला। सन १९४५ ई० में पिताजी को काशी लाभ हो गया। सन १९४६ ई० में मैंने बैटरी से बजने वाला रेडियो ख़रीदा। शास्त्रीय सङ्गीत सुनने का स्थायी माध्यम। सुनकर राग केवल पहचाने जा सकते हैं। क्षेत्रीय प्रसिद्धिप्राप्त हारमोनियम वादक भागीरथी तिवारी (भागी मास्टर) ने हारमोनियम शुरू करवाया। ये मेरे प्रश्नों को उत्तरित कर सकने में समर्थ नहीं थे। गोरखपुर के शाहसाहब बेजोड़ हारमोनियम वादक प्रसिद्ध थे। पूरा नाम आत्माराम शाह कपूर। इनसे लगभग एक बरस तक हारमोनियम सीखता रहा। भैरवी, तोड़ी, मुल्तानी, झिंझोटी, पीलू और भीमपलासी आदि। किन्तु रेडियो द्वारा प्रसारित सरोद, सितार, वीणा, सारङ्गी और गायकों द्वारा प्रस्तुत रागों की तुलना में हारमोनियम पर बजाये गए राग कहीं ठहरते नहीं थे।

एकदिन शाहसाहब ने कहा—नाथजी! (ये मुझे मेरे नाम के उत्तरार्ध से सम्बोधित करते थे) चलिए, लखनऊ चलते हैं। लखनऊ में मुझे लिये, शाह साहब उस्ताद यूसुफ़अली ख़ाँ के घर पहुँचे। ख़ुद कुछ दिनों बाद गोरखपुर से जालन्धर की ओर चले गए। अर्सए दराज़ बाद शाह साहब का ख़त मिला। लिखा था—नाथजी! जब मैंने देख लिया कि आप सङ्गीत में गहराई से पैठना चाहते हैं तो मैंने आप को लखनऊ ले जाकर एक मुनासिब उस्ताद से मिला दिया। उस्ताद यूसुफ़अली खाँ की चर्चा प्रस्तुत ग्रन्थ के 'घराना' प्रकरण के अन्तिम पृष्ठों में है।

उस्ताद यूसुफ़अली ख़ाँ से मिलने के बाद शिक्षक की तलाश समाप्त हो गई। उस्ताद से बहुत सी बातों का ज्ञान हुआ। किन्तु सहजात जिज्ञासा काहे को शान्त बैठने देती। ग्रामोफोन रिकार्ड, टेप, 'सङ्गीत' मासिक पत्र, हाथरस से प्रकाशित विविध ग्रन्थ, भातखण्डे साहित्य, आचार्य वृहस्पति-समग्र, अन्यान्य देशी-विदेशी सङ्गीत-ग्रन्थ, पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, अधिकारी सङ्गीत-विद्वानों के लेख आदि का संग्रह बढ़ता रहा। एक प्रश्न का समाधान और तीन प्रश्नों के जन्म का क्रम पिछले ५० वर्षों से निरन्तर बना हुआ है, किन्तु अब समाधान की सामर्थ्य पर प्रश्न चिह्न लगता जा रहा है।

यह ऐतिहासिक सत्य है, कि पन्द्रहवीं शती के पश्चात् अध्यात्म के अतिरिक्त प्रत्येक क्षेत्र में हमारा घोर पराभव हुआ है। उपासना का सशक्त माध्यम सङ्गीत भी इस का अपवाद नहीं है। १९वीं शती के उत्तरार्ध में भारतेन्दु बाबू

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हरिश्चन्द्र ने अत्यन्त अल्पावधि में अपनी लेखनी द्वारा हमारी मोहनिद्रा भङ्ग करने का अथक प्रयत्न किया है। यावज्जीवन। समकालीन सङ्गीत को देखते हुए उनके लिखे एक लेख की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—"गाना, बजाना, बताना (केवल नृत्य मुद्राओं द्वारा) और नाचना इसके समुच्चय को सङ्गीत कहते हैं। प्राचीन काल में भरत, हनुमत्, कल्लिनाथ और सोमेश्वर यह चार मत सङ्गीत के थे। कोई-कोई शारदा, शिव, हनुमत् और भरत यह चार मत कहते हैं।" "और जहाँ राग-रागिनियों के ध्यान, रूप, क्रिया आदि लिखे हैं, उनका आशय यह है कि, वैसे अवसर पर वे राग योग्य होते हैं। जैसे भैरवी का ध्यान है कि श्वेतवसना, सबेरे शिवपूजन करती है, तो जानो कि ऐसे ही सबेरे शिवपूजन के अवसर में इसका गाना उत्तम है।" "हमारे प्रबन्ध के पढ़नेवाले को एक ही रागिनी का नाम बारम्बार कई रागों में देखकर आश्चर्य होगा। इसमें हमारा दोष नहीं, यह सङ्गीतशास्त्र के प्रचार की न्यूनता से ग्रन्थों में गड़बड़ हो गई है। कोई अन्वेषण करने वाला हुआ नहीं, जो ग्रन्थकारों को मिला वा उन्होंने सुना, लिख दिया। यह तो जो अपने हाथ वा गले से करता हो और ग्रन्थों को भी जानता हो वह एक बेर निर्णय कर के लिखे तब यह ठीक हो जाय।" "शास्त्र दो प्रकार के होते हैं—एक अदृष्टवाद दूसरे दृष्टवाद। अदृष्टवाद, परलोक इत्यादि के मत में मनुष्य को तर्क छोड़कर केवल शास्त्र अवलम्बन करना चाहिए। (हरिहर पद रति मति न कुतरकी)। दृष्टवाद में शास्त्रों के और बुद्धि के तथा अपने और दूसरों के अनुभव के अविरुद्ध जो बात हो वह माननी चाहिए। सङ्गीतशास्त्र के और अपने मत के अविरुद्ध मनुष्य को बरतना उचित है।" "किसी काल में इस शास्त्र का ऐसा कठोर नियम था कि पुराणों में बराबर लिखा है कि ब्रह्मा ने अमुक गन्धर्व को ताल वा स्वर से चूकने पर यह शाप दिया, शिवजी ने यह शाप दिया। इन्द्र ने यह शाप दिया, वही सङ्गीतशास्त्र अब है कि कोई नियम नहीं। सब जानकार लोग मिलकर एक बेर इस लुप्त हुए शास्त्र का भली-भाँति मन्थन करके इसकी एक सनियम परिपाटी बना डालैं। नहीं तो यह शास्त्र कुछ दिन में लोप हो जायगा।"

भारतेन्दु-समग्र के पृष्ठ १०१४-१९ से सङ्कलित उक्त पंक्तियाँ सवा सौ वर्ष पूर्व के विशृङ्खलित सङ्गीतशास्त्र की स्थिति स्पष्ट करती हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का 'सङ्गीतसार' शीर्षक लेख, सितम्बर सन १८७५ ई० में छपा था। महाराष्ट्र के पं० विष्णुनारायण भातखण्डे (१८६०-१९३६) ने सङ्गीत-शास्त्र में व्याप्त अराजकता के निराकरण का श्रमसाध्य व्रत लिया। फलस्वरूप सङ्गीत जगत् को लगभग साढ़े-सत्रह सौ पृष्ठों का 'सङ्गीत शास्त्र' प्राप्त हुआ। बहुआयामी सङ्गीत के अनेक पक्षों के समाधान हेतु पण्डित भातखण्डे नई पीढ़ी का आह्वान करते हुए आगे बढ़ते गये हैं। उनके ग्रन्थ की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१. ''सङ्गीत का प्रधान कार्य स्मृति उद्दीपन है। अतः जिन स्वरों के कानों में पड़ते ही अन्तःकरण में महान्, उन्नत, प्रशान्त और विराट् भावना का उदय हो, वे ही भक्ति और उपासना के योग्य होते हैं।''

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग १, पृ० ५६

२. ''हम यह मानकर चलेंगे कि सम्भवतः इन राग चित्रों का उपयोग रागों की उपासना करने में होता होगा। परन्तु इस बीसवीं शती के सङ्गीत विद्यार्थियों को रागों का स्वरूप चित्रों द्वारा बताने की अपेक्षा, स्पष्ट स्वरों में दिया जाना अधिक अच्छा होगा, यह मेरी धारणा ठीक ही है। यथा-योग्य रूप से उपासना कर के रागस्वरूपों से ज्ञान, प्रेरणा प्राप्त करने का धैर्य इन बेचारों में कैसे पाया जा सकता है?''

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग १, पृ० १६९

३. ''मैं रागों का सम्बन्ध देवताओं से जोड़ना अथवा पौराणिक कथाएँ सुनना पसन्द नहीं करता।''

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग २, पृ० १२३

४. ''हम यह कभी नहीं कहेंगे कि स्वरों के रङ्ग बताने में प्राचीन पण्डितों ने अपना पागलपन व्यक्त किया है। हम तो यही कहेंगे कि उन ग्रन्थोक्त रङ्गों का यथायोग्य स्पष्टीकरण अभी तक किसी ने नहीं किया।''

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग २, पृ० १२५

५. ''स्वयम् पं० दामोदर ने जो राग व्याख्या दी है उसके अनुसार ही राग गानेवाला कोई हुआ भी है? ऐसा गानेवाला मैंने आजतक नहीं सुना जो दर्पण के आधार पर राग गाता हो।''

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग १, पृ० १६६

६. ''प्रथम रागरूप निश्चित और बहुमान्य होने चाहिए। एकबार हुआ तो फिर स्वतः सब ठीक हो जायेगा।''

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग ४, पृ० ६६१

७. ''यद्यपि ऐसी स्थिति है, तो भी तुम्हें प्राचीन ग्रन्थों के प्रति अश्रद्धालु नहीं होना चाहिए। **ये ग्रन्थ सम्पूर्ण रूप से निरुपयोगी नहीं हैं।** जब तुम इन्हें पढ़ोगे तब शान्त चित्त से विचार करने पर तुम इनका वास्तविक मूल्य निर्धारित कर सकोगे।''

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग १, पृ० १९८

८. ''यह मैं जानता हूँ कि प्राचीन ग्रन्थकारों पर भूल करने का दोषारोपण करना महापाप करना है।''

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग १, पृ० १४६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

९. ''उत्तर में 'राग, रागिनी, पुत्र, भार्या' ऐसी राग रचना का वर्णन करने वाले ग्रन्थों पर भी हमने थोड़ी-बहुत टीका की थी। यह टीका हमने किसी दोष दृष्टि से नहीं की। अपितु हमारे कहने का आशय इतना ही था, कि वह रचना उस काल में कौन से तत्त्वों पर की गई थी, इसका स्पष्टीकरण ग्रन्थों में नहीं मिलता। पुनः आज के रागस्वरूप ग्रन्थों के रागस्वरूपों से सर्वथा भिन्न हो जाने के कारण वह प्राचीन रचना आज असुविधाजनक होगी।''

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग ४, पृ० ७२९

१०. ''यह सब हमारे जीवन में तो कैसे होगा? प्रत्येक पीढ़ी को इस पवित्र कार्य में यथाशक्ति, यथामति सहयोग देना चाहिए, ऐसा ईश्वरीय सङ्केत है।''

भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र, भाग ४, पृ० ६६१

पं० विष्णुनारायण भातखण्डे द्वारा किया गया पीढ़ियों का आह्वान व्यर्थ नहीं गया। आह्वान से प्रेरित आचार्य बृहस्पति ने महर्षि भरत द्वारा निर्दिष्ट श्रुति, स्वर, ग्राम और मूर्च्छना पद्धति को सप्रयोग स्पष्ट करके सङ्गीतजगत् की अविस्मरणीय सेवा की। अतः पूर्व, विदेशी सङ्गीतज्ञों के मत से प्रभावित भारतीयों ने भी भरतोक्त, निर्विवाद मूर्च्छना-पद्धति को जटिल, दुर्बोध तथा अप्रयोज्य कहकर इससे पिण्ड छुड़ा लिया था। आचार्य बृहस्पति तथा ठा० जयदेव सिंह के समकालीन अनेक भारतीय, अभारतीय विद्वानों ने अपनी रुचि, ज्ञान और साधन सीमा के अनुसार भारतीय सङ्गीत की मूल्यवान् सेवा की। निस्सन्देह बीसवीं शती भारतीय सङ्गीत के सर्वतोमुखी विकास की शती है। शास्त्र, सिद्धान्त, तदनुयायी क्रियापक्ष, पर्याप्त परिष्कृत रूप में उपस्थित किए गए।

इन सबके साथ ही बीसवीं शती विज्ञान के अद्‌भुत विकास की शती भी है। रिकार्ड, टेप, ध्वनि-विस्तारक एवम् प्रसारण के उपकरणों आदि द्वारा सङ्गीत घर-घर में सुलभ हुआ। शास्त्रों द्वारा वर्णित स्वरों के रङ्ग, फ़स्लों के विकास और पशुओं के अधिक दूध देने की पुष्टि वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा की गई। किन्तु इनके साथ ही विज्ञान ने मनुष्य की संवेदना, आर्जव, विनम्रता और समर्पण आदि साधना के सहायक तत्त्वों को क्षतिग्रस्त करते हुए उसमें कर्ता के अहंकार एवम् अनिष्टकारिणी त्वरा का भी पल्लवन किया।

विज्ञान की चकाचौंध से चमत्कृत सङ्गीतसेवी वर्ग ने पं० भातखण्डे के उल्लिखित दस वाक्यों में मात्र संख्या ३ और ५ के वाक्यों के सहारे राग-रागिनी और उनकी ध्यान पद्धति को सर्वथा नकार दिया। यद्यपि पं० भातखण्डे ने खण्डन से अधिक स्थलों पर इसके वैज्ञानिक अन्वेषण और मण्डन का आह्वान किया है।

बीसवीं शती के उत्तरार्ध में भारतीय सङ्गीत में सङ्क्रमण का विशिष्ट दौर आया। पाश्चात्त्य विज्ञान से सम्मोहित चित्त के साधकों ने अन्य अनेक विषयों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की भाँति सङ्गीत को भी पाश्चात्य दृष्टिकोण से देखना-परखना प्रारम्भ कर दिया। इसके विपरीत पश्चिम के लोगों ने भारतीय सङ्गीत को अत्यन्त आस्था के साथ सीखना-समझना शुरु किया। अपने विपरीत संस्कारों के बावजूद उनकी राग प्रभाव की अनुभूति विलक्षण ढँग से भारतीय आचार्यों के मत की पुष्टि करती देखी जाती है। यह एक उदाहरण है।

मेरे अमेरिकी शिष्य क्रिस साउथाफ़ पिछले अगस्त से १४ फरवरी २००० ई० तक मेरे वहाँ सितार सीख रहे थे। राग काफी के अभ्यास के समय का उनका अनुभव इस प्रकार है। उन्होंने लिखा, "आप के साथ प्रतिदिन दो बार काफी राग के अभ्यास के समय मैंने परिलक्षित किया कि शाम के समय राग विशेष प्रभावी रहता है। अत: मैंने पूछा काफी दिन के किस समय का राग है? आपने उत्तर दिया—वास्तव में यह रात का राग है।"

—क्रिस साउथाफ, दि० ८/१०/९९

संक्रमण काल का एक नमूना यह भी है। पं० रविशङ्कर का कहना है, "भारतीय सङ्गीत का मेलॉडिक और पश्चिमी सङ्गीत का हारमोनिक चरित्र तेल और पानी की भाँति हैं। ये मिल नहीं सकते।"[१] किन्तु आज मात्र कुतूहलवश किए गए ऐसे प्रयत्नों की बाढ़ आ गई है। ऐसे प्रयोग केवल दोनों की क्षति कर रहे हैं।

सुजन पाठक! विस्तृत सङ्गीतजगत् के ये कुछ पक्ष मात्र हैं। पं० विष्णुनारायण भातखण्डे के निर्देश पालन स्वरूप यथा सामर्थ्य किए इस प्रयत्न में कुछ नवीन अथवा मौलिक कर दिखाने का अपना दावा नहीं है। आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार "अथक श्रम से निरन्तर ऊँचे चढ़ती हुई बुद्धि जिस अर्थतत्त्व को देखती है, वह पूर्वाचार्यों द्वारा परिकल्पित विवेक-सोपान परम्परा का ही फल है। अत: सज्जनों के मत को दूषित न करते हुए, मात्र उनका शोधन किया गया है। ऐसी सम्प्राप्तियाँ मूल प्रतिष्ठा की संवाहिका मात्र होती हैं।"[२]

---

१. *द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया,* अगस्त ३०, १९६४ ई०, पृ० ८

२. ऊर्ध्वोर्ध्वमारुह्य यदर्थतत्त्वं
धी: पश्यति श्रान्तिमवेदयन्ती।
फलं तदाद्यै: परिकल्पितानां,
विवेकसोपानपरम्पराणाम्॥
तस्मात् सतामत्र न दूषितानि,
मतानि तान्येव तु शोधितानि।
पूर्वप्रतिष्ठापितयोजनासु,
मूलप्रतिष्ठाफलमामनन्ति॥
अभिनव भारती।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रबुद्ध पाठक, आशा है, आपके पत्रों द्वारा मेरे अनेक प्रमाद और संशयों का शमन होगा। ग्रन्थ रचना में आचार्य रामचन्द्र तिवारी, डा० दशरथप्रसाद द्विवेदी, डा० लालजी त्रिपाठी एवं प्रो० माताप्रसाद त्रिपाठी का मूल्यवान् सहयोग अविस्मरणीय है। सहायकों में एक नाम श्री रामकृष्ण तिवारी का है। सितार शिष्य क्रिस साउथाफ की पुस्तकों उनकी अनुभूतियों का भी लाभ उठाया गया है। मेरे प्रथम सितार शिष्य श्री बनवारी लाल टेकड़ीवाल का नामोल्लेख आवश्यक है। मेरे मित्र श्री सतीश जैन चित्रकार का सहयोग स्पष्ट ही देखा जा सकता है।

अन्त में विश्वविद्यालय प्रकाशन के निदेशक श्री पुरुषोत्तमदास मोदी का विशेष आभार। जिनके कुशल निदेशन में ग्रन्थ मुद्रित होकर आप तक पहुँचा।

त्रुटियों तथा अनधिकार चेष्टा हेतु क्षमाप्रार्थी—

देवेन्द्रनाथ शुक्ल

वट सावित्री, शुक्रवार
वि० सं० २०५७
२ जून २००० ई०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुक्रम

	पृष्ठ
संवाद	५-११
१. नादब्रह्म	१-८
२. सा विद्या या विमुक्तये	९-२०
३. अतीत के सन्दर्भ	२१-३१
४. ध्रुवपद, पद एवं ख़याल	३२-४३
५. राग के विविध पक्ष	४४-५०
६. वर्तमान सङ्गीतशास्त्र और लोकधुन	५१-६०
७. लय ताल एवं मात्रा	६१-६७
८. ताल वाद्य और ध्वनि	६८-७१
९. घराना	७२-७८
१०. स्वर, रस एवं राग	७९-८१
११. वर्तमान रागनियम	८२-८९
१२. अप्रचलित राग	९०-९४
१३. नवनिर्मित राग	९५-१०३
१४. राग, समय और मुद्रित सङ्गीत	१०४-११४
१५. चित्र-चर्चा	११५-१२०
१६. साधकों के अनुभव	१२१-१२९
अनुवित्ति	१३०-१३१
परिशिष्ट	१३२-१३३
सन्दर्भिका	१३४-१३६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चित्र सूची

१. रागिनी तोड़ी
२. रागिनी कुकुभ
३. राग मेघ
४. रागिनी केदार
५. रागिनी देवगान्धारी
६. रागिनी मालश्री
७. रागिनी गुनकली
८. रागिनी पूर्वी
९. रागिनी ललिता (ललित)
१०. रागिनी आसावरी
११. रागिनी भैरवी
१२. रागिनी कामोद
१३. रागिनी मधुमाधवी
१४. रागिनी बंगाली
१५. रागिनी बेलावली
१६. रागिनी रामकली
१७. 'श्री' राग
१८. रागिनी गौड मल्लार
१९. रागिनी धनाश्री
२०. राग वसन्त
२१. रागिनी पटमञ्जरी
२२. प्रथम सितार शिष्य बनवारीलाल टेकड़ीवाल
२३. अप्रमेय मिश्र (सम्प्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत छात्र) को गायन सिखाते हुए
२४. अमेरिकी शिष्य क्रिस साउथॉफ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१. देवेन्द्रनाथ शुक्ल, लेखक	—	संवाद के पहले
२. केसरकुमारी	—	संवाद पृष्ठ ५ के सामने
३. सरस्वती जी	—	पृष्ठ १ के सामने
४. उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ	—	पृष्ठ ७७ के सामने
५. रागिनी अहीरी हिण्डोल	—	पृष्ठ ११५ के सामने
६. रागिनी मल्लारी	—	पृष्ठ ११६ के सामने
७. रागिनी कामोदी	—	पृष्ठ ११७ के सामने
८. रागिनी वराटी	—	पृष्ठ ११८ के सामने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सरस्वतीजी

त्रिकोण, कुण्डली, मात्रा, नित्या, श्रीः, प्रकृतिः, परा।
माता सरस्वती साक्षात्, शरच्चान्द्रशतप्रभा॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ॐ

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
नादब्रह्म चिदानन्दमद्वितीयमुपास्महे ॥ १ ॥

१

नादब्रह्म

प्रसिद्ध सङ्गीतशास्त्री स्वामी प्रज्ञानानन्द के अनुसार—"राग एक मनोभौतिकीय वस्तु है। क्योंकि यह मन के आत्मगत अनुभवों का वस्तुपरक प्रकाशन है।"

स्वामीजी का उक्त विचार सर्वथा उचित है। अतः मनोभौतिकीय राग एवं सङ्गीत के कतिपय पक्षों की चर्चा से पहले हमारे लिए मन तथा इसके अवदान से परिचय प्राप्त कर लेना उपादेय होगा। प्राचीन भारत के ऋषिगण को उनके सतत प्रयत्न एवं प्रयोगों द्वारा जो अनुभव प्राप्त हुए, वे विविध मार्ग, पद्धति और प्रक्रिया के परिणाम हैं। प्रत्येक ऋषिप्रयत्न का मूल उद्देश्य जीवन में सुख-शान्ति और तत्पश्चात् मोक्षलाभ ही था तथापि मार्गभेद के कारण इसकी अनेक विधियाँ विकसित हुईं। यह विचित्र तथ्य है, कि मार्गभेद, प्रक्रिया भेद आदि के होते हुए भी सभी अन्वेषक एक ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि मनोनिग्रह के बिना सुख-शान्ति अथवा मोक्ष प्राप्ति कुछ भी सम्भव नहीं है। मन को ही बन्ध और मोक्ष का एकमात्र कारण बताते हुए वे कहते हैं—"मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।"

ऋषिगण अथवा साधक समूह के प्रयत्नों द्वारा प्राप्त मन का परिचय इस भाँति है। मन क्या है? यह बुद्धि नहीं है। मन, जीव या आत्मा नहीं है अतःयह आत्मा और बुद्धि से पृथक् है किन्तु इन दोनों से सम्पर्क करने-कराने में समर्थ है। यह पाँच (आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा) ज्ञानेन्द्रियों और पाँच (हाथ, पैर, वाणी, गुदा तथा शिश्न) कर्मेन्द्रियों से पृथक् ग्यारहवीं इन्द्रिय है। "एकादशं मनोज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्" वाक्य द्वारा स्पष्ट हो जाता है, कि दस इन्द्रियों से भिन्न अथवा स्वतन्त्र मन ग्यारहवाँ है तथा प्रकृति से ही उभयात्मक, दो मुहाँ है। दो मुहाँ, अर्थात् युक्त-अयुक्त, शिव-अशिव को बार-बार एकत्र करते रहना मन की प्रकृति है। इसी कारण वैदिक युग के ऋषि बार-बार प्रार्थना करते हैं—मेरा वह मन कल्याणकर सङ्कल्पवाला हो। तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।

---

१. शार्ङ्गदेव, *सङ्गीतरत्नाकर*।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निरीश्वरवादी बौद्ध दर्शन भी मन की सत्ता को इसी भाँति स्वीकार करता है। धम्मपद के अनुसार मन के सहयोग से ही धर्म का आचरण सम्भव है।[१] मन की सत्ता स्वीकारते हुए बृहदारण्यक में कहा गया है—"अनन्तं वै मनः"। मन का अन्त नहीं है। अनन्त अर्थात् विभु। अनन्त और विभु भगवान् के विशेषण हैं। मन को इन विशेषणों से युक्त करके ऋषिगण मन की असीम सामर्थ्य का परिचय देते हैं। ऐसे अत्यन्त समर्थ और निरङ्कुश मन को नियन्त्रित करने के अनेक उपाय आर्ष ग्रन्थों में वर्णित हैं। इन सब में नाद का अनुसन्धान अन्यतम है। भगवान् शङ्कर द्वारा, मन को लय करने के सवा लाख साधनों में नादश्रवण को वरीयता देते हुए कहा गया है—इन्द्रियों का स्वामी मन है, मन का स्वामी वायुहै, वायु का स्वामी लय है और लय, नाद के आश्रित है[२]। शिवसंहिता के अनुसार नाद के समान दूसरा लय कारक नहीं है[३]। अतः योग साम्राज्य की इच्छा रखनेवाले को चिन्ता छोड़कर सावधान हो एकाग्र मन से नाद को सुनना चाहिए।[४] नाद अर्थात् ध्वनि। लय अर्थात् एक का दूसरे में मिल जाना।

नाद और लय के अनेक प्रकार हैं। नाद के दो प्रमुख प्रकारों में प्रथम अनाहत और दूसरा आहत नाद है। अनाहत नाद जैसा कि इस के नाम से ही स्पष्ट है, अपने प्रादुर्भाव के लिए किसी अन्य का मुखापेक्षी नहीं। अनाहत बिना किसी सङ्घर्ष के उत्पन्न होता है। योगिजन इसे सुनने का प्रयत्न करते हैं। वे क्या सुनते हैं? यह वे भी नहीं बता सकते। अनाहत नाद सुना जा सकता है किन्तु कहा नहीं जा सकता। जो कहा जा सकता है उसकी अत्यन्त संक्षिप्त रूप-रेखा इस भाँति है। ध्यान से आगे की समाधि अथवा तुरीया स्थिति में ऋषि को अनाहत के स्फुरण की अनुभूति हुई। चित्त के आकाश में उसने ॐकार की ध्वनि सुनी[५] और उसका साक्षात्कार भी किया। यह देखना और सुनना समाधि के क्षणों में सम्भव हुआ। अतः निश्चय ही यह शरीर के भौतिक नेत्रों और कानों द्वारा नहीं हुआ। यह साधक को कृतार्थ करने हेतु निराकार द्वारा किया गया

---

१. मनोपुंब्बगमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया ।
मनसाचेदपदुट्ठेन, भासति वा करोति वा ॥

२. इन्द्रियाणां मनो नाथो, मनोनाथस्तु मारुतः ।
मारुतस्य लयो नाथः, सलयो नादमाश्रितः ॥ *कल्याण,* योगाङ्क, पृ० ३३२

३. न नाद सदृशोलयः। *कल्याण,* योगाङ्क, पृ० २७२

४. सर्वचिन्तां परित्यज्य, सावधानेन चेतसा ।
नाद एवानुसन्धेयो, योगसाम्राज्यमिच्छता ॥ *कल्याण,* योगाङ्क, पृ० २७१

५. ओमिति स्फुरदुरस्यनाहतं, गर्भगुम्फितसमस्त वाङ्मयम् ।
दन्ध्वनीति हृदि यत्परं पदम्, तत्सदक्षरमुपास्महे महः ॥ जगद्धर भट्ट, *स्तुतिकुसुमाञ्जलि*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वयम् का साकारीकरण है। हृदय की धड़कन की भाँति एक निश्चित आवर्तन क्रम की अनुभूति से साधक कृतकृत्य हुआ। संस्कार एवं भावनानुसार इन अनुभूतियों का वर्णन विभिन्न प्रकार से किया गया है। ॐकार के साथ अथवा पूर्व सुनी गई ध्वनियों के विषय में नादविन्दूपनिषद् का कथन है—"आन्तरिक नाद को दायें कान से सुनना चाहिए। अभ्यास करते रहने पर बाहरी ध्वनियाँ रुक जाँयगी। अभ्यास की पहली अवस्था में अनेक प्रकार के नाद सुनाई देंगे। अभ्यास बढ़ने पर उत्तरोत्तर सूक्ष्म नाद सुनाई देंगे। पहले समुद्रगर्जन, बादल, डङ्का, झरना तत्पश्चात् मृदङ्ग, घण्टा और काहल ध्वनि के पश्चात् अन्तिम चरण में घुँघरू, बाँसुरी, वीणा और भ्रमरगुञ्जार की ध्वनि सुनाई देगी।[१]" नाद के अन्य बहुत से प्रकार भी सुने जाने का उल्लेख ग्रन्थों में है। हमें ध्यान देना चाहिए कि भ्रमरध्वनि इन सभी ध्वनियों में ॐकार की ध्वनि के अनुरूप है। भ्रमरध्वनि से हमें ॐकार की सततप्रवाही ध्वनितरङ्गों की स्पष्ट सूचना प्राप्त होती है।

हम निराकार अथवा अनाहत का ॐकार के रूप में साकार होना देख चुके हैं। समाधि अथवा तुरीयावस्था में सुनी गई ध्वनियों के आधार पर वैसी ही ध्वनि उत्पन्न करने के प्रयत्न ने घण्टा, शङ्ख, वंशी, वीणा एवं मृदङ्ग जैसे वाद्यों को जन्म दिया। इन वाद्यों का पूजन के समय देवमन्दिरों में प्रयोग होने का कारण इन का समाधि में सहायक होना है। महर्षि पाणिनि को समाधि में डमरु ध्वनि द्वारा व्याकरण सूत्रों की उपलब्धि हुई। डमरु ध्वनि, अर्थात् निरर्थक आहत ध्वनि। किन्तु महर्षि को इस ध्वनि की अनुभूति सार्थक वर्णों, अ, इ, उ, ण् आदि के रूप में हुई। ऐसा इस नाते हुआ कि इससे पूर्व निराकार अनाहत, ॐकार के रूप में स्वयं को रूपायित कर चुका है। यद्यपि नादासुन्धान से कृतार्थ योगिजनों की समाधि ॐकार के दर्शन और उसकी सतत प्रवाही ध्वनितरङ्गों के श्रवण द्वारा प्रगाढ़ हो गई है तथापि वाणी के चार (परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी) प्रकारों में पहले दो केवल योगिजनों के अनुभव क्षेत्र तक सीमित हैं। भौतिक कार्य व्यापार के आरम्भ हेतु नाद को क्रमशः मध्यमा एवं वैखरी के समाश्रित होना ही होता है। वस्तुतः मूलाधार में उत्पन्न सूक्ष्मतर नाद 'परावाक्' संज्ञा से अभिहित हुआ और वायु द्वारा नाभिदेश में पहुँचाए जाने पर 'पश्यन्ती' कहा गया। नाद किं वा वाक् की ये स्थितियाँ केवल ईश्वर और योगिजनों के लिए ही गोचर हैं। एक ही नाद (मूलाधार, नाभि, हृदय तथा कण्ठ) स्थानभेद से क्रमशः परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी—इन चार संज्ञाओं से अभिहित होता है।

वायु प्रेरित नाद हृदय में पहुँचने पर 'मध्यमा' वाक् कहा गया। समस्त मनोभाव एवं उनके प्रत्यक्षीकरण हेतु की गई विविध चेष्टाएँ 'मध्यमा' के

---

१. *नाद विन्दूपनिषद्, ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्*, पृ० २४३, नि० सागर प्रेस, १९१७ ई०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अवदान हैं। 'वैखरी' का स्थान कण्ठ है। सामान्यतया इसे मानव कण्ठ मान लिया जाता है। वस्तुतः कानों से सुनी गई प्रत्येक ध्वनि, मात्र वैखरी-प्रकार है। आवश्यक नहीं यह मानव कण्ठ से ही उद्भूत हो। वंशीध्वनि को अधिक न सुनने को कहते हुए कारण बताया गया है, इस से चित्त के लय हो जाने की अधिक सम्भावना रहती है।[१] वंशीध्वनि नाद की अनुभूति में अधिक सहायक है। यह आज भी देखा जाता है, कि गोरखपन्थी साधक कण्ठ में बटे हुए काले ऊन की 'सेली' पहनते हैं। सेली में नादश्रवण की सहायिका सींग की एक छोटी सीटी 'शृङ्गी' बँधी रहती है, जिसे ये 'नाद' (शृङ्गीनाद) कहते हैं।[२]

ॐकार के विषय में अपने अनुभव का साधकों ने अनेक प्रकार से वर्णन किया है। हम यहाँ केवल दो की संक्षिप्त चर्चा करेंगे। कुण्डलिनी-शक्ति के साधकों के अनुसार कुण्डलिनी के स्फुरण से मूलाधार में वेग (गति) उत्पन्न हुआ। अर्थात् कुण्डलिनी की सक्रियता ही प्रथम वेग है। वेग के प्रथम स्फोट को 'नाद' कहते हैं। नाद से प्रकाश उत्पन्न हुआ। प्रकाश का साकार रूप महाविन्दु है। नाद के तीन भेद हैं—महानाद, नादान्त और निरोधक। इसी भाँति विन्दु के तीन भेद हैं—इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया। साधकों को अपना अनुभव व्यक्त करने में तीन की संख्या बहुविध सहायक हुई है। विन्दुभेद को वे सूर्य, चन्द्र और वह्नि तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश इन तीन रूपों द्वारा पुनः स्पष्ट करते हैं। इसी भाँति साधक की समाधि की अवस्था में ॐकार रूप से प्रकट हुआ नाद भी अ, उ और म् तीन वर्णों वाला कहा गया है।

दूसरा पक्ष योगमार्ग का है। महर्षि पतञ्जलि ॐकार को ईश्वर का वाचक कहते हैं—तस्य वाचकः प्रणवः (स०पा० २७)। वाच्य ईश्वर और उसका वाचक ॐकार है। साधकों के विचार से ईश्वर और ॐकार में केवल निराकार और साकार का भेद है। यह भी कहा गया है कि, ॐकार की ध्वनि केवल ध्यान में अनुभव की जा सकती है। मुख से ॐकार का यथार्थ उच्चारण नहीं किया जा सकता तथापि हम जैसा ॐकार बोल पाते हैं उसमें प्रकृति अपने सत्, रज, और तम अथवा स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप से सम्पृक्त है। ध्वनि रूप में स्थित ॐकार का मुख, कण्ठ, जिह्वा, दाँत, होंठ और नासिका के सहयोग से उच्चारण सम्भव नहीं है। यही कारण है, ॐकार की ध्वनि का श्रवण और रूपदर्शन मात्र समाधिसिद्ध योगिजनों द्वारा ही सम्भव होता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् इसी नाते मात्र ध्यान और निगूढ़ देव दर्शन की चर्चा करते हुए कह रहा है—अपने शरीर को अरणि और ॐकार को उत्तर अरणि बनाकर ध्यान-मन्थन

१., २. *कल्याण,* योगाङ्क, पृ० ३१९, ४७१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

द्वारा अन्तरस्थित ज्योति को देखे। १-१३/१४। ॐकार के ध्यान की बात कह कर ऋषि इसकी अनिर्वचनीयता स्पष्ट कर रहे हैं।[१]

नाद के स्फुरण को सृष्टिमूल अथवा आदिकारण स्वीकार कर के हम अब तक अनाहत और आहत की एक झाँकी देख चुके हैं। नाद के चार प्रकारों में उत्तरार्ध के दो मध्यमा एवं वैखरी, आहत के नामान्तर एवं प्रकार हैं। यह निर्विवाद है, कि सृष्टि का जनक ॐकार स्वयं ध्वनि रूप है। अतः यह स्वीकार्य होना चाहिए कि यह समस्त ध्वनियों, वर्ण, मात्रा, शब्द, वाक्य और छन्दों का भी जनक है। ॐकार के अ, उ, म्, चन्द्ररेखा एवं विन्दु को सङ्गीत के गायन, वादन, नर्तन, ताल और लय के प्रतीक स्वीकार करने में हमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए। नाभि, हृदय और कण्ठ से उत्पन्न होने वाले स्वरों के बीज ॐकार के अ, उ और म् में सन्निहित हैं। प्राचीनकाल के सङ्गीतशास्त्रियों द्वारा कहा गया है— ॐकार स्वरूप भगवान् शिव का पूजास्थान बारह दलों का अनाहत चक्र हृदय में है।[२] कण्ठ में सोलह दलों के 'विशुद्ध' नामक चक्र में सरस्वती का स्थान है। षड्ज से निषाद तक के सात स्वर यहीं से उत्पन्न होते हैं।[३] आत्मा से प्रेरित मन शरीर में स्थित अग्नि को प्रेरित करता है। अग्नि ब्रह्मग्रन्थि में स्थित प्राणवायु को प्रेरित करता है। अग्नि से प्रेरित वायु (मूलाधार से) क्रमशः ऊपर उठता हुआ नाभि में अतिसूक्ष्म, हृदय में सूक्ष्म, कण्ठ में पुष्ट, सिर में अपुष्ट, और मुख में कृत्रिम स्वरों को उत्पन्न करता है।[४]

नाद-प्रसङ्ग सात स्वरों की उत्पत्ति तक आ गया है। वायु द्वारा प्रेरित स्वर, आहत नाद के अवदान हैं। अनाहत के विपरीत आहत नाद दो पदार्थों के सङ्घर्ष अथवा टकराहट आदि से उत्पन्न होता है। आहत नाद के दो वर्ग हैं। प्रिय और अप्रिय। सङ्गीत मनीषियों ने केवल श्रवणसुखद ध्वनि को 'नाद' संज्ञा से विभूषित

---

१. स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निगूढवत् ॥

२. हृदयेऽनाहतं चक्रं, शिवस्य प्रणवाकृते ।
पूजास्थानं तदिच्छन्ति, युतं द्वादशभिर्दलैः ॥ *सङ्गीत दर्पण*, श्लोक २०, पृ० १०

३. कण्ठेतु भारतीस्थानं, विशुद्धिः षोडशच्छदम् ।
तत्र षड्जादयः सप्तस्वराः, सम्यक्प्रभेदतः ॥ *सङ्गीत दर्पण*, श्लोक २१, पृ० ११

४. आत्मना प्रेरितं चित्तं, वह्निमाहन्ति देहजम् ।
ब्रह्मग्रन्थि स्थितं प्राणं, स प्रेरयति पावकः ॥ ३४ ॥ *सङ्गीत दर्पण*
पावकप्रेरितः सोऽथ, क्रमादूर्ध्वपथे चरन् ।
अतिसूक्ष्म ध्वनिं नाभौ, हृदि सूक्ष्मं गलेपुनः ॥ ३५ ॥
पुष्टं शीर्षे त्वपुष्टं च, कृत्रिमं वदने तथा ।
आविर्भावयतीत्येवं, पञ्चधा कीर्त्यते बुधैः ॥ ३६ ॥ *सङ्गीत दर्पण*, पृ० १३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किया है। कारण स्पष्ट है। मन स्वयमेव अत्यन्त अस्थिर है। कर्णकटु ध्वनि इसे और व्यग्र कर देगी। ऐसा मन मात्र बन्धकारक होकर रह जाएगा। हमें आवश्यकता मोक्षसाधक निश्चल मन की है। यह श्रवण सुखद ध्वनियों की सहायता से ही सम्भव है। अतः ध्वनि रमणीयता ही नाद की पहचान है। यही वाञ्छित है।

अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, पुष्ट, अपुष्ट तथा कृत्रिम नाद के पाँच प्रकारों की 'नाद' संज्ञा के विषय में कहा गया है—'न' प्राण (वायु) वाचक तथा 'द' अग्निवाचक है अतः जो वायु एवं अग्नि के संयोग से उत्पन्न होता है उसे नाद कहा जाता है।[१] सङ्गीत में प्रयुक्त नाद की स्थिति इस प्रकार है। बाइस श्रुतियाँ, पाँच विकृत और सात शुद्ध स्वर। स्वरगरिमा के बोध हेतु साधकों ने इनके कुल, जाति और वर्ण आदि का निर्णय किया है। "इसके अनुसार षड्ज, गान्धार, एवं मध्यम देवकुल, पञ्चम पितरकुल, ऋषभ और धैवत मुनिकुल तथा निषाद स्वर दैत्यकुल में उत्पन्न हुआ है। षड्ज, मध्यम एवं पञ्चम की ब्राह्मण, रे-ध की क्षत्रिय, ग-नि की वैश्य और विकृत स्वरों की शूद्र जाति है। षड्ज स्वर कमल जैसा लाल, ऋषभ सुनहरे रंग की लालीयुक्त, गान्धार पीला, मध्यम सफेद, पञ्चम काला, धैवत पीला और निषाद बहुरङ्गी है।[२]" सम्पूर्ण भूमण्डल को आच्छादित किए रहने की नाद सामर्थ्य का उद्घाटन सात स्वरों की उत्पत्ति सात द्वीपों में बता कर किया गया है। इसके अनुसार षड्ज की जम्बूद्वीप, ऋषभ की शाकद्वीप, गान्धार की कुश, मध्यम की क्रौञ्च, पञ्चम की शाल्मली, धैवत की श्वेत तथा निषाद स्वर की उत्पत्ति पुष्कर द्वीप में हुई है। वैदिक पद्धति के अनुसार सात स्वरों के ऋषि, देवता तथा छन्द 'सङ्गीत पारिजात' (पृष्ठ २६) नामक ग्रन्थ में कहे गए हैं। इसके अनुसार षड्ज से निषाद तक सात स्वरों के द्रष्टा ऋषि क्रमशः अग्नि,

---

१. नकारं प्राणनामानं, दकारमनलं विदुः ।
जातः प्राणसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते ॥ ३९ ॥ *सङ्गीत दर्पण*, पृ० १४

२. देवताकुलसम्भूताः, षड्जगान्धारमध्यमाः ।
पञ्चमः पितृवंशीयो, रिधौ मुनिकुलोद्भवौ ॥
निर्दैत्य कुल सञ्जात, इत्येषां कुलनिर्णयः ।
समपाः ब्राह्मणा ज्ञेया, क्षत्रियौ च रिधौ मतौ ॥
वैश्य जाति गनी ज्ञेयौ, शूद्राः स्युर्विकृताः स्वराः ।
इति स्वरगता जातिः प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
कमलाभः स्वरः षड्जः, ऋषभः पिञ्जरः स्वरः ।
हाटकाभस्तु गान्धारः, कुन्दाभो मध्यमः स्वरः ॥
पञ्चमस्तु स्वरः श्यामो, धैवतः पीतवर्णयुक् ।
निषादः कर्बुरश्चेति, स्वराणां वर्णनिर्णयः ॥ *सङ्गीत पारिजात*, पृ० २४, २५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ब्रह्मा, चन्द्रमा, भगवान् विष्णु, नारद तुम्बुरु और कुबेर हैं। अग्नि, ब्रह्मा, सरस्वती, भगवान् शङ्कर, विष्णु, गणेश और सूर्य क्रमशः सात स्वरों के देवता हैं। अनुष्टुप्, गायत्री, त्रिष्टुप्, बृहती, पंक्ति, उष्णिक् तथा जगती ये सात स्वरों के छन्द कहे गए हैं।

उक्त स्वरों के प्रयोग द्वारा हम नाद की उपासना करते हैं। इन आहत स्वरों में हमें, केवल एक स्वर अनाहत का आभास देता है। सङ्गीत के विद्वान् इसे स्वयम्भू गान्धार कहते हैं। षड्ज के तार से उत्थित स्वयम्भू गान्धार की यह ध्वनि हमें तब सुनाई देती है जब मुक्त तार को छेड़ कर प्राप्त की गई षड्ज की ध्वनि अस्त होती रहती है। हमने षड्ज छेड़ कर उपध्वनि के रूप में गान्धार की प्राप्ति की है अतः गान्धार का स्वयं उत्पन्न, स्वयम्भू, नाम तो उपयुक्त है तथापि हमें इसको अनाहत नहीं समझना चाहिए। क्योंकि इसकी प्राप्ति से पूर्व हमने तार को उँगली अथवा कोण से आहत किया है।

यह कहा जा चुका है कि लय नाद के आश्रित है। इसके विपरीत अगर हम नाद को लय का आश्रित कहें तो भी कोई त्रुटि नहीं होगी। यह स्थिति गिरा-अर्थ, जल-वीचि की भाँति शिव और शक्ति की एकरूपता व्यक्त करती है। ग्रन्थों की मिथकीय शैली के अनुसार 'त' शङ्कर, 'ल' पार्वती। अतः शिव और शक्ति के समायोग से ताल की उत्पत्ति होती है। पुनः कहा गया है, भगवान् शिव के नृत्य ताण्डव तथा भगवती पार्वती के लास्य के प्रथम अक्षरों को एकत्र करके 'ताल' शब्द की रचना की गई है। महर्षि पाणिनि के अनुसार तल=हाथ की हथेली। ताल=नियत मात्राओं पर ताली बजाना। आहतजनित स्वरों से रचित गायन, वादन और नृत्य सभी ताल में प्रतिष्ठित होते हैं। सङ्गीत प्रयोज्य लय को मात्राओं के विभाजन द्वारा सुगम किया गया है। लय का शाब्दिक अर्थ दो का एक में मिल जाना कहा जा चुका है। किन्तु सङ्गीतरत्नाकर के अनुसार मात्राओं के मध्य में होने वाला अवकाश ही 'लय' है। अवकाश, अर्थात् समय के नियम से मुक्ति का एक सूक्ष्मतम क्षण। अनिर्वचनीय शान्ति अथवा द्वन्द्वातीत क्षण की उपलब्धि। केवल आत्मानुभूति ही इस का प्रमाण कही गई है। योगिराज भर्तृहरि के शब्दों में—"जो दिशा और काल से विभाजित नहीं किया जा सकता जिसका अन्त नहीं है जो केवल आत्मस्वरूप है अपनी अनुभूति ही जिसका एकमात्र प्रमाण है ऐसे शान्त तेज को प्रणाम।[१]"

सङ्गीतरत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ के अनुसार (कलानिधि) आहतनाद की उपासना से भी अनाहत की प्राप्ति उसी प्रकार सम्भव है जिस

---

१. दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्त्तये ।
स्वानुभूत्यैकमानाय नमश्शान्ताय तेजसे ॥ भर्तृहरि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकार मणि की प्रभा से आकृष्ट व्यक्ति के लिए मणि की प्राप्ति।[१] फलस्वरूप आहत सङ्गीत द्वारा नादसाधन की धारा अब तक अविच्छिन्न प्रवाहित है। नाद की उपासना करने वाले साधकों में गोरखनाथ, कबीर, स्वामी हरिदास, सूरदास, चैतन्य महाप्रभु एवं मीराबाई आदि के नाम विख्यात हैं। संस्कृत तथा विविध क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध नादोपासना से सम्बद्ध विपुल साहित्य राशि इसकी महत्ता के द्योतन में किंचित् समर्थ है। आहत एवं अनाहत के विषय में सङ्गीत-रत्नाकर (१२१३ ई०) का स्पष्ट मत है—निर्गुण की उपासना से मुक्ति और सगुण की उपासना से ऐहिक भोग प्राप्त होते हैं।[२]

अन्य साधन विधियों की अपेक्षा नादानुसन्धान को श्रेष्ठ कहने का क्या कारण है? इस प्रश्न के समाधान हेतु हमें मन की उभयमुखी प्रवृत्ति की ओर ध्यान देना चाहिए। मन की इस विघातक प्रवृत्ति को समाप्त कर देने में सङ्गीत अत्यन्त समर्थ है। क्योंकि यह स्वयं उभयमुखी और बहुमुखी है। सङ्गीत तत्काल मन को अपनी सीमा में निरुद्ध कर लेता है अत: मन अपनी चपलता छोड़ने के लिए विवश हो जाता है। श्रुति और स्वर, शुद्ध एवं विकृत स्वर, लय और छन्द, छन्द एवं ताल, ताल तथा लय, मात्राएँ तथा उनका सम-विषम विभाजन आदि आहत सङ्गीत के अनिवार्य युग्म हैं। मन की चपलता समाप्त कर देने को इन में कोई एक पर्याप्त है। और तब निश्चल मन से साधक अनाहतलोक में प्रविष्ट हो जाता है।

✤

१. आचार्य बृहस्पति, *ध्रुवपद और उसका विकास*, पृ० ७

२. आचार्य शार्ङ्गदेव, *सङ्गीतरत्नाकर*, पिण्डोत्पत्ति प्रकरण—
एवं विधे तु देहेऽस्मिन्मलसञ्चयसंवृते ।
प्रसाधयन्ति धीमन्तो, भुक्तिमुक्तिमुपायतः ॥
तत्र स्यात्सगुणध्यानाद्भुक्तिर्मुक्तिस्तु निर्गुणात् ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२

सा विद्या या विमुक्तये

हमारा सङ्गीत मोक्षप्राप्ति का माध्यम है अतः विद्या है। आत्मविद्या (मनु० ७/४३)। किन्तु जिस नाद का योगिजन दायें कान से श्रवण करते हैं वह उन्हीं तक सीमित है। सङ्गीत में यद्यपि नाद के परा से वैखरी पर्यन्त समस्त रूप सक्रिय रहते हैं तथापि परा और पश्यन्ती के अवदान का प्रकाशन लेखनी के वश का नहीं है।

सङ्गीत भवभञ्जक होने के साथ ही लोकरञ्जक भी है अतः आचार्यों द्वारा इसे ललितकला स्वीकृत किया गया है। भूलोक, स्वर्लोक, लोकद्वयसाधक सङ्गीत के गायन, वादन तथा नृत्य तीन अङ्ग हैं. इनमें गायन सर्वश्रेष्ठ स्वीकृत है क्योंकि यह प्रकृतिप्रदत्त है। मनोभावों का अभिव्यञ्जक सङ्गीत, कण्ठ से बहिर्गत हुआ। भाषा के शब्दों ने भाव विकास की पुष्टि की। स्वर और शब्द के समागम से प्रवाहित सङ्गीत सरिता की धारा विभिन्न वाद्यों के सहयोग से वेगवती हुई। मात्रा और ताल के नियामक अवनद्ध वाद्यों ने उक्त सरिता में सीढ़ी और घाट की सुविधा प्रदान की। आहत नाद के प्रखर प्रवाह को संयमित करने के उद्देश्य से विविध वीणाओं का विकास किया गया। एक तन्त्री से शत-सहस्रतन्त्री वीणाओं के प्रयोग द्वारा श्रुति, स्वर, ग्राम और मूर्च्छना आदि का निर्भ्रान्त निर्धारण सम्भव हुआ।

सङ्गीताचार्यों का प्रयत्न इसके शास्त्र के रूप में प्रकट हुआ। किन्तु ललित कला का, **(शुष्क शास्त्र के विधि-निषेध)** कहाँ तक मार्ग व्यवस्थित करते। भाषा पहले, व्याकरण बाद में, का नियम यहाँ भी चरितार्थ हुआ। सङ्गीत के प्रारम्भ से अब तक के ज्ञात इतिहास के अनुसार सङ्गीतशास्त्र सदैव गायकों की कल्पना के समक्ष बौना सिद्ध होता रहा है।

गायन, स्वर के साथ ही शब्दाश्रयी भी है। अतः गेय साहित्य का विकास हुआ। वेद की ऋचाएँ समाधिस्थ ऋषिगण द्वारा सुनी गई हैं। अतः प्रारम्भिक गेय साहित्य 'श्रुतियों' को कहा जाना चाहिए। शास्त्रों में सङ्गीत की दो प्रमुख धाराएँ कही गई हैं। 'मार्गी' तथा 'देशी'। मार्गी अथवा वैदिक सङ्गीत ही भवभञ्जक है। देशी सङ्गीत का जन्मस्थान मानव मन है। क्षेत्रीय प्रभाव से प्रभावित। अनेक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भावनाओं का केन्द्र। लोकरञ्जक देशी सङ्गीत का नाम स्वयं अपना इतिहास बता देता है।

मणिप्रभा से आकृष्ट व्यक्ति को मणि प्राप्ति की बात कही जा चुकी है। ऐसे ही साकार मूर्त्ति पूजा से अलक्ष्य लक्षित होता है। देशी सङ्गीत द्वारा अनाहत की उपासना भी इसी प्रकार सम्भव होती है। देशी सङ्गीत के उपासकों ने भाव अभिव्यक्ति में समर्थ विशिष्ट स्वरसमूह को 'राग' नाम से अभिहित किया। अब यह स्वीकृत हो चुका है कि 'राग' नाम से विख्यात रूप प्राचीन 'जाति' का नामान्तर है। गान शैली परिवर्तित हुई अतः नाम परिवर्तित हुआ।

जातिगान का अध्यात्म पक्ष राग से जुड़ा रहा। अतः मूर्तिपूजा की भाँति रागरूप, रागपत्नी-पुत्र आदि की कल्पना आगे आई। जनचित्त का रञ्जक 'राग' केवल शान्त[१] रस तक कैसे सीमित रहता। अनेक रागों द्वारा नव रसों का, श्रोता के चित्त में सम्प्रेषण सहज सम्भव था। एक ही रस के परिपाक हेतु अनेक राग। अपने स्वरों, आरोह-अवरोह तथा औडव आदि जातियों के नाते रागरूप का निर्धारण सम्भव हुआ। राग के स्वरमय रूप को मस्तिष्क ने देखा-परखा और नामकरण किया। मन ने इस रूप को मानवाकृति प्रदान की। नर-नारी के नाम और आकृति से सम्बोधित रागों की उत्पत्ति भगवान् शङ्कर तथा भगवती पार्वती से बताते हुए भैरव राग को स्वयं भगवान् शङ्कर तथा भैरवी रागिनी को इसकी पत्नी कहा गया। राग और राग-परिवार की धारणा बीसवीं शती के तीसरे दशक में सङ्गीतशास्त्रियों द्वारा अस्वीकृत कर दी गई। किन्तु इससे पूर्वतक इस आलम्बन को लेकर रचित मूर्तियों, चित्रों और साहित्य की विपुल राशि संग्रहालयों, चित्रवीथियों एवं पुस्तकालयों में देखी जाती है।

यह विचित्र संयोग है कि जिन दिनों जनरञ्जकता को एक मात्र लक्षण स्वीकार करते हुए सभी विशिष्ट स्वर सन्दर्भों को केवल 'राग' कहा जाना

---

१. भरत नाट्यशास्त्र, अध्याय छः के अनुसार, मूल रस केवल चार हैं। शृङ्गार, रौद्र, वीर, एवं वीभत्स। क्रमशः शृङ्गार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और वीभत्स से भयानक चार अन्य रसों की उत्पत्ति स्वीकृत करने पर रसों की संख्या आठ होती है। इस प्रकार नाट्य के आठ रस हैं, परन्तु कभी-कभी शान्त रस को जोड़ कर नव रस बना दिए जाते हैं। ३३ सञ्चारी भावों में शान्त रस का सञ्चारी भाव निर्वेद को बताते हुए काव्य प्रकाश के चौथे समुल्लास में कहा गया है—"निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।" दशम रस वात्सल्य अभी तक मतभेद ग्रस्त है। नाट्यशास्त्र अ० ७ में उल्लिखित ३३ सञ्चारी भाव ये हैं—निर्वेद, शङ्का, मद, मोह, ग्लानि। उन्माद, आवेग, विषाद, हर्ष। व्रीडा, असूया, अवहित्थ, धैर्य। चिन्ता, अपस्मार, वितर्क, गर्व। औत्सुक्य, जाड्य, स्मृति, दैन्य, त्रास। विबोध, निद्रा, मति, व्याधि, स्वप्न। आलस्य, मृत्यु, श्रम, उग्रता ये। सञ्चारि चापल्य, अमर्ष जानो। द्रष्टव्य, *भरत नाट्यशास्त्र*, चौखम्बा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निश्चित हुआ उन्हीं दिनों साहित्यिक मासिक 'माधुरी' में कन्नोमल नामक लेखक का 'साहित्य-सङ्गीत-संयोग' शीर्षक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ। उक्त लेख का सारांश इस भाँति हैं—मुख्य छः राग और तीस रागिनियाँ हैं, जिनके मेल से अनेक उपरागिनियाँ उत्पन्न हो गईं हैं। जो राग-रागिनियाँ दक्षिण-देश में विशेष रूप से व्यवहार में आती हैं, उनको दाक्षिणात्य कहते हैं, और जो उत्तरीय देशों में प्रचलित हैं, उन्हें औदीच्य। औदीच्य विभाग में शिव, कृष्ण, भरत, हनूमान् ये चार मत प्रसिद्ध हैं। इनमें भी भरत, और हनूमान्-मत की राग-रागिनियाँ ही प्रायः काम में आती हैं। औदीच्य मतों में निम्नलिखित छः राग और तीस रागिनियाँ ही मुख्य हैं—१. भैरव तथा इसकी पाँच रागिनियाँ, भैरवी, वैराटी, मधुमाधवी, सैंधवी तथा बंगाली। २. मालकोश और इसकी टोड़ी, गौरी, गुणकलिका, खंभाती तथा ककुंभिका, पाँच रागिनियाँ। ३. हिण्डोल और इसकी रामकली, देशाखी, ललिता, विलावला, और पाँचवीं पटमंजरी। ४. दीपक रागिनी और इसकी देशी, कुमोदिनी, नट, केदार और कान्हरा पाँच रागिनियाँ। ५. श्रीराग और इसकी मालश्री, मारू, धनाश्री, वसन्त और पाँचवीं आसावरी रागिनी। ६. राग मेघमल्लार, और इसकी टक, मलार, गुर्जर, भूपाली, और विभास को पाँचवीं रागिनी कहा गया है।

भारतवर्ष में छः ऋतुएँ होती हैं। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर। प्रत्येक राग-रागिनी के गाने की ऋतु और उसका समय नियत है। वह उसी समय पर अच्छी लगती है। भैरवी रागिनी का समय प्रातःकाल है। यदि यह सायङ्काल के समय गाई जाय, तो केवल असामयिक ही नहीं होगी बल्कि सुनने वाले को अच्छी भी नहीं मालूम होगी। हिन्दोस्तानी गवैयों को तो इस विषय में इतना पक्षपात है, कि उनसे किसी राग-रागिनी को असमय गाने को कहो तो वे कभी न गावेंगे। वे समय के बड़े पाबंद हैं। प्रश्न उठता है, समय का नियम ठीक है या वैसे ही ढकोसला है। शब्दशास्त्र के पूर्ण विद्वान् बता सकेंगे कि शब्द का समय के साथ क्या सम्बन्ध है। पदार्थ-विद्या से ज्ञात होता है कि शब्दों की लहरों पर अन्धकार और प्रकाश का प्रभाव भिन्न-भिन्न पड़ता है। कुछ शब्द प्राकृतिक कारणों से सुगम सुनाई देते हैं और कुछ कठिनाई से सुने जाते हैं। शब्द मण्डल में अनेक तरङ्गें उठती रहती हैं, उनके प्रवाह का रूप, भिन्न ऋतुओं और समय में भिन्न-भिन्न होता है।

शब्दों का सम्बन्ध जैसे ऋतु और दिन के काल विभाग से है, वैसे ही उस का सम्बन्ध मानसिक भावों के साथ भी है। ज़ोर से बोलना, धीरे से बोलना मन के भिन्न-भिन्न भावों को प्रकट करता है। एक मनुष्य के बोलते ही दूसरा मनुष्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मालूम कर लेता है कि बोलने वाला प्रसन्नचित्त है या दुःखी। उसके मन के भाव उसके शब्दों से तत्काल ही व्यक्त हो जाते हैं। शब्दशास्त्रज्ञों ने ख़ूब विचार कर भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों में ऐसे शब्दों का क्रम बाँधा है कि उन से मन के भिन्न-भिन्न भाव प्रकट हो जायँ।

साहित्यवेत्ताओं के अनुसार संयोग-वियोग के भावों को प्रकट करने वाला शृङ्गार रस है। हास्य के भावों को हास्य रस बताता है। करुणा की अभिव्यक्ति करुणरस से होती है। उत्साह और वीरता बताने वाला, वीररस है। भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत, शान्त और रौद्र रस क्रमशः भय, जुगुप्सा, विस्मय, शान्ति और क्रोध के भावों को प्रकट करते हैं।

अनेक प्रकार के होते हुए भी भाव पाँच प्रकारों में विभक्त हैं। स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव और सञ्चारी भाव। जिसमें पूर्वोक्त नवरसों में से किसी एक रस की स्थिति हो, वह स्थायी भाव है। जैसे शृङ्गार रस का स्थायी भाव अनुराग (रति) हास्य रस का हास्य, शान्त रस का शान्ति और रौद्र रस का क्रोध है। शृङ्गार रस के संयोग और वियोग दो भेद हैं। विभाव वह है, जिससे रति आदि चारों भावों का लोक में उद्‌बोध हो। जैसे, नायक-नायिका अथवा चन्द्रमा की चाँदनी, पुष्प, सुगन्ध आदि। पहला आलम्बन विभाव है और दूसरा उद्दीपन विभाव।

अनुभाव—जैसे हाव, भाव, हेला, अथवा जैसे—शोभा, कान्ति, अथवा जैसे लीला, विलास, हसित आदि। सात्त्विक भाव भी अन्तःकरण से उत्पन्न होते हैं। जैसे, स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च इत्यादि। इन पाँच प्रकार के भावों में विभाव के दो भेद आलम्बन और उद्दीपन, बड़े महत्त्व के हैं। आलम्बन-विभाव में अनेक प्रकार के नायक और नायिकाओं के भेद वर्णित हैं।

नायिकाएँ तीन प्रकार की कही गई हैं। स्वकीया, परकीया और सामान्या। स्वकीया के तीन भेद हैं—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। मुग्धा वह है जिसके अङ्ग-अङ्ग में तरुणाई झलकती हो। इसके ज्ञात तथा अज्ञातयौवना दो भेद हैं। मध्या नायिका के धीरा, अधीरा और धीराधीरा तीन भेद हैं। धीरा वह है, जो पति के ऊपर व्यङ्ग्य से कोप प्रकट करे किन्तु पति का सम्मान न छोड़े। अधीरा वह है जो अपने पति का अनादर करके उस पर अपना कोप प्रकट करे। धीराधीरा वह नायिका है, जो धीर वचन कहकर रोने लगे। मध्यमा और चार प्रकार की भी होती हैं। प्ररूढस्मरा, विचित्रसुरता, प्ररूढयौवना और ईषत् प्रगल्भवचना। प्रगल्भा के चार भेद हैं—गाढतारुण्या, समस्तरतिकोविदा, स्मरान्धा और भावोन्मत्ता। इनमें भी धीरा, अधीरा और धीराधीरा होती हैं। कनिष्ठा और ज्येष्ठा भेद भी है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परकीया और सामान्या के भी कई भेद हैं पर यहाँ लिखना आवश्यक नहीं। इन भेदों के सिवा सभी नायिकाओं के दस अवस्थाभेद होते हैं, इनके नाम ये हैं—

१. **प्रोषितभर्तृका**—जिसका पति परदेश गया हो।
२. **खण्डिता**—जिसके पति ने दूसरी स्त्री के घर रात बिताई हो।
३. **कलहान्तरिंता**—जो प्रियतम का अपमान करके पछता रही हो।
४. **विप्रलब्धा**—जो प्रियतम को नियत स्थल पर न पाकर निराश हो गई हो।
५. **विरहोत्कण्ठिता**—जो प्रियतम के न आने से चिंतामग्न हो।
६. **वासकसज्जा**—जो प्रेमी से मिलने की आशा में सेज सजाकर स्वयं शृङ्गार किए हो।
७. **स्वाधीनपतिका**—जिसका पति उसके अधीन हो।
८. **अभिसारिका**—जो अपने प्रिय से मिलने सङ्केत स्थल पर जाती हो। इसके शुक्ला और कृष्णा दो भेद हैं।
९. **प्रवत्स्यत् पतिका**—जिसका पति परदेश जाने वाला हो।
१०. **एष्यत्प्रिया**—जिसका पति परदेश से आने वाला हो।

नायक-नायिका के बहुत से भेद हैं। यहाँ केवल सङ्गीत के उपयोगी अंश दिए गए हैं। सङ्गीत के प्राचीन विद्वानों ने राग-रागिनियों के मानुषी रूपों की कल्पना की है जिससे यह निश्चित हो जाता है कि किस राग का कौन नायक है और उसमें कौन रस प्रधान है। इससे यह निश्चित करना सुगम हो जाता है कि किस राग या रागिनी में किस रस का साहित्य गाया जाय। इस विषय में अधिक विवेचन की आवश्यकता है। यहाँ हम केवल कुछ रागिनियों और रागों के ही रूपों का वर्णन करते हैं।

१. भैरव—जटाजूट में गङ्गा, सिर-मुकुट में चन्द्रमा, हाथ में सर्प और कण्ठ में सर्पों की माला है। इसके वस्त्र श्वेत हैं। यह कामदेव के विध्वंस करने वाले, तीन नेत्र वाले महादेव के समान है। इसका धैवत स्वर (वादी) है, ध नि स ग म स्वरों से शोभित है, और शरद ऋतु में प्रातःकाल के समय गाया जाता है।

२. भैरवी-रागिनी का स्वरूप—एक गोरे रँग की स्त्री है, जिसके विशाल नेत्र हैं, जो श्वेत रंग की साड़ी और रक्त कञ्चुकी पहने है, जिसके गले में चम्पा के फूलों की माला है, जो स्फटिकशिला पर बैठी हुई शिवजी के मुकुट की पूजा कर रही है और ताल देकर गाने में मग्न है। इसका मुख्य स्वर मध्यम है और यह प्रातःकाल गायी जाती है।

३. गौरी रागिनी—एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री है। श्वेत वस्त्र पहने है जिसकी बोली कोयल से भी अधिक मधुर है, जिसने कान में नवीन आम्रदल रक्खा है, जिसकी कान्ति सुन्दर नील कमल के समान है और मुख चन्द्रमा के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

समान। इसकी स्थिति षड्ज स्वर में है। यह शरत् काल में दिन के चौथे पहर में गायी जाती है।

४. ललिता रागिनी—यह एक सुन्दर स्त्री है, जिसका गोरा मुँह है जो अमूल्य और सुन्दर आभूषण पहने है जो लाल वस्त्र धारण किए है जिसका कण्ठ पान की लाली से लाल है और अमृत-तुल्य जिसकी वाणी है। यह वसन्त ऋतु में दिन के पहले पहर में गाई जाती है।

इसी तरह और सब राग-रागिनियों के मानुषी स्वरूपों का भी वर्णन है। इस वर्णन से हम यह मालूम कर सकते हैं किस रागिनी में कौन सा रस प्रधान है। और जब हमें यह मालूम हो गया, तो हम शीघ्र ही निश्चय कर सकते हैं कि हमें इस रागिनी में यह चीज़ गानी चाहिए। अब हम पूर्वोक्त चार राग-रागिनियों के वर्णन को साहित्यिक रीति से स्पष्ट कर दिखाने की चेष्टा करते हैं।

भैरव राग के वर्णन से यह पता चलता है कि इसमें जिस पुरुष का वर्णन है, वह धीरोदत्त नायक है। धीरोदात्त वह नायक है जो अपनी प्रशंसा आप ही न करे; क्षमावान्, गम्भीर, उदारचित्त, विनययुक्त और दृढ़व्रत हो। ऐसे नायक की नायिका भी स्वकीया है। इसमें शान्तरस है जो देवादि विषयक है। जब यह मालूम हो गया कि भैरव राग शान्तरस प्रधान है तो उसमें शान्तरस सम्बन्धी चीज़ें ही गानी चाहिए, न कि वीर या शृङ्गार रस की। यदि हम दूसरे रस की चीज़ गावें तो रस भङ्ग हो जायगा। आजकल गवैए इस बात पर कुछ ध्यान नहीं देते क्योंकि उनको सङ्गीत-विद्या के सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञान नहीं रहता। इस कुचाल को छोड़कर राग-रागिनी को इसके मुख्य रस के अनुसार गाना सङ्गीत का सुधार करना है।

हम अपने कथन के समर्थन में सूरसागर से एक-दो भजन भी देते हैं—

राग भैरव

मङ्गल माधवनाम उचार।
मङ्गल-बदन कमल-कर मङ्गल, मङ्गल जनहि सदा सम्भार ॥
देखत मङ्गल पूजत मङ्गल, गावत मङ्गल चरित उदार ।

(२)

सुमिरौ नटनागर वर सुन्दर गोपाल लाल ॥
सब ही दुख मिटि जैहैं चिन्तत लोचन विशाल ।
अलकनि की झलकनि लखि पलकनि गति भूलि जाति ।

इन दोनों भजनों में हरिकीर्तन है। ऐसी चीज़ों का गान भैरव राग में होना चाहिए। तभी उस राग का पूर्ण विकास होगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अब भैरवी रागिनी को देखिए। इसके वर्णन से यह ज्ञात होता है कि यह प्रगल्भा, गाढतारुण्या और प्रोषितभर्तृका, स्वाधीनपतिका नायिका है। यह देवपूजन में लीन है। स्पष्ट है इस रागिनी का रस शान्त है। अतः इस रागिनी में भी शान्त रस विषयक गान करना चाहिए। उदाहरणार्थ पढ़िए—

रागिनी भैरवी (१)

प्रभु तेरी लीला अपरंपार—अगम अपार ।
खण्ड ब्रह्माण्ड रचे सब तेरे कोऊ न पावत पार ॥
सुर नर मुनि खोजत हारे पढ़-पढ़ वेद विचार । प्रभु०

(२)

जे जन शरण गए ते तारे।
दीनदयाल प्रकट पुरुषोत्तम सुनिए नन्ददुलारे ॥
माला कण्ठ तिलक माथे दै शङ्ख चक्र वपु धारे ।
जितने रवि-छाया के किनके तितने दोष हमारे ॥
तुम्हरे दरस प्रताप तेज ते तत्छन सिगरे टारे ।
मानिक चन्द प्रभु के गुन ऐसे महापतित निस्तारे ॥

तीसरी गौरी रागिनी का स्वरूप देखिए—यह मध्या, स्वकीया प्रोषितभर्तृका नायिका है। इसका नायक धीरललित है। यानी वह नायक, जिसे कोई चिन्ता नहीं है जो स्वभाव का मृदु है और गाने-बजाने में रात-दिन लगा रहता है। इस रागिनी में विप्रलम्भशृङ्गार यानी वियोग विषयक शृङ्गार रस है। अतः इस रागिनी में इसी रस की चीज़ें गानी चाहिए। उदाहरणार्थ पढ़िए—

रागिनी गौरी (१)

केते दिन बीते हरि देखे बिनु भाई।
नन्द-सुवन मुख-कमल मनोहर मूरति श्याम सुखदाई ॥
जब उठिजात प्रात गो-सुत लै गोविंद ग्वाल संग बल भाई ।
अबजु निकट मथुरा मधुसूदन निपट जनक-जननी बिसराई ॥

(२)

हरि बिनु कौन सौं कहिए।
मन में व्यथा रहित अरनी ज्यों उर अन्तर दहिए ॥
कानन-भवन रैनि-बासर सखि काहु न सुख लहिए ।
हम तौ भईं जड़ के पसु ज्यौं कब लौं दुख सहिए ॥
कबहुँक जिय आवत लै ऐसी जाय जमुनजल बहिए ।
सूरदास प्रभु राम कृष्ण बिनु कैसे के ब्रज रहिए ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चौथी रागिनी ललिता है। यह अभिसारिका है। इसका नायक अनुकूल है। इसका रस संयोगश्रृङ्गार है। इस रागिनी में संयोग विषयक चीज़ें गानी चाहिए। उदाहरण लीजिए—

ललिता रागिनी

आजु अति रैनि उनींदे लाल।
सुमन सुगन्ध सेज है डासी देखति अँग बेहाल ॥
मेरे कहे न्हाउ, कछु भोजन करहु मदन गोपाल ।
निशि श्रम भयो, पीर मोहि आवत सुनति परस्पर बाल ॥
सूर स्याम सुनि बचन कपट जिय भरि लीन्हों अँक माल ।

यहाँ नमूने के तौर पर केवल दो-चार राग-रागिनियों के स्वरूप ही दिए हैं और उनके प्रधान रसों को बताया है। हमारी 'साहित्य-सङ्गीत-निरूपण' नामक पुस्तक के लिए हमने बड़ी खोज और बड़े परिश्रम से 'साहित्य-गूढार्थ-रागमाला' के छः राग और तीस रागिनियों का साहित्यिक विवरण एकत्र किया है। इससे मुख्य-मुख्य रागिनियों के गाने का समय ही नहीं मालूम होगा, बल्कि उनके प्रधान रसों और तत्सम्बन्धी अन्य आवश्यक बातों का भी ज्ञान होगा।

साहित्य-गूढार्थ-रागमाला के छः राग

१. भैरव। उत्पत्ति—महादेवजी के मुख से। प्रधान स्वर—धैवत। ऋतु—शरत्काल। समय—प्रातःकाल। रागप्रभाव—कोल्हू का चलने लगना। नायक—धीरोदात्त। नायिका—स्वीया। रस—शान्त, देवादि विषयक रति। गेय साहित्य—शान्त रस सम्बन्धी अथवा देवादि विषयक।

२. मालकोश। उत्पत्ति—महादेवजी के कण्ठ से। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—शिशिर। समय—रात्रि का चौथा प्रहर। रागप्रभाव—पाषाण का पिघलना। नायक—दक्षिण। नायिका—स्वकीया। रस—संयोगश्रृङ्गार। गेय साहित्य—संयोगश्रृङ्गार रस की चीजें।

३. हिण्डोल। उत्पत्ति—ब्रह्मा के देह से। प्रधान स्वर—धैवत। ऋतु—वसन्त। समय—दिन का पहला पहर। रागप्रभाव—हिंडोला घूमने लगना। नायक—शठ। नायिका—प्रौढ़ा, परकीया। रस—विप्रलम्भ, पूर्वराग श्रृङ्गार। गेय साहित्य—विप्रलम्भ, पूर्व राग श्रृङ्गार की चीज़ें।

४. दीपक। उत्पत्ति—भगवान् सूर्य के नेत्र से। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—ग्रीष्म। समय—मध्याह्न। रागप्रभाव—दीपक का अपने आप जल उठना। नायक—शठ। नायिका—स्वीया, मध्या, प्ररूढ यौवना। रस—संयोगश्रृङ्गार। गेय साहित्य—संयोग श्रृङ्गार के विषय की चीजें।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५. **श्री राग**। उत्पत्ति—देवताओं से। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु हेमन्त। समय—दिन का चौथा भाग। रागप्रभाव—सूखे वृक्ष को हरा-भरा कर देना। नायक—धीरप्रशान्त। नायिका—कन्यका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार। गेय साहित्य—विप्रलम्भ शृङ्गार की चीज़ें।

६. **मेघ मल्लार**। उत्पत्ति—आकाश से। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—वर्षा। गायन समय—रात्रि का चौथा प्रहर। रागप्रभाव—बादलों से जल बरसाना। नायक—धीर प्रशान्त। नायिका—परकीया, कन्यका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार। गेय साहित्य—विप्रलम्भ शृङ्गार रस की चीज़ें।

साहित्य-गूढार्थ-रागमाला की तीस रागिनियाँ

(१) प्रथम राग **भैरव** की भैरवी, वैराटी, मधुमाधवी, सैंधवी तथा बङ्गाली पाँच रागिनियाँ है।

१. **भैरवी**। प्रधान स्वर—मध्यम। ऋतु—शरद्। गायन समय—प्रातःकाल। नायक—अनुकूल। नायिका—प्रगल्भा, गाढतारुण्या, प्रोषितभर्तृका। रस—शान्त, देवादि विषयक रति। जो रस इस रागिनी का है उसी की चीज़ गानी चाहिए। इसी प्रकार सभी रागिनियों के रस के अनुसार उन की चीज़ें गानी चाहिए।

२. **वैराटी**। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—शरद्। गायन समय—दिन का अन्तिम भाग। नायक—अनुकूल। नायिका—सामान्या, प्रौढा, स्वाधीनभर्तृका। रस—संयोग शृङ्गार।

३. **मधुमाधवी**। प्रधान स्वर—मध्यम। ऋतु—शरद्। समय—दिन का प्रथम भाग। नायक—धीरोदात्त। नायिका—स्वीया, मध्या, प्ररूढस्मरा। रस—संयोग शृङ्गार।

४. **सैंधवी**। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—शरद्। समय—दिन का चतुर्थ भाग। नायक—धृष्ट। नायिका—स्वीया, प्रगल्भा, अधीरा, खण्डिता। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

५. **बङ्गाली**। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—शरद्। समय—दिन का चतुर्थ भाग। नायक—धीरोदात्त। नायिका—प्रगल्भा, प्रोषितभर्तृका, अभिसारिका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

(२) द्वितीय राग **मालकोश** की टोड़ी, गौरी, गुनकली, खम्भाती तथा ककुम्भिका पाँच रागिनियाँ हैं।

१. **टोड़ी**। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—शिशिर। गायन समय—मध्याह्न-काल। नायक—धीरप्रशान्त। नायिका—परकीया, कन्या, मदयौवना। रस—विप्रलब्ध शृङ्गार।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२. गौरी। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—शिशिर। समय—दिन का चौथा भाग। नायक—धीरललित। नायिका—स्वीया, मध्या, प्रौढयौवना, प्रोषितभर्तृका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

३. गुनकली। प्रधान स्वर—निषाद। ऋतु—शिशिर। गायन समय—दिन का प्रथम भाग। नायक—धीरोदात्त। नायिका—मुग्धा, मानमृदु अभिसारिका, स्वीया, विरहोत्कण्ठिता। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

४. खम्भाती। प्रधान स्वर—धैवत। ऋतु—शिशिर। समय—रात्रि का तीसरा भाग। नायक—धीरललित। नायिका—सामान्या, वासकसज्जा। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

५. ककुम्भिका। प्रधान स्वर—धैवत। ऋतु—शिशिर। गायन समय—रात्रि का चौथा भाग। नायक—धीरललित। नायिका—सामान्या, समस्त रसकोविदा। रस—संयोग शृङ्गार।

(३) तृतीय राग **हिण्डोल** की रामकली, वैशाखी, ललिता, विलावल और पटमञ्जरी पाँच रागिनियाँ हैं।

१. रामकली। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—वसन्त। समय—रात्रि का चौथा भाग। नायक—धीरोदात्त। नायिका—कान्ताभिसारिका, कन्या। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

२. वैशाखी। प्रधान स्वर—गान्धार। ऋतु—वसन्त। समय—दिन का पहला भाग। नायक—धीरोदात्त। नायिका—कन्या, अभिसारिका। रस—संयोग शृङ्गार।

३. ललिता। प्रधान स्वर—धैवत। ऋतु—वसन्त। समय—दिन का पहला भाग। नायक—अनुकूल। नायिका—प्रौढा, अभिसारिका। रस—संयोग शृङ्गार।

४. बिलावल। प्रधान स्वर—धैवत। ऋतु—वसन्त। समय—रात्रि का दूसरा भाग। नायक—धीरोदात्त। नायिका—प्रौढा, अभिसारिका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

५. पटमञ्जरी। प्रधान स्वर—पञ्चम। ऋतु—वसन्त। समय—रात्रि का दूसरा भाग। नायक—धीरोदात्त। नायिका—स्वकीया, प्रोषितभर्तृका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

(४) चतुर्थ राग **दीपक** की देशी, कुमोदिनी, नट, केदारा, और कान्हरा, पाँच रागिनियाँ हैं।

१. देशी। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—ग्रीष्म। गायन समय—मध्याह्नकाल। नायक—धीरोदात्त। नायिका—प्ररुढस्मराभिसारिका। रस—संयोग शृङ्गार।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२. **कुमोदिनी**। प्रधान स्वर—धैवत। ऋतु—ग्रीष्म। गायन समय—मध्याह्नकाल। नायक—धीरोदात्त। नायिका—प्ररूढयौवनाभिसारिका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

३. **नट**। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—ग्रीष्म। समय—दिन का चतुर्थ भाग। नायक—अनुकूल। नायिका—परकीया, कन्या, स्वाधीनभर्तृका। रस—संयोग शृङ्गार।

४. **केदारा**। प्रधान स्वर—निषाद। ऋतु—ग्रीष्म। समय—मध्याह्नकाल। नायक—धीर प्रशान्त। नायिका—स्वीया, प्रोषितभर्तृका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार, पूर्वराग।

५. **कान्हरा**। प्रधान स्वर—निषाद। ऋतु—ग्रीष्म। समय—रात्रि का प्रथम भाग। नायक—धृष्ट। नायिका—प्रगल्भा, अधीरा, प्रोषितभर्तृका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

(५) पाँचवें **श्री** राग की मालश्री, मारू, धनाश्री, वसन्त और आसावरी पाँच रागिनियाँ हैं।

१. **मालश्री**। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—शरद्। समय—मध्याह्नकाल। नायक—धीरोदात्त। नायिका—विप्रलब्धा, अभिसारिका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

२. **मारू**। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—हेमन्त। गायन समय—दिन का चौथा भाग। नायक—धीरोदात्त। नायिका—प्रगल्भा, वासकसज्जा। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

३. **धनाश्री**। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—हेमन्त। समय—मध्याह्नकाल। नायक—धीरोदात्त। नायिका—मुग्धा, मान, मृदुविरहोत्कण्ठिता। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

४. **वसन्त**। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—वसन्त। समय—दिन का दूसरा भाग। नायक—धीरोदात्त। नायिका—मध्याभिसारिका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

५. **आसावरी**। प्रधान स्वर—धैवत। ऋतु—हेमन्त। गायन समय—मध्याह्नकाल। नायक—धीरोदात्त। नायिका—सामान्या, श्वेताभिसारिका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

(६) छठें राग **मेघ मल्लार** की टङ्क, मलार, गुर्जरी, भूपाली और विभास पाँच रागिनियाँ हैं।

१. **टङ्क**। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—वर्षा। समय—रात्रि। नायक—अनुकूल। नायिका—स्वीया, मध्या, विरहोत्कण्ठिता। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

२. **मलार**। प्रधान स्वर—धैवत। ऋतु—वर्षा। समय—रात्रि के पिछले तीन भाग। नायक—अनुकूल। नायिका—स्वीया, मध्या, प्रोषितभर्तृका। रस—विभास पर्यन्त सभी का विप्रलम्भ शृङ्गार कहा गया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३. गुर्जरी। प्रधान स्वर—ऋषभ। ऋतु—वर्षा। समय—रात्रि। नायक—शठ। नायिका—सामान्या खण्डिता। रस—पूर्ववत्।

४. भूपाली। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—वर्षा। समय—प्रातःकाल। नायक—शठ। नायिका—प्रगल्भा, श्वेताभिसारिका, वासकसज्जा। रस—पूर्ववत्।

५. विभास। प्रधान स्वर—षड्ज। ऋतु—वर्षा। समय—रात्रि का चौथा भाग। नायक—अनुकूल। नायिका—प्रगल्भा, गाढतारुण्या, स्वाधीनभर्तृका। रस—विप्रलम्भ शृङ्गार।

ये विवरण हमने बड़ी खोज और परिश्रम से अपनी पुस्तक के लिए एकत्र किए थे। राग-रागिनियों के मानुषी रूप होने की कल्पना सङ्गीत-विषयक संस्कृत ग्रन्थों में मिलती है। हमारी (कन्नोमल) 'साहित्य-सङ्गीत-निरूपण' नामक पुस्तक में एक संस्कृत-ग्रन्थ के आधार पर ही राग-रागिनियों के रूपों का वर्णन है।

प्राचीन काल में सङ्गीत और साहित्य में पूरा मेल था। पर ज्यों-ज्यों इस विद्या का लोप होता गया और गायनकला निरक्षर गवैयों के हाथ में जाने लगी, साहित्य-सङ्गीत के मार्मिक सम्बन्ध का ज्ञान जाता रहा। अब ऐसी कुप्रथा है कि गवैए राग-रागिनियों के गाने के समय का ख़याल तो रखते हैं, पर जो परमावश्यक बात है, यानी उनके प्रधान रसों का ज्ञान, उसकी कुछ परवा नहीं करते। यदि कोई साहित्य उसी राग-रागिनी में गाया जाय जो उसके लिए नियुक्त है, तो गायन का प्रभाव ही और हो और जिस उद्देश्य से इस विद्या और कला का आविष्कार हमारे ऋषि-महात्माओं ने किया है, उसकी पूर्ति भी हो। सङ्गीत-कला का उद्देश्य केवल मनोरञ्जन करना और भोग-विलास में योग देना ही नहीं बल्कि उसका अन्तिम लक्ष्य—"मनुष्य की चित्त-वृत्तियों को ईश्वर-विषय में लगाकर उसे मोक्ष-पद तक ले जाना है।" लेखक—कन्नोमल। शीर्षक—'साहित्य-सङ्गीत-संयोग'। माधुरी मासिक, (वर्ष ४, खण्ड २, संख्या ५, दि० १७ जून १९२६ ई०) पृष्ठ ६३७-६४३।

उल्लिखित लेख में प्रतिपादित तथ्य कुछ प्रश्नों को जन्म देते हैं। ये प्रश्न शोध छात्रों को प्रोत्साहित करेंगे। लेखक का उद्देश्य स्पष्ट है अतः यह उद्धरण दिया गया है। यद्यपि अनेक स्थलों पर लेखक अनिश्चय की स्थिति में प्रतीत होते हैं।

✤

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३

अतीत के सन्दर्भ

'देशी' सङ्गीत लोकरुचि का परिणाम होता है। लोक की परिवर्तनशील रुचि, सङ्गीत में सदैव परिवर्तन करती रहती है। यह लोकरुचि का ही प्रभाव है, कि महर्षि भरत द्वारा निर्दिष्ट जाति-गान क्रमशः उपेक्षित, विस्मृत तथा परित्यक्त होता चला गया। अन्ततः महर्षि की श्रुति सारणा प्रक्रिया हमारे लिये दुर्बोध एवं जटिल पहेली मात्र होकर रह गई।

सन्दर्भ पूर्ति हेतु हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में भरतोक्त जातियों की चर्चा करेंगे। प्रसिद्ध सङ्गीतशास्त्री ठाकुर जयदेव सिंह का कथन है—"जाति-गान वस्तुतः गान्धर्वगान था जो कि बहुत ही प्राचीन समय से चला आ रहा था। भरत ने जातिगान का आविष्कार नहीं किया, उसके लक्षण बताये हैं। जातिगान बहुत ही पावन समझा जाता था और उसके नियमों में कोई हेर-फेर नहीं किया जा सकता था। जातियाँ वेदमन्त्रों के समान पवित्र समझी जाती थीं। मतङ्ग के समय (नवीं शती) तक जातिप्रयोग का इस प्रकार लोप हो गया कि उनके लिये उसकी निश्चित रूप से परिभाषा देना भी कठिन हो गया। आजकल विद्वानों में जाति स्वरूप के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं। मेरी समझ से इसकी अभिनवगुप्त कृत परिभाषा सर्वोत्तम और ग्राह्य है।" उन्होंने कहा है—रञ्जन और अदृष्ट अभ्युदय को निष्पन्न करने वाले विशिष्ट स्वर, विशेष प्रकार के सन्निवेश में जाति कहलाते हैं। इस परिभाषा में दो बातें ऐसी हैं जो बिल्कुल स्पष्ट हैं—(१) स्वरों का विशेष सन्निवेश या विन्यास, (२) इस सन्निवेश में रञ्जकता का होना। स्वरों के विशेष सन्निवेश का क्या तात्पर्य है? इसको अभिनवगुप्त ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने कहा है—"जाति लक्षणेन दशकेन भवति सन्निवेशः" अर्थात् सन्निवेश से तात्पर्य है जाति के दस लक्षण। वे दस लक्षण निम्नलिखित हैं—

ग्रहांशौ तारमन्द्रौ च, न्यासापन्यास एव च ।
अल्पत्वं च बहुत्वं च, षाडवौडुविते तथा ॥ नाट्यशास्त्र अ० २८/७४

अर्थात् जिसमें ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवत्व और औडवत्व के नियमों द्वारा, स्वर-सन्निवेश किया गया हो वह 'जाति' है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जातिगान सङ्गीत की एक बहुत विकसित अवस्था में प्रादुर्भूत हुआ था। तभी वह इतने लक्षणों द्वारा व्यक्त होता था। जिस रूढ अर्थ में हम आजकल 'राग' शब्द का प्रयोग करते हैं, 'जाति' वस्तुतः उसका पूर्व रूप है।[१]

जाति और राग के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए आचार्य बृहस्पति के शब्द हैं—''महर्षि भरत ने सात ग्राम राग गिनाये हैं। उनके प्रयोग के अवसर भी निर्दिष्ट किये हैं। अन्तर स्वरों के प्रयोग से जाति रागों का जन्म भी बताया है परन्तु राग का लक्षण नहीं किया है। महर्षि ने ग्राम रागों को जाति से उत्पन्न बताया है। उन्होंने यह भी कहा है कि, लोक में जो कुछ गाया जाता है, वह सब जातियों में स्थित है। वस्तुतः जातियों के विशद परिसंख्यान ने, जहाँ तिरसठ अंश हैं तथा लक्षण-विकृति से जहाँ जातियों के अनेक अवान्तर भेद सम्भव हैं, जातियों के क्षेत्र को इतना विस्तृत बना दिया है कि उसमें किसी भी 'राग' का अन्तर्भाव हो सकता है।[२]''

जातियों के विस्तार और उनकी क्षमता को सूचित करते हुए महर्षि भरत का कथन है—यत्किञ्चिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्। अर्थात् लोक में जो कुछ भी गाया जाता है वह जातियों में स्थित है।[३] महर्षि के इस कथन में सन्देह का कोई स्थान नहीं है किन्तु यह तभी सम्भव था जब हम बाइस श्रुतियों और उनकी मूर्च्छना-प्रक्रिया से परिचित होते। काल प्रभाव ने हमें वैदिक अथवा मार्गी सङ्गीत से विमुख किया। अब श्रुति-सारणा से भी दूर होने की घड़ी आई। मतङ्ग-काल तक (नवीं शती) आते-आते मूर्च्छना-प्रक्रिया हमारे लिए दुर्बोध हो गई। किन्तु भाषा और व्याकरण की भाँति यदि सङ्गीत है तो उसका एक शास्त्र होगा ही। अतः अनेक विद्वानों ने अपने काल के सङ्गीत को अपनी-अपनी गति-मति के अनुसार नियमबद्ध करने और उसे शास्त्रीय रूप देने का प्रयत्न किया। परन्तु इन प्रयत्नों का परिणाम न तो भरत जैसा निर्भ्रान्त है, न ही सम्पूर्ण। शास्त्र की जटिलता और इसके अनुशासन से बचने की प्रवृत्ति, मुसलमानों द्वारा किया गया अपने शास्त्र का अपमिश्रण, अनेक अशिक्षित, स्वेच्छाचारी गायकों की मनमानी और दरबारी पाखण्ड आदि के कारण भारतीय सङ्गीत का जिस प्रकार रूप-परिवर्तन होता रहा उसका किसी एक शास्त्रकार द्वारा नियमबद्ध कर पाना सम्भव नहीं रह गया। हिन्दू और मुसलमान गायकों की होड़ ने ऐसे रागों को जन्म दिया जिनका आधार निश्चित करने में सङ्गीत-शास्त्र असमर्थ होता रहता है।

---

१. ठा० जयदेव सिंह, भूमिका, *भरत का सङ्गीत सिद्धान्त*, पृ० १०, ११, १३

२. आचार्य बृहस्पति, *भरत का सङ्गीत सिद्धान्त*, अ० ६, पृ० १९९

३. *वही*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'सङ्गीत' शब्द से गायन, वादन और नृत्य तीनों का बोध होता है। इनमें गायन सर्वश्रेष्ठ स्वीकृत है अतः हमें अपनी दृष्टि गायन पर केन्द्रित करना उपयुक्त होगा। हमारे रागों को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला नाम है अमीर ख़ुस्रो का। अमीर ख़ुस्रो के जन्म से अत्यन्त पूर्ववर्ती दिनों में भारतीय सङ्गीत का प्रचार विदेशों में हो चुका था। इसकी चर्चा करते हुए आचार्य बृहस्पति के शब्द हैं—सुदूर अतीत के यात्रियों, भिक्षुओं, सन्न्यासियों, आदि के द्वारा भारतीय ज्ञान की अनेक शाखायें अन्य देशों को गईं। मनु के अनुसार तो अनेक विदेशी जातियाँ पहले कभी क्षत्रिय थीं जो ब्राह्मणों से सम्पर्क न रह सकने के कारण वृषल (जातिच्युत-शूद्र) हो गईं। इन जातियों में मनु ने यवनों की भी चर्चा की है। भगवान् कृष्ण के काल में ही कालयवन नामक म्लेच्छ हो चुका था और श्रीमद्‌भागवत् के अनुसार भगवान् कृष्ण ने उसका मुँह देखना तक अनुचित समझा।

विदेशी जातियों में हमारे ज्ञान के कुछ ही अंश सुरक्षित रह सके। प्रसिद्ध यूनानी विचारक पायथागोरस ने भारत से ही प्रभावित होकर पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। सङ्गीत के क्षेत्र में यूनानी 'मोड्स' भारतीय मूर्च्छनाओं का नामान्तर मात्र है और 'कॉमा' भारतीय 'प्रमाणश्रुति' का। एक विद्वान् ने तो ईरान और भारत को 'एक सिक्के के दो पहलू' कहा है।

मुसलमान जब भारत में आये तो वे प्राचीन मूर्च्छना सिद्धान्त भूल चुके थे। उस के स्थान पर उनके पास एक 'मुक़ाम-पद्धति' थी। एक स्थान (मन्द्र, मध्य तथा तार) में उनके तन्त्रवाद्यों पर बारह अचल सारिकायें थीं जिनसे बारह ध्वनियाँ गुञ्जित होती थीं। ये सारिकाएँ 'पर्दा' कहलाती थीं।

इन बारह ध्वनियों की पृथक्-पृथक् संज्ञायें थीं। वे अपने रागों में जिन सात या आठ स्वरों का उपयोग करते थे, उनके समूह को 'मुक़ाम' कहते थे। ये अपने रागों को बारह मुक़ामों में विभाजित करते थे। इन्होंने भारतीय रागों को सुनकर उनका वर्गीकरण भी मुक़ामों में किया। फलतः भारत में भी ऐसी वीणाओं की सृष्टि हुई जिन में एक स्थान के अन्तर्गत बारह ध्वनियों को अचल रूप में व्यक्त करने का प्रबन्ध हुआ।

आधुनिक उत्तर भारतीय सरस्वती वीणा तथा दाक्षिणात्य वीणा में अचल सारिका-स्थापन, षड्ज एवं पञ्चम स्वरों को अचल माना जाना, उत्तर भारतीय वैणिकों में 'ठाठ' शब्द का प्रयोग, दाक्षिणात्य मेल सिद्धान्त, मूर्च्छनातत्त्व का लोप, एक स्थान के अन्तर्गत 'सां रे॒ रे ग॒ ग म मं प ध॒ ध नि॒ नि' बारह स्वर संज्ञाओं की कल्पना, लोचन द्वारा 'संस्थान' (मुक़ाम) पद्धति से भारतीय रागों का वर्गीकरण, अकलङ्क जैसे दाक्षिणात्य आचार्यों द्वारा श्रुति संख्या का चौबीस

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

माना जाना तथा षड्ज-पञ्चम-लोपी रागों की असम्भाव्यता आदि आधुनिक स्थितियाँ भारतीय सङ्गीत पर मुस्लिम प्रभाव हैं।

यही नहीं मूर्च्छनाओं के अंश स्वर के साथ 'रस' का तथा अन्य स्वरों के साथ भावाभिव्यक्ति का जो सहज सम्बन्ध भारतीय मनीषियों ने ढूँढा था, वह भी इस 'मुक़ाम पद्धति' के परिणाम स्वरूप आज तक लोगों की दृष्टि से प्रायः तिरोहित है।

ध्वनि के सिद्धान्त सार्वभौम एवं सनातन हैं। भारतीय मनीषियों ने इन पर विचार किया है फलतः विभिन्न 'स्केल' किसी न किसी भारतीय मूर्च्छना में मिल जाते हैं। जिस पाश्चात्य स्केल—"CDEFGAB" से आधुनिक विलावल ठाठ की तुलना की जाती है, वह षड्ज ग्रामीण सान्तरा मूर्च्छना—'म[४] प[४] ध[३] नि्[२] सा[४] रे[३] ग[२]' के अतिरिक्त कुछ नहीं। इसी दृष्टि से आधुनिक उत्तर भारतीय एवं दाक्षिणात्य वीणाओं में षड्ज ग्रामीण 'निषादादि' तथा मध्यम ग्रामीण 'गान्धारादि' मूर्च्छनाओं के शुद्ध एवं विकृत रूप मिल जाते हैं परन्तु अनेक पर्दों से निकलने वाली 'ध्वनियों' का कोई सामञ्जस्य भारतीय मूर्च्छना पद्धति से नहीं बैठता। इस दृष्टि से वे पर्दे अनावश्यक हैं और यह सिद्ध करते हैं कि आधुनिक वीणाओं पर सारिका स्थापन का सिद्धान्त भारतीय मूर्च्छना पद्धति नहीं।[१]

परिवर्तन प्रकृति का अनिवार्य नियम है। यदि मुसलमानों से भारतीय सङ्गीत का सम्पर्क न भी हुआ होता तो भी जनरुचि समयानुसार परिवर्तन करती ही। कुछ नया कर दिखाने की हमारी प्रवृत्ति, हम से परिवर्तन करवाती। अत्यन्त उन्नत श्रुति सारणा प्रक्रिया सभी के वश की बात नहीं थी। अतः बारह स्वरों वाली मुक़ाम-पद्धति लोकप्रिय होती चली गयी।

आज गायन का जो रूप व्यवहार में है, वह और उसका शास्त्र दोनों ही मतान्तर पूरित हैं। महर्षि भरत के पश्चात् का अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ सङ्गीत-रत्नाकर है। ग्रन्थ के विषय में ये कुछ तथ्य हैं। "सङ्गीत-रत्नाकरकार शार्ङ्गदेव के पितामह भास्कर ने बारहवीं शताब्दी में कश्मीर छोड़कर दक्षिण में आश्रय ले लिया था। शार्ङ्गदेव जिस समय (प्रायः १२१३ ई०) *सङ्गीतरत्नाकर* की रचना कर रहे थे उस समय उत्तर भारत का मुस्लिम-शासित प्रदेश भारतीय सङ्गीत-शास्त्रियों से सर्वथा शून्य हो चुका था। सङ्गीत और साहित्य को मनुष्य के दो नेत्र समझने वाले भारतीय आचार्य मुस्लिम प्रदेशों में न रहे[२] थे।" शार्ङ्गदेव के परवर्ती अनेक आचार्यों ने रत्नाकर को आधार मानकर अपने ग्रन्थों की रचना की है।

---

१. आचार्य बृहस्पति, *शास्त्र परिचय-मूर्च्छना तत्त्व*, पृ० २७, २८, २९

२. आचार्य बृहस्पति, *सङ्गीत चिन्तामणि*, पृ० २६६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रत्नाकर प्रणयन के कुछ दिनों बाद अमीर ख़ुस्रो का जन्म १२५४ ई० में हुआ। ख़ुस्रो कुछ संस्कृत जनता था परन्तु भरत के सिद्धान्त उसके लिए सर्वथा दुर्बोध थे; क्योंकि उन सिद्धान्तों का क्रियात्मक रूप उसके समक्ष न था। अतः उसने जो आविष्कार किया, उसमें भरत के शास्त्रीय दृष्टिकोण का सर्वथा अभाव था। भारतीय श्रुति समूह, ग्राम, ग्रामराग, जातिराग, प्रबन्ध प्रकरण, ताल प्रकरण आदि के ज्ञान का उपाय उसके समक्ष न था। राग और रस का पारस्परिक सम्बन्ध तथा भारतीय रस-सिद्धान्त उसकी पहुँच से बाहर थे। साथ ही साथ अपने आस-पास के हिन्दुओं पर अपनी आविष्कारिणी बुद्धि एवं अपनी जाति के सङ्गीत का सिक्का बिठा कर अपने वर्ग को शासित जाति के प्रति श्रेष्ठ दिखाने की जितनी उत्कट भावना ख़ुस्रो में थी, भारतीय सङ्गीत सिद्धान्तों की उतनी जिज्ञासा नहीं थी। यही कारण है कि, ख़ुस्रो द्वारा प्रवर्तित सङ्गीत शैली में प्रधानतया बारह स्वर हैं, बाईस श्रुतियों का अभाव है, राग और रस तथा ताल और छन्द का सामञ्जस्य नहीं है, भारतीय प्रबन्धों के स्थान पर क़ौल और तरानः जैसी वस्तुएँ हैं और ईरानी अलङ्कारों (तहरीर और ज़मज़मा) के लिए आग्रह है।[1]

"मुक़ाम पद्धति को स्वीकार करके भारतीय शास्त्रकारों ने इसका मेल-पद्धति नामकरण किया। ईसा की बारहवीं शताब्दी (लगभग ११६० ईसवी) में लोचन कवि ने सर्वप्रथम रागों के वर्गीकरण की परम्परागत भारतीय शैली, ग्राम और मूर्च्छना का परिहार करके मेल अथवा थाट पद्धति को सामने रखा। कुछ विद्वानों के मत से लोचन का समय पन्द्रहवीं शती का अन्तिम दशाब्द अथवा सोलहवीं शती का प्रथम चरण है।[2]"

थाट पद्धति की चर्चा से पहले राग-रागिनी पद्धति की किंचित् चर्चा उपादेय होगी। हमारे सङ्गीत की प्रारम्भिक प्रतिष्ठा उसके आध्यात्मिक तत्त्वों के कारण हुई। सङ्गीत द्वारा आध्यात्मिक उद्बोधन हेतु तत्कालीन साधकों ने रागों के रूप की कल्पना की। राग की प्रकृति के अनुसार उन्हें जैसी अनुभूति हुई उन्होंने उस स्वर सन्निवेश का उसी भाँति नामकरण तथा देव-देवियों में वर्गीकरण किया। पौरुषपूर्ण स्वरसंहति को राग एवं मृदुलभाव व्यञ्जक स्वर समूह को रागिनी कहा गया। यद्यपि जनरञ्जक होने के कारण सभी राग थे तथापि राग के भावबोध हेतु ऐसा करना आवश्यक था। इस विषय में आचार्य कुन्तक का कथन है—"लिङ्गान्तर होते हुए भी जहाँ स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग किया जाता है वह उसकी शोभा (लालित्य) निष्पत्ति के लिए होता है क्योंकि स्त्री नाम ही कोमल है।[3]"

---

१. आचार्य बृहस्पति, *सङ्गीत चिन्तामणि*, पृ० २६७, २६९
२. श्री भवानीशङ्कर शुक्ल, *सङ्गीत*, विलावल थाट अङ्क, पृ० ९
३. सति लिङ्गान्तरे यत्र स्त्रीलिङ्गं प्रयुज्यते। शोभा निष्पत्तये
यस्मान्नामैव स्त्रीति पेशलम्॥ आचार्य कुन्तक, *वक्रोक्तिजीवितम्* २/२२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुभवाश्रित वर्णन करते हुए पं० अहोबल ने सप्तक के स्वरों का रंग क्रमशः गुलाबी, लालिमायुक्त पीला, पीला, सफेद, काला, पीला तथा बहुरंगी कहा है।[१] इस अनुभूति की पुष्टि करते हुए श्री विवेक शुक्ल का कथन है— "आज से १०० वर्ष पूर्व अंग्रेज वैज्ञानिक सेडले टेलर ने जब यह बात कही कि ध्वनि (आवाज़) का भी अपना रंग होता है, तब उनके इस कथन की उनके सहयोगी वैज्ञानिकों ने ही हँसी उड़ायी थी। किन्तु टेलर अपनी जगह सही थे। आधुनिक वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों द्वारा अब यह सिद्ध कर दिखाया है कि ध्वनि का भी अपना एक रंग होता है।[२]"

आध्यात्मिक क्षेत्र में रंगों का अपना एक पृथक् अस्तित्त्व है। तन्त्र साधना के अनुसार मनुष्य के सात शरीर होते हैं: १. स्थूल शरीर, २. आकाश शरीर या इथरिक बॉडी, ३. सूक्ष्म शरीर, ४. मानस शरीर, ५. आत्मिक शरीर, ६. ब्रह्म शरीर तथा ७. निर्वाण शरीर।

आधुनिक विज्ञान ने परोक्षतः सूक्ष्म शरीर की सत्ता को सिद्ध कर दिया है। प्रख्यात वैज्ञानिक सेम्योन और वेलेन्टीला किर्लियान ने अपने एक प्रयोग से यह सिद्ध कर दिखाया है कि मनुष्य के स्थूल शरीर के अतिरिक्त एक सूक्ष्म शरीर भी होता है। यह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के आसपास विद्युत चुम्बकीय रूप में रहता है। उक्त वैज्ञानिक द्वय के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क के पीछे एक प्रभामण्डल होता है, जैसा कि महापुरुषों या दिव्य पुरुषों के चित्रों में इसे दर्शाया जाता है। सेम्योन और किर्लियान ने मनुष्य के प्रभामण्डल के विभिन्न अवस्थाओं के चित्र भी खींचे हैं। विख्यात दार्शनिक, चिन्तक और अध्यात्मशास्त्री जे० कृष्णमूर्ति ने मनुष्य के प्रभामण्डल को उसके व्यक्तित्व का आईनः माना है। उन्होंने प्रभामण्डल के विभिन्न रंगों के आधार पर मनुष्य के व्यक्तित्व के कई पहलुओं को उजागर किया है। थियोसोफिकल सोसायटी की एनीबेसेन्ट ने भी प्रभामण्डल के विभिन्न रंगों की अपनी ओर से ध्याख्या दी है। मसलन प्रभामण्डल में लाल रंग का उभरना यह उजागर करता है कि अमुक व्यक्ति उत्तेजित और अशान्त है। प्रभामण्डल में यह लाल रंग क्रोध का भी प्रतीक है। क्रोधावस्था के दौरान सूक्ष्म शरीर रूपी यह प्रभामण्डल लाल रंग में परिवर्तित हो जाता है। यह लाल रंग इस बात का भी द्योतक है किं ऐसा व्यक्ति दैहिक सुखों के प्रति आकर्षित है, विषय वासनाएँ उसे अपनी ओर खींच रही हैं तथा वह अपने स्थूल शरीर से ऊपर उठने का आकांक्षी नहीं है। इसी तरह आध्यात्मिक क्षेत्र में अन्य रंगों की भी अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं।[३]

---

१. पं० अहोबल, *सङ्गीत पारिजात*, पृ० २५, हाथरस १९४१ ई०
२. विवेक शुक्ल, लेख, *रंग आपकी ख़बर देते हैं*, नवनीत, दिसम्बर ९५ ई० पृ० ४८
३. *वही*, पृ० ५१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सङ्गीत का स्वरसप्तक हो अथवा अक्षर या शब्द हों, गायन या उच्चारण के समय सबका ध्वनि रूप ही कर्णगोचर होता है। तन्त्र के अनुसार नवार्ण मन्त्र के अक्षरों के रंगों की व्याख्या इस प्रकार की गई है। १. ऐं—चन्द्रमा के समान। २. ह्रीं—सूर्य की भाँति। ३. क्लीं—अग्नि के समान रूपवाला। ४. चा—शुद्ध सोने की कान्तियुक्त। ५. मुं—गहरे लाल रंग का। ६. डा—गाढ़े नीले रंग का। ७. यै—अत्यन्त काला। ८. वि—पीला। ९. च्चे—धुएँ के सदृश। स्पष्ट है, उल्लिखित बीजाक्षरों का रंगनिर्धारण ध्वनि की अनुभूति के आधार पर किया गया है।[१]

उक्त उद्धरण ध्वनि के रंगों को प्रमाणित करते हैं। रंगों द्वारा आकृति की अभिव्यक्ति सहज सम्भव है। सङ्गीत साधकों ने समाधि की अवस्था में राग-रूप के दर्शन किए। व्यक्तिगत अनुभूति के आधार पर वर्णित राग-रागिनियों का रूप, नाम और संख्या वैभिन्य आश्चर्य तथा अनास्था का विषय नहीं होना चाहिए। जाकी रही भावना जैसी।

सङ्गीतदर्पण नामक ग्रन्थ के रचयिता पण्डित दामोदर पं० लक्ष्मीधर के सुपुत्र थे। विद्वानों के मतानुसार सङ्गीतदर्पण की रचना १६२५ ई० के लगभग की गई। स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ अकबर के बेटे जहाँगीर के काल में लिखा गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास) के अनुसार १३१८ ई० से १६४३ ई० तक का काल भक्तिकाल है। इस अवधि में रचित सङ्गीतदर्पण ग्रन्थ अपने पूर्वार्ध स्वराध्याय की अपेक्षा उत्तरार्ध के कारण अधिक लोकप्रिय हुआ। संङ्गीतदर्पण में मेल अथवा थाट पद्धति के विपरीत राग-रागिनी पद्धति से रागों का वर्गीकरण किया गया है। साधकों द्वारा अनुभूत राग-रागिनियों के ध्यान ही ग्रन्थ की लोकप्रियता के कारण हैं। रागध्यान के श्लोकों के आधार पर समकालीन चित्रकारों ने अनेक राग-रागिनियों के चित्रों का निर्माण किया। चित्र और ध्यान के श्लोकों के माध्यम से राग-रागिनी के रूप सङ्गीत साधकों और रसिक सज्जनों के अंतस्तल में गहरे पैठ गए हैं।

चित्र प्रसंग में डॉ० जयसिंह नीरज के शोध प्रबन्ध 'राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्णकाव्य' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं। "भारतीय सङ्गीत का

---

१. वाग्बीजमादिन्दुसमानदीप्तं, ह्रीमर्कतेजोद्युतिमद्द्वितीयम् ।
कामं च वैश्वानरतुल्यरूपं, तृतीय मानन्त्य सुखाय चिन्त्यम् ॥ १ ॥
चा शुद्धजाम्बूनदकान्तिरूपं, मुं पञ्चमं रक्ततरं प्रकल्प्यम् ।
डा षष्ठमुग्रार्तिहरं सुनीलं, यै सप्तमं कृष्णतरं रिपुघ्नम् ॥ २ ॥
वि पाण्डुरं चाष्टममष्ट सिद्ध्यै, च्चे धूमवर्णम् नवमं विशालम् ।
एतानि बीजानि नवाक्षरस्य, जप्तुः प्रदद्युः सकलार्थसिद्धिम् ॥ ३ ॥
कण्ठस्थ, तन्त्रे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आधार राग है। शार्ङ्गदेव ने अपने 'सङ्गीतरत्नाकर' में ध्वनि की उस विशिष्ट रचना को जिसे स्वर तथा वर्ण द्वारा सौन्दर्य प्राप्त हुआ हो और जो श्रोताओं के चित्त को प्रसन्न कर सके, राग माना है।[१]" जिस प्रकार ८४ योग और ८४ भोगों का समावेश हमारे यहाँ मान्य है, उसी प्रकार ८४ राग-रागिनियों की कल्पना भी की गई है।[२] १५वीं० शताब्दी से उत्तरी भारत में राग-रागिनी के स्वरूप तथा वर्गीकरण की प्रणाली पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। समय की गति के साथ ही राग-परिवार में वृद्धि होती रही है, और प्रत्येक राग के साथ उनकी भार्याओं, पुत्रों तथा पुत्रवधुओं का भी उल्लेख होने लगा है।

[मध्यकाल की देन]

काव्य एवं सङ्गीत का परस्पर सम्बन्ध होने के कारण राग-रागिनियों में बद्ध काव्य भक्तिकाल की विशेष देन है। पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सङ्गीत को भगवत् प्राप्ति के प्रमुख साधनों में से माना है। "श्रीनाथजी के स्वरूप-पूजन में शृङ्गार, भोग तथा राग द्वारा की गई सेवा विधि के अन्तर्गत सङ्गीत तथा सङ्कीर्तन को प्रमुख स्थान प्राप्त था। प्रत्येक समय तथा उत्सव की झाँकी में विविध राग-रागिनियों में निबद्ध समयोचित भावानुकूल पदों के गायन, कीर्तन की सम्यक् आयोजना थी। अष्टछाप के कवियों का महत्त्व काव्य एवं सङ्गीत के सामञ्जस्य की दृष्टि से और भी विशेष उल्लेखनीय हो जाता है। उनके प्रत्येक पद की रचना राग-रागिनी के आधार पर होना इस कथन का साक्षी है।[३] आगे चलकर संस्कृत की परम्परा में हिन्दी में भी शृङ्गार-सतसई और नायक-नायिकाभेद, ग्रन्थों की भाँति राग-रागिनियों पर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे जाने लगे।[४] १२वीं शती से १७वीं शती तक राग-रागिनियों के वर्गीकरण की जो परम्परा रही है, उसने तत्कालीन तथा परवर्ती सङ्गीत साहित्य और चित्रकला को विशेष रूप से प्रभावित किया। कृष्ण भक्त कवियों के पदों के ऊपर किसी-न-किसी राग का उल्लेख अवश्य है। विभिन्न राग-रागिनियों का निर्माण उनके स्वरों की प्रकृति के अनुसार तथा उनका स्वरूप उनके स्वभाव और गुण के अनुसार ही मूर्तिमान् हुआ है। काव्य, सङ्गीत और चित्रकला में राग-रागिनियों के

---

१. शार्ङ्गदेव : *सङ्गीतरत्नाकर*, भाग २, पृ० २—योऽयं ध्वनि
विशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः। रञ्जको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः॥

२. रामगोपाल विजय वर्गीय, *राग-रागिनी*, संयुक्त राजस्थान, अक्टूबर-नवम्बर १९५७; पृ० ३१

३. छहो राग छत्तीसो रागिनी इक-इक नीके गावै री। *सूरसागर*, प्रथम खण्ड, पद १८५६, पृ० ६९८, पद २७३-६ में समस्त राग-रागिनियों का विशेष उल्लेख।

४. कृष्णभक्ति कालीन कवि हरिराम व्यास का अप्रकाशित ग्रन्थ *रागमाला* विशेष उल्लेखनीय है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वभाव और गुण की दृष्टि से एक का ही रूप प्रस्तुत किया गया है, जो तीनों कलाओं के सम्बन्ध को स्पष्ट करता है।''

डॉ० जयसिंह नीरज प्रस्तुत प्रसङ्ग में पुनः कहते हैं—''अमूर्त का मूर्तिकरण करने की प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति की विशेष देन रही है। देव-देवियों के कल्पित मूर्त स्वरूप के समान ही राग-रागिनियों की मूर्तता का जो कलात्मक चित्रण एवं उत्कीर्णन क्रमशः चित्रकला और मूर्तिकला[१] में हुआ है, वह सङ्गीत की अमूर्तता के मूर्तिकरण का प्रत्यक्ष उदाहरण है। राग-रागिनी के स्वरूप चित्रण में काव्य विशेष रूप से आधार रहा है। राग-रागिनी के स्वतन्त्र ग्रन्थों के अतिरिक्त देव-देवियों, नायक-नायिकाओं, राधाकृष्ण आदि से सम्बन्धित काव्य की चित्रोपयोगिता तथा अष्ट—नायिकाओं के विविध रूपों एवं देश-काल के अनुकूल अभिप्रायों[२] ने राग-रागिनी चित्रण में विशेष योग दिया है। कुछ ऐसे कथानक जिनका सम्बन्ध राग से है तथा ऐसे महीनों और ऋतुओं का चित्रण जिनमें वे राग गाये जाते हैं तथा राग के भाव, रस आदि का चित्रण 'रागमाला' में विशेष रूप से हुआ है। कुछ एक राग-रागिनियों के स्वरूप का सम्बन्ध कृष्ण चरित्र से जोड़ने के कारण कृष्णकाव्य उनके अङ्कन का आधार रहा है।[३]''

राग-रागिनियों के चित्र तथा अध्यात्म सम्बन्धी चर्चा हम यथावकाश पुनः करेंगे।

सङ्गीतशास्त्र की दृष्टि से राग-रागिनी पद्धति असमर्थ एवं पर्याप्त मतान्तर पूरित है। सङ्गीतदर्पण के अनुसार श्री, वसन्त, भैरव, पञ्चम, मेघ एवं वृहन्नाट ये छः पुरुष राग हैं। इनकी भार्याओं का नाम बताते हुए कहा गया है—मालश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी और पहाड़ी ये श्रीराग की भार्याएँ हैं। दर्पणकार इस वर्गीकरण को शिवमत का आधार देते हैं। इसी प्रकार शेष पाँच रागों की छः-छः रागिनियों के नाम गिनाए गए हैं। हनुमान् मत से रागों का क्रम है—भैरव, कौशिक, हिन्दोल, दीपक, श्री और मेघ। इस मत के अनुसार श्री राग की वासन्ती, मालवी, मालश्री, धनासिका और आसावरी केवल पाँच रागिनियाँ हैं। रागार्णव मत से छः रागों के नाम हैं—भैरव, पञ्चम, नाट, मल्लार, गौड़मालव और देशाख्य। इस तृतीय मत में श्री राग को छोड़ दिया गया है। रागार्णव के

---

१. उषा गुप्ता : *हिन्दी के कृष्ण भक्तिकालीन साहित्य में सङ्गीत*, पृ० ११४

२. सैन्धवी रागिनी सिन्ध के संसार प्रसिद्ध घोड़ों की प्रतीक और सोरठी सौराष्ट्र का राग होने के कारण बीजासोरठ के प्रेमाख्यान की प्रतीक है। (सिंध क्षेत्र से सम्बद्ध आशय है। तुलनीय—सिन्ध भैरवी। मालवा से मालव कौशिक, वङ्गदेश से बङ्गाल भैरव, सौराष्ट्र से सौराष्ट्र भैरव आदि)

३. डॉ० जयसिंह नीरज, *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य*, पृ० १०३-१०५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रागवर्गीकरण में पाँच-पाँच रागों को उल्लिखित छः रागों का आश्रित बताया गया है। रागार्णव के इस वर्गीकरण में प्रथम बार "राग, उनकी भार्या एवं पुत्रादि" पद्धति से असहमति के लक्षण दिखाई देते हैं। यद्यपि इसके वर्गीकरण में भी कोई तर्क सङ्गत आधार नहीं है। रागार्णव के वर्गीकरण में मल्लार राग के आश्रित मेघमल्लार, मालवकौशिक, पटमञ्जरी तथा आसावरी केवल चार रागों को गिना गया है। स्मरणीय है कि, इस वर्गीकरण में राग, राग की पत्नी और पुत्रादि की शैली से हटकर कुछ रागों को किसी एक राग से सम्बद्ध बताया गया है।

अध्यात्म भारतीय चेतना का मूलाधार है। फलस्वरूप विस्मृत जातिगान एवं विदेशी प्रभावपूरित होने के बावजूद हमारे देशी सङ्गीत को उपासना का माध्यम मानने की परम्परा अविच्छिन्न है। राग-रागिनियों के ध्यान की कल्पना इसी आराधना की मानसिकता की देन है। उपासना क्रम में ध्रुवपद, विष्णुपद एवम् सगुण-निर्गुण भजनों के गायन से मन्दिरों के प्राङ्गण गूँजते आ रहे हैं। इन दिनों 'राग' की एक सर्वस्वीकृत परिभाषा घोषित हुई कि 'राग' में ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवत्व तथा औडुवत्व दस लक्षणों के साथ ही जनरञ्जन की सामर्थ्य होना अनिवार्य है। जनरञ्जन शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ। जन का अर्थ स्पष्ट रूप से मनुष्य-समूह मान लिया गया और शास्त्रीय सङ्गीत से यह अपेक्षा की जाने लगी कि वह देव समूह की आराधना के स्थान पर जनसमूह का मनोरञ्जन करे।

राग की उल्लिखित परिभाषा ने राग के क्षितिज को अत्यन्त विस्तृत किन्तु अमर्यादित कर दिया। अमर्यादित इस अर्थ में कि अब राग और गायक-वादकों से यह अपेक्षा की जाने लगी कि वह प्रत्येक मनुष्य का मनोरञ्जन करे ही। इस मत के समर्थकों ने साँप और मृग आदि कीट-पशुओं का उदाहरणं दे-देकर कहना शुरू किया, कि हम तक राग-रस का सम्प्रेषण होना ही चाहिए। हम क्या इन कीट-पशुओं से भी गये बीते हैं? फलस्वरूप विवश गायकों ने जनरञ्जन के नाम पर सम्भव-असम्भव प्रत्येक कल्पनाओं और क्रियाओं का प्रयोग आरम्भ किया। इन ऊटपटाँग हरकतों का परिणाम दो रूपों में सामने आया। राग में अपमिश्रण का दोष और गायकों में विरञ्जक मुद्रादोष। क्यों? कि अब येनकेनाप्युपायेन 'जनरञ्जन' ही प्रमुख लक्ष्य हो चुका था। रस, भाव और इनकी अनुभूति से एकदम परे होकर अब श्रोता सङ्गीतज्ञों से बाज़ीगरी का लुत्फ़ लेने लगे। यह स्थिति 'जनचित्तानाम्'[१] की देन थी।

---

१. योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।
रञ्जको जनचित्तानाम् स रागःकथ्यते बुधैः ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उक्त स्थिति से उत्पन्न निरङ्कुश स्वेच्छाचार को पुनः संयमित करने का प्रयत्न जैनाचार्य पार्श्वदेव ने किया। इन्होंने अपने ग्रन्थ सङ्गीत समयसार में राग की परिभाषा करते हुए लिखा—"विशिष्ट स्वरवर्ण अथवा ध्वनिभेद से जिस के द्वारा सज्जनों के चित्त का रञ्जन हो, सत्पुरुषों के मत से वह राग है।[१]"

जैनाचार्य पार्श्वदेव की उल्लिखित व्यवस्था अत्यन्त स्पष्ट और निर्भ्रान्त है। आचार्य अपना मत व्यक्त करते हुए दो बार सत् शब्द का प्रयोग करते हैं। पहली बार राग सुनकर आनन्दित हुआ श्रोता तथा दूसरी बार राग सुनकर प्रसन्न हुआ, राग को मान्यता प्रदान करने वाला सत्पुरुष। आचार्य पार्श्वदेव की दृष्टि में 'जन' और 'सज्जन' का भेद एकदम स्पष्ट था। जन अर्थात् समुदाय। सज्जन? एक विशिष्ट व्यक्ति। अतः वे रागनिर्णय के लिए जन सामान्य की आवश्यकता नहीं समझते। योगिराज भर्तृहरि का **'साक्षात्पशुः'**, महाकवि सूर का **'पाहन पतित बान नहिं भेदत'**, गोस्वामी तुलसीदास का **'जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं'** कथन ये सब आचार्य के मत का समर्थन करते हैं। पार्श्वदेव की व्यवस्था की अनदेखी करते हुए जनरञ्जन के नाम पर प्रयुक्त-प्रचारित सङ्गीत अगर विकल एवं प्रभावहीन होता गया हो तो इसमें आश्चर्य का कोई कारण नहीं।

---

१. पार्श्वदेव, सङ्गीतसमायसार, पृष्ठ १९,
स्वरवर्णविशिष्टेन ध्वनिभेदेन वा पुनः ।
रज्यते येन सच्चित्तं स रागः सम्मतः सताम् ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

४

ध्रुवपद, पद एवं ख़याल

पिछले लगभग सात सौ वर्षों से व्याप्त अज्ञान, आर्थिक समस्या और जनरञ्जन की विवशता से ग्रस्त-त्रस्त कलाकारों द्वारा प्रयुक्त और परिरक्षित सङ्गीत की विभिन्न शैलियों का क्रम इस प्रकार का होगा। मन्दिरों तथा देवस्थानों में गाये जाने वाले विष्णुपद, ध्रुवपद तथा विभिन्न भाषाओं के भजन-कीर्तन। इनके पश्चात् ख़याल, ठुमरी, टप्पा, क़व्वाली और लोकगीत आदि। एक शोध छात्र के लिए यह स्थिति अत्यन्त विपरीत होती है कि जिस ध्रुवपद विधा को आज की उपलब्ध विधाओं में प्राचीनतम कहा जाता है उसे वह साङ्गोपाङ्ग नहीं देख पाता।

ध्रुवपद के विषय में श्रीकृष्ण नारायण रत्नजङ्कर के शब्द हैं—"ध्रुवपद गायन प्रणाली का इतिहास एक जटिल समस्या है। यह गायन शैली कब ? किसने प्रचलित की ? इस प्रश्न पर सन्तोषजनक जानकारी कहीं नहीं मिलती। आज इस विषय में केवल इतना ही ज्ञात है कि, ग्वालियर नरेश राजा मानसिंह तोमर इस गायन प्रणाली के बड़े पुरस्कर्ता थे। राजा मानसिंह १५वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए थे।

ध्रुवपद गायकी की चार वाणियों का उल्लेख—डागुर, खण्डार, नौहार एवं गौरहारी नाम से पाया जाता है। इन नामों की उत्पत्ति एवं विश्वसनीय लक्षणों का स्पष्टीकरण अभी तक नहीं उपलब्ध है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इन वाणियों का मूल, प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित पञ्चगीतियों में हो सकता है। ये पञ्चगीतियाँ शुद्धा, भिन्ना, गौडी, वेसरा एवं साधारणी नाम से हैं। ये गायन शैलियाँ ही थीं। ग्रन्थों में कई रागों के नाम इन वाणियों से तपे हुए हैं, उदाहरणार्थ शुद्ध तापारत, गौडमञ्चन, गौड कौशिक, भिन्न षड्ज, भिन्न पञ्चम एवं वेसरषाडम् आदि।

उपर्युक्त वाणियों में से एक वाणी (डागुर) के ही ध्रुवपद गायकों के घराने आज देखे जाते हैं। भिन्न-भिन्न गायन शैलियों (वाणियों) में गाने वालों की परम्परा में गायी जाने वाली गायकियों के केवल उल्लेख मिलते हैं। प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा एक-एक गायकी की अन्य गायकियों से किस बात में विशेषता है, इस पर प्रकाश डालने वाले कोई ध्रुवपद गायक हों तो उनके दर्शन का सौभाग्य मुझे (रत्नजङ्कर) अभी तक प्राप्त नहीं हुआ।[1]"

---

१. श्रीकृष्णनारायण रत्नजङ्कर, *आज*, दि० १७-१२-१९६१ ई०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श्री रत्नजङ्कर महोदय की विचार-धारा को आचार्य बृहस्पति ने कुछ और आगे बढ़ाया। आचार्य के अनुसार—ध्रुवपदों में चार बानियाँ प्रसिद्ध अकबरी युग के कहीं बाद हुईं। तानसेन के ध्रुवपदों में 'सुधबानी' (शुद्ध वाणी) की चर्चा मिलती है। 'वाणी' का अर्थ 'रीति' कहीं नहीं होता। सन्तों की उक्ति को भी 'बानी' कहते हैं। प्रदेश-विशेष अथवा जाति-विशेष की भाषा को तत्तत्प्रदेश अथवा तत्तज्जाति की 'वाणी' कहा जा सकता है। गान शैली अथवा गीति को नहीं।

मुहम्मद करम इमाम ने चार बानियों की चर्चा करते हुए बानियों को जाति या प्रदेश से ही सम्बद्ध किया है। उसके अनुसार 'ब्रजचन्द' दिल्ली के निकट 'डाँगर' प्रदेश 'समोखन सिंह' 'खण्डहर' प्रदेश और और 'श्रीचन्द' 'नौहा' नामक प्रदेश के रहने वाले थे। एक अन्य स्थान पर वह तानसेन को 'गौरारी' (गोबरहारी नहीं), व्रजचन्द को 'नौहारी', श्रीचन्द को 'डाँगरी' और समोखन सिंह को 'खण्डारी' बानी का प्रवर्त्तक मानता है। करम इमाम के इन दोनों वक्तव्यों में विरोध है। चौबीसवें पृष्ठ पर वह 'श्रीचन्द' को नौहा प्रदेश का निवासी बताता है और दो सौ तैंतीसवें पृष्ठ पर उनका निवास स्थान दिल्ली का डाँगर-प्रदेश हो जाता है। इसी प्रकार, चौबीसवें पृष्ठ पर व्रजचन्द डाँगर निवासी हैं और २३३ वें पृष्ठ पर वे 'नौहार' तथा दिल्लीवासी हो जाते हैं। व्रजचन्द ब्राह्मण कहे गए हैं और श्रीचन्द राजपूत। मुहम्मद करम इन दोनों को मुसलमान बना मानकर इनका नाम क्रमशः 'चाँद खाँ' और 'सूरज खाँ' रख देता है। परन्तु 'रागदर्पण' से उद्‌धृत भाग में चाँद खाँ और सूरज खाँ सहोदर हैं। असंगतियों के कारण हम मुहम्मद करम इमाम को ऐतिहासिक दृष्टि से तो भ्रान्त मानते हैं, परन्तु उसकी इस धारणा से सर्वथा सहमत हैं कि, 'बानियों' का सम्बन्ध 'जाति' या 'प्रदेश' से था।

गौरारी बानी—'गौरारी' शब्द 'ग्वालियरी' का अपभ्रंश (ग्वालियरी > ग्वारेरि > गौरेरि > गौरारी) है और ग्वालियर में बोली जाने वाली भाषा का द्योतक है, फकीरूल्लाह ने इसी भाषा को श्रेष्ठ कहकर इसका क्षेत्र निश्चित किया है, जिस की चर्चा आ चुकी है। यही भाषा ध्रुवपदकारों की 'सुधबानी' (शुद्ध वाणी) है।

खण्डारी—खण्डार नामक स्थान पर एक दुर्ग भी था। इस पर बाबर के आक्रमण के समय राणा साँगा ने अधिकार किया था। इस स्थान के निवासियों की भाषा का 'खण्डारी बानी' होना सम्भव है।

डागरी—मुहम्मद करम इमाम ने दिल्ली के निकट स्थित 'डाँगर' नामक एक प्रदेश की चर्चा की है। सम्भव है, वह आधुनिक 'दाँग' नामक स्थान हो। यहाँ के निवासियों की भाषा 'डाँगरी' हो सकती है। सालिमचन्द 'डागुर' (या डागर) की चर्चा फकीरुल्लाह ने भी की है। डागर एक जाति भी है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नौहारी—मुहम्मद करम इमाम तो एक प्रदेश को 'नौहा' बताकर वहाँ के व्यक्ति को 'नौहार' कहता है। 'हसन खाँ नौहार' की चर्चा फकीरुल्लाह ने की है। इन लोगों की भाषा का नौहारी कहलाना सम्भव है।[१]

श्री रत्नजङ्कर तथा आचार्य बृहस्पति के प्रयत्नों के फलस्वरूप ध्रुवपद के विषय में उल्लिखित तथ्य ज्ञात होते हैं किन्तु चारों बानियों के प्रतिनिधि गायकों की अनुपलब्धि के कारण 'बानियों' की प्रत्यक्ष पहचान नहीं हो पाती। बिहार प्रदेश के ध्रुवपद गायक अपने को 'खण्डार बानी' का प्रतिनिधि बताते हैं। 'मल्लिक' आस्पद से विख्यात इन कलाकारों द्वारा अपनी परम्परा के विषय में बताये जाने वाले कुछ तथ्य इस भाँति हैं।

''ध्रुवपद का अर्थ होता है, अचलपद और उसकी मूल बानी शुद्ध होती है जिसके गायन में विविध लयकारी वर्जित होती है। यह केवल 'मींड', 'लूम' तथा 'लहक' के साथ गायी जाती है।'' बेतिया घराने के ध्रुवपदियों की यह मान्यता प्रमाणित करती है कि सेनिया परम्परा के ध्रुवपदियों की 'शुद्धबानी' जिसे गोबरहार या गौरहार बानी भी कहते हैं यदि वर्तमान में कहीं मूल रूप में सुरक्षित है तो वह बेतिया के गौरवशाली ध्रुवपद गायकों के वंशजों की गायकी में परिलक्षित होती है।

मुग़ल दरबार के पतन के पश्चात् सेनिया एवं घरानेदार सङ्गीतकार देशी रजवाड़ों में आश्रय पाने लगे। कुरुक्षेत्र के निकटवर्ती ग्राम अमलोक के दो सङ्गीतकार चमारी मलिक (गायक) तथा बंगाली मलिक (बीनकार) का दिल्ली दरबार में आना जाना होता था। पर दरबार में किन्हीं कारणों से इन दोनों को सम्मान नहीं मिला। मुग़ल दरबार की महफिलों में बेतिया नरेश गजसिंह (१६५९-९४) भी अक्सर शरीक होते थे। गजसिंह सङ्गीत, विशेषकर ध्रुवपद के प्रेमी थे। उन्होंने दोनों मल्लिकों को बेतिया लाकर अपना दरबारी सङ्गीतज्ञ नियुक्त किया। बेतिया घराने की शुरुआत यहीं से हुई।

बंगाल के ख्याति प्राप्त ध्रुवपदिया राधिका प्रसाद गोस्वामी ने ध्रुवपद की शिक्षा गुरुप्रसाद मिश्र से प्राप्त की। प्रसिद्ध सङ्गीत समीक्षक डॉ० धूर्जटि प्रसाद मुखर्जी के अनुसार अपने समय में गोस्वामीजी के पास ध्रुवपद की बन्दिशों का खज़ाना था। विष्णुपुर (बंगाल) घराना के ध्रुवपद गायक मुख्यत: बेतिया के ध्रुवपदियों के शिष्य रहे। डॉ० मुखर्जी के मतानुसार तत्कालीन ध्रुवपद गायकों पर बेतिया घराना का प्रचुर प्रभाव रहा। ये ध्रुवपदिये गौड़ (गोबरहार) तथा खण्डार दोनों बानियों के गायन में सिद्धहस्त थे। पर खण्डार बानी में इन्हें अधिक पटुता हासिल थी।

---

१. आचार्य बृहस्पति, *ध्रुवपद और उसका विकास*, पृ० २४८-४९, प्रथम संस्करण १९७६ ई०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बेतिया घराना की ध्रुवपद गायकी मुख्यतया संक्षिप्त आलाप, बन्दिश का गान, ताल में लय का एक बर्ताव, बोलबाँट वर्जित, ख्याल की भाँति विस्तार वर्जित तथा बन्दिश का रागानुकूल गायन जैसी गुणी विशेषताओं के लिए जानी जाती है।

बेतिया राज के महाराजा आनन्द किशोर तथा नवलकिशोर जैसे बन्दिशकारों की रचना से मण्डित दुर्लभ ध्रुवपद ग्रन्थ, आनन्दसागर की मूल जर्जर प्रति बेतिया दरबार की गायक परम्परा के अवशेष महन्त मलिक के पास सुरक्षित है। इस हस्तलिखित ग्रन्थ में पौने दो सौ से अधिक, विभिन्न रागों में ध्रुवपदों की रचनाएँ हैं। जिनमें लगभग पचास-साठ अप्रचलित रागों की बन्दिशें, यथा, सुरह, शंख, लच्छासाख तथा देवसाख आदि अछोप रागों में हैं।

कहते हैं आनन्दकिशोर की कुल रचनाएँ एक हज़ार चार सौ हैं और नवल किशोर की मात्र छः सौ रचनाएँ हैं। आनन्दकिशोर की प्रारम्भिक रचनाएँ चार ताल के त्रैमात्रिक छन्द में हैं। किन्तु चौताल चतुर्मात्रिक छन्द का ताल होने के कारण बाद में उनके संशोधित रूप मिलते हैं। चारो बानियों में प्रचलित प्रायः सभी तालों में निबद्ध ध्रुवपद की बन्दिशें यथा—चौताल, आड़ा चौताल, त्रिताल, शिखर ताल, ब्रह्म, रुद्र, गणेश, एवं विष्णु ताल, सुरफाक्ता, झपताल तथा तेवरा आदि केवल बेतिया घराने में उपलब्ध हैं।

आनन्दकिशोर की रचना, ध्रुवपद राग सुरह, झपताल (मध्यगति) पर आधारित, का एक उत्कृष्ट उदाहरण द्रष्टव्य है—

काली के पगन में लगन करो नर अधम,
संगी के आनवे न जानवे जगत में।
भवसागर को चाहत तरण तो,
प्राण कटोरे पगन में शरण गुरु के मत में।
तनय है सपन निज नैनन सो देखो अब
कपट तजि के अघ घटन पल में।
पाप त्रिताप संतापे सब छुटि गे,
लह श्री आनन्द जप नाम यह चित में।

इसी प्रकार नवलकिशोर की ध्रुवपद, राग केदार नट, चौताल पर आधारित एक उत्कृष्ट बनागी देखिये—

काली पद-पङ्कज परसत,
जनम-जनम को पाप ताप नाशत।
दुःख दारिद्रभञ्जन जो नाम करो बखान,
जा लगि मुनिगण नित ध्यावत।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हो अधम जीवगण काहे भूले काली नाम,
कौन काम दिन काटत।
नवलकिशोर कहे रात जो काली नाम जपत,
सो अमरपद पावत।

बेतिया घराना के ध्रुवपद गायकों तथा खण्डार के विषय में उल्लिखित पक्तियों के लेखक हैं श्री गजेन्द्र नारायण सिंह। श्री सिंह प्रो० नारायण विनायक पटवर्धन के शिष्य तथा बिहार सङ्गीत नाटक अकादमी के सचिव हैं। आपका इस विषय का विस्तृत लेख ''बेतिया घराने की ध्रुवपद परम्परा के अवशेष'' शीर्षक से १० जुलाई १९८८ ई० के धर्मयुग में प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत अंश उसी लेख का है।

ध्रुवपद-परम्परा अपनी रागशुद्धि के लिए विज्ञात थी किन्तु आज यह विधा हाशिये पर स्थित है। राग शिक्षण की तत्कालीन पद्धति के अनुसार शिक्षक राग गाता था और विद्यार्थी उसका अनुकरण करता था। राग जब अपनी समग्रता से विद्यार्थी को हृदयङ्गम हो जाता, उसके स्मृतिकोश में सुरक्षित हो चुकता, तथा उसका कण्ठ उसे प्रस्तुत करने में सक्षम हो जाता था तब महीनों या बरसों बाद गुरु उससे कहते यह ''हिण्डोल'' राग है। भातखण्डे महोदय के काल (१८६०-१९३६ ई०) तक ऐसे कितने ही गायक-वादक वर्त्तमान थे जिन्हें राग के तीव्र-कोमल स्वरों का सम्यक् ज्ञान नहीं था।[1] नोटेशन पद्धति के अभाव के कारण इस समय के गुनीजन राग का साहित्य अथवा 'पद' अपनी पुस्तकों में लिख कर उस का शीर्षक लिख देते थे 'राग भैरव'। किन्तु राग-रूप वे गुरु का अनुकरण कर के सीखते थे। सीखने की यह पद्धति 'सीना-ब-सीना' कही जाती थी। इस पद्धति में राग-रूप की सुरक्षा विद्यार्थी की स्मृति पर निर्भर थी। अनुमान किया जा सकता है, कि कुछ नये रागों का प्रादुर्भाव स्मृति-विकलता के कारण हुआ होगा। बेतिया-परम्परा के राग सुरह और शंख का स्वर-रूप अब शायद उस परम्परा का कोई प्रतिनिधि प्रस्तुत कर सके।

ऐसे रागों के विषय में श्रीकृष्णनारायण रत्नजङ्कर का कथन है—''प्राचीन समय में जाति नाम का गीत-प्रकार प्रचार में था। इन्हीं से रागों का विकास हुआ। 'सङ्गीत रत्नाकर' में जातियों के कुछ उदाहरण स्वर-लिपि सहित दिये हुए हैं। पर 'रत्नाकर' के समय में जाति प्रचार मिट चुका था और कई सदियों से रागों का गायन रूढ हो चुका था। शार्ङ्गदेव के काल में संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं में प्रबन्ध, वस्तु और रूपक नाम के गीत गाये जाते थे। प्रबन्धों पर शार्ङ्गदेव ने एक सम्पूर्ण अध्याय लिखा है जिस में प्रबन्धों के सैकड़ों प्रकार समझाये हैं। पर किसी प्रबन्ध का स्वर-लिपि सहित प्रत्यक्ष उदाहरण, जैसे जातियों के दिये हैं, नहीं दिया।''

१. *भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र*, भाग ४ पृ० ६७४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रागों में रचे हुए गीतों का सबसे प्राचीन संग्रह जो आज उपलब्ध है वह जयदेव कवि का 'गीत-गोविन्द' है। ये गीत प्रबन्धों के ही रूप हैं, ऐसी कुछ विद्वानों की मान्यता है। इन गीतों को 'अष्टपदी' कहते हैं। हर एक अष्टपदी पर 'वसन्त रागेण गीयते' अथवा 'मालव रागेण गीयते' इस प्रकार राग-नाम लिखे हुए हैं। अब वे राग-नाम स्वयम् जयदेव के ही हाथ के लिखे हुए हैं अथवा पश्चात् के किसी व्यक्ति द्वारा, इस पर संशोधन की आवश्यकता है। वे 'रागनाम' लगभग ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रचलित रागों के हैं। इसी काल की लिखी, दरभंगा के लोचन कवि की 'रागतरङ्गिणी' में ये रागनाम पाये जाते हैं। लगभग इसी समय मैथिली भाषा के महाकवि विद्यापति का उदय हुआ था। विद्यापति ने भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं पर आधारित अनगिनत भक्ति-गीत राग-रागिनियों में रचे। जयदेव कवि इन दोनों से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व हुए थे। क्या वे राग जिनके नाम गीत-गोविन्द में दिए हैं, जयदेव के समय में प्रचलित थे? यह एक मौलिक समस्या है।[१]

सूरसागर में महात्मा सूरदास रचित पद संगृहीत हैं। पदों का शीर्षक रागों द्वारा सूचित किया गया है। इनमें बहुत से नाम आज के प्रचलित रागनाम ही हैं। किन्तु कुछ ऐसे रागनाम भी देखे जाते हैं जो आज अप्रचलित हो चुके हैं और आज के उपलब्ध शास्त्रों में उनका नाम नहीं है जैसे—रागिनी श्रीहठी, सूहो विलावल, सारंगआसावरी, ललिता, बङ्गाली, गुण्ड, सूही, परागी एवं मल्लार-कामोद आदि।[२] स्वरलिपि न होने के कारण इन रागों का परिचय या प्रस्तुति सम्भव नहीं है।

गोस्वामी तुलसीदास की विनयपत्रिका[३] के पद शीर्षक स्वरूप, राग मारू का उल्लेख किया गया है। मारू राग का गान करने वाले गुनी गायक आज नहीं देखे जाते। पद संख्या १३५ का शीर्षक राग 'सूहो बिलावल' है। सूरदास तथा तुलसीदास दोनों सन्तों की रचना को एक ही राग सूहो बिलावल में निबद्ध देखकर एसा प्रतीत होता है कि राग सूहो विलावल उन दिनों प्रचार में था। किन्तु आज हमारे समक्ष इस राग को प्रत्यक्ष कर पाने में अनेक अवरोध हैं जैसे—हमें यह ज्ञात नहीं है कि राग सूहो विलावल एक स्वतन्त्र राग है अथवा यह संकर राग है। नाम-आधार से अगर इसे संकर राग ही मान लें तो हमारे वर्तमान विलावल राग के शुद्ध स्वरों का अधुना काफी थाट में वर्गीकृत कोमल गान्धार तथा निषाद युक्त सूहा राग से ताल-मेल बिठा सकना सम्भव नहीं होगा।

ध्रुवपद एवम् पदों की चर्चा के पश्चात् ख़याल शैली की चर्चा उपादेय होगी। इस विषय में प्रसिद्ध सङ्गीत शास्त्री ठा० जयदेव सिंह के शब्द हैं—

---

१. श्रीकृष्णनारायण रत्नजङ्कर, ध्रुवपद की गायकी, *आज*, दि० १७-१२-१९६१ ई०

२. *सूरसागर*, खेमराज श्रीकृष्णदास, सं० १९९१ वि०

३. गो० तुलसीदास, *विनय पत्रिका*, गीता प्रेस।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

''ख़याल गायकी विदेशी गायकी है अथवा भारतीय सङ्गीत की प्राचीन गायकी का ही विकसित रूप है? दो निम्नलिखित अलग विषयों के अन्तर्गत ही मैं इस प्रश्न पर विचार करूँगा।'' (क) साङ्गीतिक रचना और (ख) गायन शैली।

पहले हम साङ्गीतिक रचना पर ही विचार करेंगे। ख़याल की साङ्गीतिक रचना लालित्य से परिपूर्ण है। जैसे मींड, मुर्की, खटका और कण आदि। सामान्य और सीधी तानों का शायद ही प्रयोग होता है। ख़याल के प्रत्येक ताल बद्ध आलंकारिक वर्णन में किसी न किसी प्रकार की मूर्च्छना का प्रयोग होता ही है।

इस रचना पद्धति का उत्स विदेशी है? अथवा स्वदेशी? ऐसा अनुमान किया जाता है कि अमीर ख़ुस्रो ने ख़याल गायकी का प्रवर्तन किया। उनके पहले भारतीय सङ्गीत में ख़याल गायकी जैसी कोई चीज़ नहीं थी। अमीर ख़ुस्रो १३वीं शताब्दी में हुए थे। क्या १३वीं शताब्दी में किसी देशी साङ्गीतिक शैली का प्रचलन नहीं था जिसमें सभी प्रकार के मोहक तत्त्वों का प्रयोग होता रहा हो? शार्ङ्गदेव का 'सङ्गीतरत्नाकर' अमीर ख़ुस्रो के जन्म से प्राय: चौबीस वर्ष पूर्व (१२३० ई०) में लिखा गया था। प्रस्तुत प्रश्न के उत्तर के लिए हमें पहले 'सङ्गीत रत्नाकर' पर ध्यान देना चाहिए। शार्ङ्गदेव ने अपने ग्रन्थ में पाँच प्रकार की साङ्गीतिक रचनाओं की चर्चा की है। उनके नाम हैं—शुद्धा, भिन्ना, गौडी, वेसरा और साधारणी। उनका कथन है—''शुद्धा स्यादवक्रैर्ललितै: स्वरै:। भिन्ना वक्रै: स्वरै: सूक्ष्मैर्मधुरैर्गमकैर्युता।''

'शुद्धा' उस गायकी का नाम है जिसमें स्वरों का प्रयोग आनन्द कर किन्तु साधारण ढँग से किया जाता है। अर्थात् जिस गायकी में मूर्च्छना और गमक आदि मोहक तत्त्वों का प्रयोग नहीं होता। 'भिन्ना' उसे कहते हैं जिसमें स्वरों का प्रयोग 'सूक्ष्म' और 'मधुर गमक' के साथ होता है अर्थात् जिस में मृदु एवं लालित्य पूर्ण तत्त्वों का प्रयोग होता है। अन्यान्य प्रकार की साङ्गीतिक रचनाओं पर विचार करने से पूर्व हमें 'भिन्न' और 'गमक' इन दो अर्थबोधक शब्दों को अच्छी तरह समझ लेना होगा।

पहले हम 'भिन्न' शब्द पर विचार करें। ऊपर गायकी के जिन पाँच प्रकारों की चर्चा हुई है, वे सभी मतङ्ग के समय में प्रचलित थीं। मतङ्ग का काल नवीं शताब्दी माना गया है। मतङ्ग ने उपर्युक्त पाँच प्रकारों का उल्लेख किया है, साथ ही उन्होंने दो और प्रकार बताये हैं। उन्होंने 'भिन्न' शब्द पर भी प्रकाश डाला है। उन का कहना है—''ननु भिन्नशब्देन किमधीयते? भिन्नत्वं, विदारणं, व्यतिरिक्तत्वं वा? मैवं भिन्नोऽत्र विकृतमुच्यते।''

तब 'भिन्न' शब्द का क्या अर्थ? इस शब्द का सामान्य अर्थ 'विदारण' अर्थात् फाड़ना, विभक्त करना, जैसा कि कहा गया है—'संछिन्नभिन्नसर्वाङ्ग:।' इसका अर्थ 'व्यतिरिक्त' भी होता है, जैसे—'तस्मादयं भिन्न:' या 'भिन्नरुचिर्हि लोक:।' भिन्न शब्द का अर्थ 'विकृत' भी होता है, जैसे—भिन्नस्वरोऽयंजन:।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस सन्दर्भ में मतङ्ग 'भिन्न' के 'विदारण' या 'व्यतिरिक्त' अर्थ को स्वीकार नहीं करते। उन का स्पष्ट कथन है—'भिन्नोऽत्र विकृत उच्यते।'

सिंह भूपाल का अपने 'सुधाकर' भाष्य में कहना है कि 'भेदो विकारः अतस्तद्युक्ता गीतिर्भिन्ना।' और ये अपने समर्थन में मतङ्ग के उपर्युक्त उद्धरण को प्रस्तुत करते हैं। अतएव स्पष्ट है कि इसे 'भिन्न' ही कहा जाता था क्योंकि इस प्रकार के गायन में स्वरों में काफी उतार-चढ़ाव करना पड़ता है। 'भिन्नगीति' की परिभाषा में इसका संकेत मिलता है कि स्वर परिवर्तन की उपलब्धि कैसे की जाती है। यह 'वक्रस्वरों' से परिपूर्ण होती है—''वक्रैः स्वरैः सूक्ष्मैर्मधुरैर्गमकैर्युता।''

'गौडी' और 'वेसरा' के वर्णन के पश्चात् शार्ङ्गदेव 'साधारणी गीति' का इस प्रकार वर्णन प्रस्तुत करते हैं—''चतुर्गीतिगतं लक्ष्मश्रिता साधारणी मता।'' (भ० ना० शा० अड्यार संस्करण, भाग २, पृ० ६)। साधारणी गीति प्राचीन दार्शनिक शैली की संरचना है जिसमें अन्य चारों शैलियों की सभी विशिष्टताएँ सन्निहित हैं। सिंहभूपाल का कथन है—''शुद्धादीनां चतसृणां गीतीनां किञ्चिल्लक्षणसमुच्चयेन साधारणी'' (अड्यार संस्करण, पृ० ७)। 'साधारणी गीति' में अन्यान्य शैलियों की उत्कृष्टताएँ समन्वित की गईं हैं, इसके लिए सिंह भूपाल ने मतङ्ग का उद्धरण प्रस्तुत किया है—लक्षण समुच्चयश्चोक्तो मतङ्गेन—ऋजुभिर्ललितैः किञ्चित्सूक्ष्मात्सूक्ष्मैश्च सुश्रवैः। ईषद् द्रुतैश्च कर्त्तव्या मृदुभिर्ललितै स्तथा। प्रयोगे मसृणैः सूक्ष्मैः काकुभिश्च सुयोजितैः। एवं साधारणी ज्ञेया सर्वगीतिसमाश्रया॥ सुधाकर भाग २, पृ० ७।

अर्थात् 'साधारणी गीति' ने अपने में अन्य सभी गायन शैलियों के मार्दव, कोमल, एवं आनन्दवर्धक अभिव्यक्तियों को आत्मसात् कर लिया था। मेरा (ठा० जयदेव सिंह) मत यह है कि साङ्गीतिक संरचना की तथा कथित ख़याल गायकी और कुछ नहीं बल्कि 'साधारणी गीति' का विकास मात्र है जिसमें सभी गायन शैलियों के अनुपम विन्यास का प्रयोग होता है। जब 'साधारणी गीति' में 'भिन्न' का प्राधान्य रहने लगा तब वही 'साधारणी गीति' बाद में 'ख़याल' बन गयी। मतङ्ग 'साधारणी' में स्वरों के प्रयोग के लिए निम्नलिखित विशेषणों का उल्लेख करते हैं—ललित, सूक्ष्म आदि। 'भिन्न गीति' के बारे में ऐसा कहा जाता है कि इस में 'सूक्ष्मैर्मधुरैर्गमकैर्युता' अर्थात् मधुर और कोमल गमकों का आधिक्य होता है। मतङ्ग ने इन सभी गायन शैलियों की चर्चा की है और दो जोड़े भी हैं। ये पुनः कहते हैं कि 'दुर्गामत' के अनुसार केवल पाँच ही हैं—''गीतयः पञ्च विज्ञेया, **शुद्धा, भिन्ना च वेसरा। गौडी, साधारणी** चैव, इति दुर्गामते मतम्॥'' सिंहभूपाल ने अपनी सुधाकर टीका में इस श्लोक का उद्धरण प्रस्तुत किया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रोफेसर रामकृष्ण कवि के अनुसार मतङ्ग का काल लगभग सन ८५० ई० रहा है। कोई लेखक अपने पूर्ववर्ती लेखक के मत का उदाहरण तभी देता है जब उसकी प्रतिष्ठा और यश यथेष्ट रूप में प्रसारित हो चुका रहता है। इस प्रकार की प्रतिष्ठा की उपलब्धि के लिए यह मानना पड़ता है कि 'दुर्गामत' मतङ्ग से ५० से १०० वर्ष पूर्व अवश्य ही प्रचलित रहा होगा। इसलिए यह निश्चित रूप से प्रमाणित होता है कि साङ्गीतिक संरचना की इस प्रकार की शैलियाँ भारतीय सङ्गीत में कम से कम ७वीं या ८वीं शताब्दी में प्रचलित रही हैं। गायन की 'साधारणी' शैली, जिसमें उदारता के साथ गमकों का अधिकतर प्रयोग होने लगा था, हमारी ख़याल गायकी के नाम से प्रचलित हुई। ध्रुवपद की एक वाणी में भी गमक का यथेष्ट रूप में प्रयोग हुआ है, किन्तु 'गमक' शब्द का अर्थ बोध सङ्कुचित कर दिया गया और ध्रुवपद एक अलग मार्ग से विकसित हुआ।

१०वीं शताब्दी से भारत पर विदेशी आक्रमण शुरु हो गए थे। भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित करने में विदेशी सफल होते गए। हमारी सारी विधाएँ और संस्कृति, संस्कृत में प्रतिष्ठित थीं। सङ्गीत सम्बन्धी हमारे ग्रन्थ भी संस्कृत में लिखे गए। सङ्गीत के पारिभाषिक शब्दों के उद्‌गम भी संस्कृत ही में थे। विदेशियों ने संस्कृत को संरक्षण प्रदान करना बन्द कर दिया। अतः लोगों ने संस्कृत के अध्ययन का त्याग करना शुरू किया। अन्त में यह स्थिति आ गई कि शास्त्रों में जो सङ्गीत सुरक्षित था उसकी विरासत से सङ्गीतज्ञ बिल्कुल वंचित होने लग गए। यह उल्लेखनीय बात है, कि शार्ङ्गदेव के 'सङ्गीत रत्नाकर' के बाद सङ्गीत पर स्तर का एक भी ग्रन्थ नहीं लिखा गया। बाद में तीन या चार ग्रन्थ निकले, वे न्यूनाधिक 'सङ्गीत रत्नाकर' के ही परिष्कृत रूप थे। चूँकि तब तक सङ्गीतज्ञ सङ्गीत के सिद्धान्त पक्ष को काफी हद तक भूल चुके थे इसलिए वे गायन की व्यावहारिक परम्परा और उसकी पद्धति को ही क़ायम रख सके। संस्कृत विद्या के लोप के कारण संस्कृत के प्राचीन सन्दर्भ-पदों के लिए विभिन्न बोलियों में नये-नये सन्दर्भ पद गढ़े जाने लगे। उत्तर भारत में ख़ासकर 'गमक' शब्द को इसी दुर्गति का सामना करना पड़ा। सभी प्रकार के मोहक गुणों के लिए 'गमक' का सर्ववर्गात्मक प्रयोग होने लगा। शार्ङ्गदेव ने १५ गमकों का वर्णन किया है। कुछ विद्वानों ने १८ गमकों का उल्लेख किया है। कुछ ने ठीक ही लिखा है कि गमकों की संख्या अनन्त है। विदेशी आक्रमण के पश्चात् फैले अन्धकार के कारण सङ्गीतज्ञ प्रायः सभी संस्कृत परिभाषाओं को भूल गए। वे गमकों के संस्कृत नाम भूल गये। उन्हें संस्कृत का एकमात्र 'आलाप' शब्द ज्ञात रह गया।

इसलिए मेरा (ठा० जयदेव सिंह) मत है कि ख़याल सङ्गीत सर्वथा भारतीय सङ्गीत है। हिन्दुस्तानी सङ्गीत का कलाकार अपनी बन्दिश 'साधारणी' शैली के आधार पर ही प्रस्तुत करता है। इसमें वह 'भिन्न' पर विशेष बल देता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है। अपने गायन के बर्ताव मे वह 'रूपकालप्ति' की प्रत्यक्ष देन को प्रस्तुत करता है। अतः ख़याल गायकी पूर्णतः देशी गायन-पद्धति है। यह मत व्यक्त करना कि यह मुसलिम सङ्गीत की एक शैली है जो भारतीय सङ्गीत पर लादी गयी है, सङ्गीत शास्त्रियों का मतिभ्रम है जो उनके दिमाग़ में पलता रहा है। मैं (ठा० जयदेव सिंह) यह सुझाना नहीं चाहता कि यह रूपकालप्ति की बिल्कुल अनुकृति है किन्तु यह सुनिश्चित है कि ख़याल गायकी की प्रेरणाभूमि रूपकालप्ति है और यह उसकी उपज है। भारतीय सङ्गीतोद्यान का यह सर्वोत्तम पुष्प है। यह विजातीय पौधा नहीं है। भले ही कोई अरब या फ़ारस का राग अलापे और घण्टों सुने किन्तु ऐसी चीज़ें उन देशों में कभी नहीं सुनी जातीं। इसमें यत्र-तत्र ऐसा सङ्गीतमय अलङ्करण अवश्य मिलता है, जो सङ्गीत की सभी पद्धतियों में सामान्य रूप से मिलता है, किन्तु अन्ततोगत्वा ख़याल गायकी अनुपम है और यह भारतीय सङ्गीत की अमूल्य विरासत है।

यहाँ यह कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि रूपकालप्ति से ही हिन्दुस्तानी सङ्गीत में ख़याल का प्रवर्तन हुआ और कर्नाटक-सङ्गीत में 'पल्लवी' का। कर्नाटक-सङ्गीत में 'पल्लवी' शब्द का प्रयोग 'कृति' अथवा 'चीज़' की प्रथम पंक्ति के अर्थ में होता है और साथ ही कर्नाटकी सङ्गीत की शैली विशेष के अर्थ में भी। मैं पल्लवी की चर्चा यहाँ दूसरे अर्थ में कर रहा हूँ। इस अर्थ में यह 'मनोधर्म सङ्गीत' है अर्थात् सर्जनात्मक कल्पना का सङ्गीत। 'पल्लवी' शब्द तीन शब्दों के आरम्भिक अक्षरों के योग से बना है—'प' पद का सूचक है, 'ल्ल' लय का और 'वी' विन्यास का। पल्लवी संस्कृत का शब्द है। इसकी साहित्यिक विवृत्ति नीचे दी जा रही है।

संस्कृत में 'पल्लव' शब्द का अर्थ है—अभिवर्द्धन, फैलाव। संस्कृत में 'पल्लव दोष' जैसी अभिव्यक्ति मिलती है जिसका अर्थ है, ''विकास कार्य में की गई या हो गयी त्रुटि''। पुनः हमें 'अलम्पल्लवितेन' पद मिलता है अर्थात् काफी विस्तार के साथ। 'पल्लव' का अर्थ वृक्ष का किसलय, कोंपल, मंजरी, सुवा या डाभ है क्योंकि यह वृक्ष का अभिवर्द्धन है। 'पल्लव' में 'इन' प्रत्यय के संयोग से 'पल्लवी' बनता है अर्थात् पल्लवयुक्त या विस्तृत। अतः पल्लवी शैली वह है जो साङ्गीतिक कल्पना का विस्तार करती है।

'सङ्गीत रत्नाकर' के प्रबन्धाध्याय में (पृ० १९९, अड्यार संस्करण) हमें 'पल्लव' शब्द मिलता है—'ततः प्रयोगस्तदनु पल्लवाख्यं पदत्रयम्।'

'सङ्गीत रत्नाकर' में 'प्रयोग' शब्द पारिभाषिक अर्थ के सन्दर्भ में आया है। 'प्रयोग' की परिभाषा की गई है—''अक्षरवर्जितागमकालप्तिः।'' इसका अर्थ है—'शब्दों के बिना गमकालाप।' शार्ङ्गदेव का कथन है कि 'प्रयोग' या

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'गमकालाप' के बाद तीन पद गाये जाते हैं जिसको 'पल्लव' कहा जाता है। उनके नाम हैं—'कान्त' 'जीत' और 'मित्र'। उनका यह भी कहना है कि इन तीनों में दो विलम्बित लय में और तीसरा द्रुतलय में गाया जाता है। यह बिलकुल स्पष्ट है कि 'पल्लव' संस्कृत का पारिभाषिक शब्द है। देश के सङ्गीत-साहित्य में इस शब्द का उल्लेख मिलता है।

जो मैं (ठा० जयदेव सिंह) कहना चाहता हूँ वह यह कि कर्नाटक-सङ्गीत में पल्लवी का गायन और हिन्दुस्तानी सङ्गीत में ख़याल गायन दोनों का विकास समानान्तर रूप से रूपकालप्ति से हुआ है। पल्लवी गायन विलम्बित और मध्य दोनों लयों में होता है। ख़याल में भी विलम्बित और मध्य दोनों लय होती हैं। पल्लवी और ख़याल दोनों का विकास अलग-अलग हुआ किन्तु दोनों का एक ही उत्स है।

अब हम 'ख़याल' शब्द और इसके इतिहास पर विचार करेंगे। मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह' ने उर्दू कोश का सङ्कलन किया है जिस में उन्होंने उन अरबी, फ़ार्सी और तुर्की शब्दों का संग्रह किया है जिन का उर्दू में प्रचलन रहा है। उनका कहना है कि 'ख़याल' अरबी शब्द है। इसके अनेक अर्थों में हम तीन अर्थों को लेते हैं—(क) सामान्य या रचनात्मक कल्पना (ख) अनुभूति और (ग) कल्पनाश्रयी वर्ण, छन्द। कौव्वाल कौव्वाली गाते हैं अर्थात् उन के गायन में केवल 'क़ौल', कथन या वादा का प्रयोग होता है। 'क़ौल' शब्द का वही अर्थ है जो संस्कृत में 'वाचक' शब्द का होता है। 'क़ौल' और 'वाचक' दोनों शब्दों का व्यापक प्रचार है तथापि ये शब्द सङ्गीत में एक सीमित अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जैसे हिन्दू-संस्कृति में 'वाचक' 'वाणी' या 'शब्द' के गायन का अर्थ होता है—रहस्यवादी-गीत या भक्ति-गीत का गायक। ठीक इसी तरह इस्लाम में क़ौव्वाली या क़ौल गायन का अर्थ है, रहस्यवादी गीत का गायन जैसा कि इस्लाम का विश्वास है।

क़ौव्वाल जब 'क़ौल' गाते हैं तब उसे क़ौव्वाली कहा जाता है। जब वह कोई दूसरा कल्पना प्रवण गीत गाते हैं तब वे उसे 'ख़याल' कहते हैं। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, ख़याल शब्द का अर्थ कल्पना और कल्पनापरक संरचना दोनों होता है। आज भी नौटङ्की में तथा कभी-कभी उत्तर भारत के गाँवों में लोग वाद्य-यन्त्र द्वारा ख़याल गाते हैं। उस वाद्य यन्त्र को 'चङ्ग' कहते हैं। ख़याल शब्द का अर्थ वे केवल कल्पनापरक संरचना लेते हैं। अमीर ख़ुस्रो ने १३वीं शताब्दी में जब रूपकालप्ति की ऐसी अलंकृत शैली का गायन सुना जो अलङ्कारों से परिपूर्ण था तब उसने सर्जनात्मक कल्पनाश्रित उस सङ्गीत को 'ख़याल' कहा क्योंकि इस के लिए 'ख़याल' से उपयुक्त कोई दूसरा शब्द नहीं था। इस अलंकृत शैली का गायन उस समय अधिकांशतः दरबारी सङ्गीतज्ञों और नर्तकियों में लोकप्रिय था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो सौ वर्षों के मुस्लिम शासन के बाद सङ्गीतज्ञ संस्कृत शब्दों को प्राय: भूल गये थे फिर भी उन्होंने व्यावहारिक कला की अच्छी जानकारी क़ायम रखी। क्रमश: 'ख़याल' शब्द लोकप्रिय होता गया और वह प्रकृत रूप में चल निकला। स्पष्ट है, अमीर ख़ुस्रो ने इस शैली का प्रवर्तन नहीं किया बल्कि उसने केवल इसका अरबी नामकरण किया। क़ौव्वाली गायन कला के कुछ तत्त्व, सम्भव है, इस देशी शैली में शामिल हो गए हों, किन्तु वे तत्त्व ऐसे घुल-मिल गये कि उनको अलग करना असम्भव हो गया। यथार्थत: क़ौव्वाली पर भारतीय सङ्गीत का ही प्रभाव पड़ा।

चूँकि यह शैली अलंकृत और रूमानी थी इसलिए मन्दिरों में इसको स्थान नहीं प्राप्त हुआ। इसको अधिकांशत: कत्थकों, नर्तकियों और राजाओं ने संरक्षण प्रदान किया। चौदहवीं शताब्दी में जौनपुर के शर्की नवाबों ने काफी हद तक इस शैली को प्रोत्साहन दिया। ऐतिहासिक ज्ञान के अभाव में केवल नामकरण के कारण अमीर ख़ुस्रो को और कभी मात्र संरक्षण के कारण जौनपुर के नवाबों को ख़याल शैली का प्रवर्त्तक बताया जाने लगा।[१]

---

१. ठा० जयदेव सिंह का प्रस्तुत निबन्ध, *'ख़याल का विकास'*, दिनाङ्क २६ जनवरी सन १९६१ ई० के दैनिक 'आज' में निम्नलिखित सम्पादकीय टिप्पणी के साथ छपा था— "कुछ वर्षों से आकाशवाणी द्वारा वर्ष में एक बार सङ्गीत-सम्मेलन का आयोजन होता है जिसमें विचार गोष्ठी भी होती है। इस वर्ष ७ से १० नवम्बर तक दिल्ली में सङ्गीत-विचार-गोष्ठी हुई। जिसमें १४ सङ्गीत शास्त्रियों ने भाग लिया। गोष्ठी में ८ निबन्ध ख़याल गायकी के विविध पक्षों पर तथा ६ निबन्ध कर्नाटक-सङ्गीत पर पढ़े गए। ख़याल गायकी के सम्बन्ध में श्री सिंह के निबन्ध की अत्यधिक चर्चा रही है। क्योंकि इन्होंने ख़याल के प्रवर्त्तन के सम्बन्ध में एक नयी स्थापना प्रस्तुत की है। इनका पक्ष है कि, ख़याल का प्रवर्त्तन न अमीर ख़ुस्रो ने किया न ही जौनपुर के शर्की शाहों ने, न यह अरब से आया, नं फ़ारस से बल्कि यह रूपकालप्ति का सहज विकास है जिसमें शास्त्रीय बन्धन भी है और रूमानीपन भी। लेखक का पक्ष महत्त्वपूर्ण है।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५

राग के विविध पक्ष

ध्रुवपद और ख़्याल शैली की चर्चा के पश्चात् हमारे लिए राग के कुछ अन्य पक्षों की चर्चा उपादेय होगी। कतिपय देशी-विदेशी विद्वानों के राग विषयक विचार इस भाँति हैं। श्री चन्द्रभाल मधुव्रत के शब्दों में—"राग भारतीय सङ्गीत में 'मेलॉडी' के पर्याय के रूप में गृहीत होता है और पाश्चात्य सङ्गीत के 'स्केल' से इस का रूप निर्धारण सम्भव नहीं हो पाता। पाप्ली महोदय के अनुसार भारतीय सङ्गीत की राग-रचना एक कलाप्रिय राष्ट्र का ऐसा प्रयास है, जिस में लोगों के होंठों पर निरन्तर गाये जाने वाले गीतों को व्यवस्थित और सुसंबद्ध किया जाता है।[१] राग सङ्गीत का क्रमिक विकास हुआ है। यही कारण है कि भरत द्वारा कही गई संज्ञाओं में राग का उल्लेख नहीं है। 'नारदीय शिक्षा' में भी राग का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। दक्षिण के पेदाकोट राज्यान्तर्गत कुडमलाई की चट्टानों पर खुदे हुए स्वरागम, जिन का समय सातवीं शती ई० के आस-पास आँका गया है, भी राग शब्द के प्रयोग से वञ्चित हैं। कुछ विद्वानों ने 'नारदीय शिक्षा' में राग के अस्तित्व का अनुमान किया है और कुछ ने इन शिलालेखों में सात मूल रागों के स्वर-प्रस्तार के दर्शन किए हैं। किन्तु राग में जिन लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर सन्निवेश अपेक्षित हैं, उनका पूर्णतया अभाव होने के कारण इन सूत्रों को राग का वाचक मान लेना अनुचित होगा। अधुना-उपलब्ध ग्रन्थों में सर्व प्रथम मतङ्ग के 'बृहद्देशी' में हमें राग का सुस्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। मतङ्ग के अनुसार विशिष्ट स्वर-वर्णों से विभूषित उस ध्वनि-विशेष को राग कहते हैं, जो सर्वसाधारण के चित्त को रञ्जित करता है। मतङ्ग ने रागों का वर्गीकरण मुख्य रूप से ग्रामराग अथवा भाषाराग और देशीराग के अन्तर्गत किया है। उन्होंने अपने रागों का सप्तगीतियों (शुद्धा, भिन्ना, गौडी, राग, साधारणी, भाषा एवं विभाषा) में विभाजन किया है। इन में प्रथम पाँच ग्रामराग के अन्तर्गत आते हैं और शेष दो भाषाराग के अन्तर्गत।

आचार्य शार्ङ्गदेव ने भी मतङ्ग की ही तरह पाँच गीतियों के अन्तर्गत ग्राम-रागों का विभाजन किया है। इन्होंने देशी रागों का विभाजन चार विभागों—

---

१. एच० ए० पॉप्ली, *म्यूज़िक ऑफ इण्डिया*, पृ० ४०, वाई० एम० सी० ए० पब्लिशिंग हाउस कलकत्ता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रागाङ्ग, भाषाङ्ग, क्रियाङ्ग और उपाङ्ग में किया है। शार्ङ्गदेव के बाद महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) प्रणीत 'सङ्गीतराज' नामक पन्द्रहवीं शताब्दी का एक ऐसा ग्रन्थ मिलता है जिसमें रागों का वर्गीकरण ग्राम और देशी के अन्तर्गत क़िया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी आचार्यों ने 'राग-रागिनी' और 'मेल' पद्धति नाम से दो वर्गीकरण-पद्धतियाँ स्वीकार कीं।

राग-रागिनी पद्धति की चर्चा की जा चुकी है अतः अब हम मेल-पद्धति की चर्चा करेंगे। मध्ययुग से प्रचलित यह पद्धति दक्षिण भारत से प्रारम्भ हुई है। मेल-पद्धति के आद्य प्रवर्तक चौदहवीं शती ई० के आचार्य विद्यारण्य माने जाते हैं। किन्तु उनके ग्रन्थ के अनुपलब्ध होने के कारण रामामात्य कृत 'स्वरमेलकलानिधि' को ही मेल पद्धति के आधार ग्रन्थ के रूप में मान्यता दी जा चुकी है। रामामात्य के बाद सोमनाथ ने २३ और व्यङ्कटमखी ने ७२ मेल कहे हैं। दक्षिणी मेलपद्धति के आधार पर वर्तमान काल में पं० विष्णुनारायण भातखण्डे ने १० थाटों के अन्तर्गत उत्तरी शास्त्रीय सङ्गीत का वर्गीकरण किया है। यही वर्तमान की सर्वस्वीकृत और प्रचलित पद्धति है।

राग-वर्गीकरण का उल्लिखित संक्षिप्त अवलोकन हमें राग के बारे में विस्तार से जानने को प्रेरित करता है। राग की परिभाषा करते हुए फ़ाक्स स्ट्रैंग्वेज ने लिखा है—'राग' स्वरों का एक यदृच्छ बल्कि अधिकतम सम्भावित वैयक्तिकता की तरह का क्रम है जो मेलॉडी (स्वरानुक्रम, मूर्च्छना) बनाने वाले स्वरों के सामीप्य या विविक्तता से, उस ढंग से जिस से साधारणतया उनका उच्चारण किया जाता है, उसकी आवृत्ति विशेष से या उसके विपरीत जिस गति से वह आवर्तित होता है, उसकी उपस्थिति या अनुपस्थिति से और किसी अश्रव्य ध्वनि से सम्पुष्ट आधार-स्वर के सम्बन्ध से जाना जाता है।[१]" राग शब्द की व्याख्या करते हुए पाप्ली ने लिखा है—"राग स्वराष्टक में आने वाले स्वरों का वह विशेष क्रम है जो सभी भारतीय गीतियों का आधार-स्वरूप होता है तथा जो कुछ स्थिर स्वरों की प्रमुखता या विशेष स्वरों की क्रमिकता के द्वारा एक-दूसरे से अलग गाया जाता है।[२]" श्री एच० पी० कृष्णराव के अनुसार—"राग स्वराष्टक के स्वरों का एक ऐसा गीत्यात्मक विधान है जो एक निश्चित मूड (मन:स्थिति) को व्यक्त करने के लिए बनाया जाता है।[३]" इन परिभाषाओं से अधिक सन्तुलित और हमारे लिए

---

१. ए० एच० फॉक्स स्ट्रैंग्वेज, द *म्यूज़िक ऑफ़ हिन्दोस्तान,* क्लैरन्डन प्रेस, ऑक्सफोर्ड १९१४

२. एच० ए० पाप्ली, *म्यूज़िक ऑफ़ इण्डिया,* वाई० एम० सी० ए० पब्लिशिंग हाउस कलकत्ता, पृ० ४१

३. एच० पी० कृष्णराव, *साइकोलॉजी ऑफ इण्डियन म्यूज़िक,* बङ्गलोर, १९२३, पृ० ८१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अधिक उपयोगी परिभाषा स्वामी प्रज्ञानानन्द की है जिसके अनुसार "राग एक मनोभौतिकीय वस्तु है क्योंकि वह मन के आत्मगत अनुभवों का वस्तुपरक प्रकाशन है। यह सर्वप्रथम मन में सर्वाङ्गपूर्ण निर्मित होता है और तब बाहर भौतिक स्वर-रूप में प्रक्षेपित किया जाता है। इसी कारण किसी राग-रचना की प्रक्रिया में मन और भौतिक तत्त्व साथ-साथ कार्य करते हैं।[१]"

ऊपर दी हुई परिभाषाओं से हमें राग के बारे में एक स्थूल जानकारी तो अवश्य मिल जाती है किन्तु राग के अनिवार्य लक्षणों से हम परिचित नहीं हो पाते। साथ ही कुछ पारिभाषिक शब्द, जैसे वर्ण, अंश, ग्रह, तथा न्यास आदि इतने प्रमुख हैं कि उनकी ठीक-ठीक जानकारी पाये बिना राग के प्रत्यक्षीकरण के बारे में नहीं जाना जा सकता। वर्ण—यह गायन की क्रिया से सम्बन्धित है और चार प्रकार का होता है—स्थायी, आरोही, अवरोही और सञ्चारी। ग्रह—प्रारम्भिक स्वर होता है तथा अंश, प्रधान स्वर या वादी और न्यास अन्तिम स्वर होता है जिस पर राग की परिसमाप्ति की जाती है। ग्रह स्वर का आज कोई महत्त्व नहीं रह गया है और यह बहुत सम्भव है कि रत्नाकर रचयिता शार्ङ्गदेव के समय में यह कुछ विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता रहा हो। वर्तमान काल में षड्ज स्वर ग्रह और न्यास दोनों का दायित्व निभा रहा है।

राग एक अनुभूति व्यञ्जक स्वर-सन्दर्भ होता है। इस का प्रत्यक्षीकरण मानव को ब्रह्मानन्द की अनुभूति कराने में समर्थ है। यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि राग का प्रत्यक्षीकरण कैसे होता है? ध्वनि तरङ्गों का तारतम्य एक भौतिक यथार्थ है जब कि स्वर एक प्रत्यय है, अनेक अर्थों में मानसिक। इसी प्रकार किसी भी मेलॉडी (स्वरानुक्रम, मूर्च्छना) में स्वरों का क्रमबद्ध आवर्तन भी एक भौतिक यथार्थ होता है जो कि राग प्रत्यय से सम्बन्धित होता है। वह गुण जो किसी स्वर-विशेष के प्रत्यय की पहचान कराने में समर्थ होता है उस स्वर से सम्बद्ध रस की अनुभूति की मात्रा के तारतम्य पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए हम गान्धार को लें। गान्धार स्वर तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है। पहला यह कि 'ग' किसी विशेष स्वरान्तराल या ध्वनि की तारता के अन्तर का द्योतक है; दूसरा कि वह कुछ श्रुतियों के समूह से विवक्षित होता है जो 'सा' से अलग होता है और तीसरा कि वह श्रोता द्वारा मान्य और गृहीत रस-विशेष से सम्बद्ध होता है, जिसकी अनुभूति उसे होनी चाहिए।

प्रत्यक्षीकरण संवेदना का एक विकसित रूप है, जिसमें हम संवेदना के साथ अर्थ का भी संयोग कर देते हैं। किसी आवाज़ को सुन लेना एक चीज़ है

---

१. स्वामी प्रज्ञानानन्द, *हिस्टॉरिकल डेवलपमेन्ट ऑफ इण्डियन म्यूज़िक,* के० एल० मुखोपाध्याय, १९६०, पृ० २०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और उस आवाज़ को सुन-पहचान कर यह बता देना कि सुनी जाने वाली आवाज़ 'पञ्चम' है अलग चीज़ है। पहली को मनोविज्ञान की भाषा में संवेदना कहते हैं, जबकि दूसरी प्रत्यक्षीकरण होती है।

किसी संवेदना-विशेष के बारम्बार घटित होने पर उसे स्वर कहते हैं। लेकिन ये संवेदनाएँ व्यक्ति को राग-प्रत्यक्षीकरण में सहायता कैसे पहुँचाती हैं? प्रत्यक्षीकरण के पूर्व संवेदनाओं का एक ऐसा सङ्गठन और व्यवस्थापन होता है कि, जिससे हमारे नेत्रों के सम्मुख राग का एक चेहरा उभरने लगता है। सङ्गठन और व्यवस्थापन के कुछ नियम हैं। उन नियमों में पहला है 'सामीप्य'। प्रत्यक्षीकरण के लिए यह आवश्यक है कि हमारे पास पहुँचने वाले 'उद्दीपक' काल और स्थान के अनुसार एक-दूसरे के नज़दीकी हों। अर्थात् दो उत्तेजकों के बीच की दूरी इतनी कम होनी चाहिए कि क्रम भङ्ग न हो, व्याघात न पड़े। उदाहरण के लिए, दो विन्दु पास-पास रहें तो उन में एक क्रम का अनुभव होता है, सातत्य बोध होता है। अगर वे एक-दूसरे से कुछ दूरी पर अवस्थित हों तो क्रम भङ्ग होता है। ठीक इसी प्रकार वे स्वर, जो एक-दूसरे के नज़दीक होते हैं, गायन या वादन के लिए तथा प्रत्यक्षीकरण के लिए भी सहायक सिद्ध होते हैं। उदाहरणार्थ अगर किसी गायक को "सा रे प ध सां सां" इन स्वरों का समूह बनाने के लिए कहा जाए तो वह सम्भवतः "सारे, पध, सांसां" के समूह ही बनायेगा न कि "साध, रेसां, और पसां" के। ऐसा केवल इस सिद्धान्त के कारण होता है कि सा-रे, प-ध एक दूसरे के अधिक समीप हैं, बनिस्बत रे-प और ध-सां के। सामीप्य के कारण इन स्वर-संयोगों में सुविधा होती है और श्रुति-माधुर्य भी बना रहता है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण नियम है समानता का। समानता का तात्पर्य यह है कि समान उद्दीपक एक-दूसरे में जोड़ दिए जाते हैं और इस प्रकार की एक ऋजु-सूत्रता बना दी जाती है जो दोनों को जोड़कर एक रूप कर देती है। इस प्रकार अगर कई समान विन्दु (डॉट्स) एक के बाद-एक बनाए गए हों तो वे श्रोता के मस्तिष्क में जोड़ दिए जाते हैं और इस तरह से एक रेखा बना दी जाती है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति उनका ग्रहण एक रेखा के रूप में ही करता है। इसी नियम के अनुसार एक समान सप्तक के स्वर इस प्रकार जोड़े जाते हैं कि वे 'अलङ्कार' बनाते हैं। सा, रे, सा, सा, प, ध, नि, ध, प, ध, प, म, प, ध, प, प को भी दो-दो तीन-तीन स्वर जोड़कर एक-एक अलङ्कार समूह बना दिया जाता है। डॉ० बी० चैतन्यदेव के अनुसार सम्भवतः यह सिद्धान्त ही भारतीय सङ्गीत में

१. डॉ० बी० चैतन्यदेव, *मेलॉडिक परसेप्शन,* जर्नल ऑफ म्यूज़िक एकेडमी, मद्रास, १९६४, ३५, पृ० ११२-११५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अलङ्कार-निर्माण का मूल आधार है।[१] शायद इसी आधार पर वादी और सम्वादी स्वरों का निर्धारण हुआ है, जो सप्तक के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में स्थित रहते हैं तथा जिनका प्रयोग आरोह-अवरोह में अनिवार्य रूप से किया जाता है।

तीसरा नियम है सातत्य का। जब कुछ बिन्दु एक ऋजु या कुटिल रेखा में होते हैं तो ऋजु की अपेक्षा वक्र रेखा का स्पष्टीकरण या प्रत्यक्षीकरण देर में होता है। सातत्य के इसी नियम के कारण सरल तान और बोल-तान वक्र तानों की अपेक्षा जल्दी से प्रत्यक्षीकृत कर ली जाती हैं।

चौथा नियम है पूर्ति। कोई डिज़ाइन, जो पूर्णतया देखी या सुनी न जा रही हो, तो भी हम लोगों को उसकी अनुभूति पूर्ण ही होती है। इस कारण यह होती है कि हमारा मस्तिष्क बीच की जगह को खुद ही भर देता है और हमें खाली जगह (गैप) की अनुभूति नहीं हो पाती। यही बात सङ्गीत में भी लागू होती है। एक ही तरह के उद्दीपकों को बार-बार सुनते रहने के बाद हम उनके सम्बन्ध जान जाते हैं और हमें उनके 'पैटर्न' का ठीक पता लग जाता है। किसी प्रकार के 'पैटर्न' के बारे में ठीक-ठीक जान लेने के बाद और बार-बार कुछ विशेष स्वरों के प्रयोग से हमें राग का स्वरूप मालूम हो जाता है और हम कह उठते हैं—"अरे! यह तो श्री राग है।" किन्तु इस प्रकार के राग-रूप के निर्धारण के लिए एक आधार-स्वर का निर्णय जरूरी होता है। जैसे विन्दुओं से निर्मित रेखा के लिए एक आधार आवश्यक होता है वैसे ही सङ्गीत के लिए भी होता है। डॉ० बी० चैतन्यदेव के शब्दों में—"सङ्गीत का प्रत्यक्षीकरण अन्य प्रत्यक्षीय प्रक्रियाओं की तरह ही सांख्यिकीय सम्भावनाओं के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है।[१]"

प्रत्यक्षीकरण के लिए सूचनाओं का मस्तिष्क में पहुँचना अनिवार्य होता है। मस्तिष्क का स्नायुमण्डल वह मार्ग है जिससे होकर स्वरों के कम्पन मस्तिष्क के केन्द्र-विशेष में पहुँचते हैं। यह स्नायुमण्डल ही समस्त अनुभूतियों का आधार है। यह सूचनाओं का ग्रह्ण, एकत्रीकरण, विश्लेषण, और सम्प्रेषण करता है। हमारे शरीर में फैले स्नायुजाल के द्वारा स्नायुमण्डल कार्यरत होता है। स्नायुमण्डल के भी दो विभाग किये जा सकते हैं। (१) केन्द्रीय स्नायु मण्डल। यह मस्तिष्क और मेरुरज्जु आदि से मिलकर बना माना जाता है। (२) सहानुभूतिक और उपसहानुभूतिक स्नायु मण्डल। मेरुस्नायु की भी दो शाखायें हैं—संवेदनात्मक और कार्यवाही या गत्यात्मक। संवेदनात्मक स्नायुतन्तु सूचनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं और गत्यात्मक स्नायुतन्तु मस्तिष्क से

१. डॉ० बी० चैतन्यदेव, पृ० ४७ के अनुसार।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्राप्त सूचनाओं को शरीर के विभिन्न कार्यवाही अङ्गों तक पहुँचाते हैं। कभी-कभी मस्तिष्क में ये क्रियाएँ बिना संवेदनात्मक तन्तुओं की सूचना के भी प्रारम्भ हो जाती हैं तब हम उन्हें ऐच्छिक क्रियाएँ (वाल्युण्टरी ऐक्शंस) कहते हैं। कुछ क्रियायें ऐसी भी होती हैं जिनके लिए प्राणी को चेष्टा नहीं करनी पड़ती; जैसे—तीव्र प्रकाश पड़ते ही आँखों की पलकों का झप जाना, गरम तवे पर हाथ पड़ते ही हाथ का दूर हो जाना आदि। इन क्रियाओं को 'सहज क्रियाएँ' कहते हैं। सहज क्रियाएँ (रेफ्लेक्स एक्शन) और साहचर्य के नियम (लॉज़ ऑफ् एसोसियेशन) राग-रचना के लिये अत्यधिक आवश्यक हैं और उनके जाने बिना किसी राग द्वारा घटित प्रभाव का यथातथ्य विवरण नहीं पाया जा सकता। जब सङ्गीत में विभिन्न तारता वाले स्वरों का उपयोग किया जा सकता है, तो उनसे सम्बद्ध संवेग, जिन्हें हम वास्तविक जीवन में अनुभव करते हैं, हमारे सामने अपने यथार्थ रूप में आते हैं। ये संवेग उसी सहज क्रिया के माध्यम से उत्पन्न होते हैं, जिस के द्वारा हर्ष, उद्वेग, विषाद और व्याकुलता आदि भावनाएँ प्रकट होती हैं। सहज क्रिया से यह अभिप्रेत है कि ये वे सामान्य क्रियाएँ हैं जिनमें मस्तिष्क की ज़रूरत नहीं होती। दूसरे शब्दों में वे अर्द्धचेतन रूप में घटित होती हैं, जबकि साहचर्य सचेतन क्रिया है। साहचर्य का सम्बन्ध पूर्व-काल में घटित किसी प्रभाव से होता है। स्नायुमण्डल ही इन प्रभावों का भाण्डार है। कोई भी घटना, विचार या प्रभाव जो भी मस्तिष्क में एक बार पहुँच जाता है, वहाँ से बाहर नहीं निकल सकता। यह चेतन, अर्द्धचेतन या अचेतन रूप में वहाँ पड़ा जरूर रहता है। जब हम किसी राग को सुनते या सीखते हैं तो इस से प्रथम सुने-सीखे गए रागों के प्रभाव (इम्प्रेशन) हमारे लिए साहचर्य का काम करते हैं। इन प्रभावों के आधार पर ही हमें दुःख, हर्ष और विस्मयादि की अनुभूति होती है और हम राग-प्रभाव से झूम उठते हैं। एकदम रस प्रवाह में निमग्न।

मनोभौतिकी के 'समानान्तरता के नियम' के अनुसार जैसे-जैसे स्वर की तारता बढ़ती जाती है, भावात्मक अनुभूति भी प्रबल होती जाती है। उदाहरण हेतु—जब 'सा' का दीर्घकाल तक उच्चारण किया जाता है तो एक निद्राजनक (सोम्नीफेरस एफ़ेक्ट) प्रभाव उत्पन्न होता है। यह स्वर विश्राम की एक स्वीकारात्मक अनुभूति प्रस्तुत करता है जो किसी भी अनुभूति के लिए आधार या प्रस्थान-विन्दु हो सकती है। इस प्रकार यह चेतना की अवसीमा प्रदर्शित करता है।[१] पाश्चात्य सङ्गीत में इसे ही आधार स्वर (टोनिक) माना गया है, लेकिन उसका कारण उन्हें स्वयं ज्ञात नहीं है। यही कारण है कि मिस ग्लिन जैसी

१. एच० पी० कृष्णराव, *साइकोलॉजी ऑफ इण्डियन म्यूज़िक,* पृ० ५४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विदुषी महिला भी प्रश्न कर उठती हैं कि कोई भी पूछ सकता है कि आधारस्वरीय इस त्रिस्वरावली (टेट्राकॉर्ड) में बाँध लेने अथवा विमोहित कर लेने वाली कौन-सी शक्ति है जो अन्य स्वरों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकती है जिससे कि वे उस व्यवस्था के अनुगत बन जाते हैं। त्रिस्वरावली (टेट्राकॉर्ड) में कृष्णराव के अनुसार आधार-स्वर (सा) के अतिरिक्त प्रयुक्त होने वाले अन्य दोनों स्वर आधार-स्वर की अनुभूतियों को और भी ज्यादा प्रदीप्त करते हैं।[१] विभिन्न स्वरों के साथ प्रयुक्त होने पर वे स्वर विविध रसों की निष्पत्ति में सहायक हो जाते हैं। रागों द्वारा रसानुभूति के लिए एक और प्रधान बात है, जिसकी प्रायः उपेक्षा की जाती है परन्तु जो मनोविज्ञान की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है—मानसिक स्थिति (मूड)। भूखे श्रोता को राग केदार सुनाकर तृप्त नहीं किया जा सकता। सबको एक ही राग सुनाकर एक-समान अनुभूति नहीं करवायी जा सकती। ज़बरदस्ती किसी के अन्दर सङ्गीत के तत्त्व न तो बोए जा सकते हैं और न रसानुभूति ही कराई जा सकती है। भारतीय सङ्गीत में राग-रूप की अनुभूति तथा उनके ध्यानमय छन्दों द्वारा उन्हें देव-देवी विशेष से सम्बद्ध किये जाने का कारण है उसकी वैज्ञानिकता। इस वैज्ञानिकता का स्वरूप समझाते हुए स्वामी प्रज्ञानानन्द कहते हैं—''राग की संवेदना उद्दीपकों की आवृत्तियों या प्रवाहों के रूप में मस्तिष्क (तथा मन) में आती है और यह सङ्गीतकार को बाध्य या उत्प्रेरित करती है कि वह सङ्गीत-रचना करे। इस प्रकार सृजन की वाञ्छा (द-विल-टु-क्रिएट) ही राग के निर्माण का कारण है और ये उत्प्रेरणाएँ ही उस रचना, राग, निर्माण या प्रकाशन (मैनिफ़ेस्टेशन) को वास्तविक रूप प्रदान करती हैं।''

स्वामी प्रज्ञानानन्द के कथन का तात्पर्य है कि सृजन की वाञ्छा ही राग, मूर्ति, चित्र तथा अन्य आलम्बनों के माध्यम से प्रकट होती है।

✤

---

१. एच० पी० कृष्णराव, *साइकोलॉजी ऑफ इण्डियन म्यूज़िक*, पृ० ५४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

६

वर्तमान सङ्गीतशास्त्र और लोकधुन

अब हम वर्तमान सङ्गीतशास्त्र तथा इस से अनुशासित शास्त्रीय सङ्गीत, लोक धुन और इसका शास्त्रीय रूपान्तरण तथा लोक धुन और राग-रचना में इस का योगदान आदि की चर्चा करेंगे।

वर्तमान उत्तर भारतीय सङ्गीत-शास्त्र पं० विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा सम्पादित दस थाट पद्धति पर आधारित है। थाट पद्धति का प्रवर्त्तन तथा पूर्ण विकास दक्षिण के विद्वानों द्वारा किया गया है। प्रो० ललितकिशोर सिंह के अनुसार, "रामामात्य ने १४ शुद्ध-विकृत स्वरों में से सात-सात स्वरों को लेकर २० 'मेलों' की रचना की। ये जनक मेल कहे गए जिनमें से प्रत्येक से औडव-षाडव आदि भेद करके अनेक जन्य राग निकाले जा सकते हैं। 'मेल' आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धति के 'ठाठ' का पर्याय है। यों तो 'मेल' 'मेलन' आदि का प्रयोग पहले भी हुआ है पर मेल द्वारा रागों के विधिवत् वर्गीकरण के प्रवर्त्तक रामामात्य ही समझे जा सकते हैं। पं० सोमनाथ ने जनक मेलों की संख्या बढ़ाकर २३ की। अन्त में वेंकटमखी ने ७२ मेल कर्त्ताओं के विधान द्वारा जनक मेलों की संख्या चरम सीमा तक पहुँचा दी। इससे बड़ी संख्या किसी भी गणना से नहीं प्राप्त हो सकती। ७२ मेलकर्ता का यह विधान दाक्षिणात्य पद्धति में आज भी माना जाता है।[१]"

पं० वेंकटमखी के पश्चात् कर्नाटक सङ्गीत की एक अन्य पुस्तक 'राग-लक्षणम्' की रचना हुई। इसके रचयिता ने भी ७२ थाट मानते हुए उनसे लगभग ५०० रागों की उत्पत्ति बताई है। रागलक्षणम् ग्रन्थ के ७२ थाट वर्तमान कर्नाटक-सङ्गीत-पद्धति में प्रचलित हैं। कर्नाटक में रागलक्षणम् को आधार ग्रन्थ की मान्यता प्राप्त है। रागलक्षणम् और वेंकटमखी की स्वर-संज्ञाओं में कहीं-कहीं अन्तर पाया जाता है। निम्नस्थ तालिका में यह अन्तर उत्तर भारतीय स्वरों के साथ स्पष्ट देखा जा सकता है।

---

१. प्रो० ललितकिशोर सिंह, *ध्वनि और सङ्गीत*, पृ० १८२-८३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उत्तर भारतीय स्वर	वेंकटमखी	रागलक्षणम् के स्वर
१. सा (षड्ज)	सा (षड्ज)	सा (षड्ज)
२. रे॒ (कोमल)	रि (शुद्ध)	रि (शुद्ध)
३. रे (शुद्ध)	पंचश्रुति रि या शुद्ध ग	चतुश्रुति रि या शुद्ध ग
४. ग॒ (कोमल)	षट्श्रुति रि या साधारण ग	षट्श्रुति रि या साधारण ग
५. ग (शुद्ध)	अन्तर ग	अन्तर ग
६. म (शुद्ध)	शुद्ध म	शुद्ध म
७. मे (तीव्र)	प्रति म या वराली म	प्रति म
८. प	प	प
९. ध॒ (कोमल)	शुद्ध ध	शुद्ध ध
१०. ध (शुद्ध)	पंचश्रुति ध या शुद्ध नि	चतुश्रुति ध या शुद्ध नि
११. नि॒ (कोमल)	षट्श्रुति ध या कैशिक नि	षट्श्रुति ध या कैशिक नि
१२. नि (शुद्ध)	काकली नि	काकली नि

यहाँ यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि उत्तर तथा दक्षिण की स्वर संख्या समान है। अन्तर केवल संज्ञाओं में है। इनमें भी षड्ज, शुद्ध मध्यम तथा पञ्चम स्वरों की संज्ञाओं में कोई भेद नहीं है। उल्लिखित स्वरों से ७२ थाटों की सिद्धि से पूर्व हमें थाट-रचना के नियमों का ज्ञान उपादेय होगा।

थाट-रचना के सम्बन्ध में प्रो० ललितकिशोर सिंह का कथन है, "उत्तरी और दक्षिणी दोनों ही पद्धतियों में पूरे सप्तक को १२ अर्धस्वरों में बाँटा गया है। इन १२ स्वरों से मेल-रचना के लिए कुछ नियम उत्तर और दक्षिण में समान रूप से माने जाते हैं। जैसे (क) बारह स्वरों में से केवल सात स्वरों को लेकर ही थाट की रचना होनी चाहिए। (ख) इन सात स्वरों में षड्ज, पञ्चम और शुद्ध मध्यम या तीव्र मध्यम अवश्य होना चाहिए। (ग) सप्तक के पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग के शेष चार-चार स्वरों में से दो पूर्वाङ्ग और दो उत्तराङ्ग में होने चाहिए। इन्हीं तीन नियमों के आधार पर वेंकटमखी के ७२ मेलों की रचना हुई है।

हिन्दुस्तानी पद्धति में उल्लिखित तीन नियमों के अतिरिक्त निम्नलिखित तीन और नियम माने जाते हैं जिनसे उत्तरी पद्धति का वैशिष्ट्य प्रकट होता है।

१. थाट में किसी स्वर के शुद्ध और विकृत भेदों में से किसी एक का ही प्रयोग हो सकता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२. पूर्वाङ्ग के प्रत्येक स्वर का मध्यम या पञ्चम-सम्वादी स्वर थाट के उत्तराङ्ग में अवश्य होना चाहिए।

३. जिस थाट में तीव्र मध्यम हो उसमें शुद्ध निषाद का होना आवश्यक है। साथ ही जहाँ मं और नि का युग्म हो वहाँ केवल ऋषभ या शुद्ध गान्धार भी अवश्य होना चाहिए।[१]"

वेंकटमखी के ७२ थाटों की गणित-प्रक्रिया द्वारा की गई उपलब्धि की विस्तृत चर्चा अनावश्यक होने के कारण उस विषय में हम केवल इतना कहना चाहेंगे।

१. वेंकटमखी के ७२ थाट गणित सिद्ध हैं किन्तु इनमें सबके सब सङ्गीतोपयोगी नहीं है। ये केवल सम्भावना की अन्तिम सीमा बताते हैं।

२. दक्षिण में ही ये थाट अपनी समग्रता से अद्यावधि नहीं प्रयुक्त हो सके हैं। क्योंकि सङ्गीत केवल भावहीन गणित का प्रसाद नहीं है।

३. दक्षिण के विद्वानों ने इन में से केवल १९ थाट चुन लिया है। ये वे १९ थाट हैं जिन्हें पं० वेंकटमरवी ने अपने ग्रन्थ चतुर्दण्डिप्रकाशिका में विशेष स्थान दिया है।

पं० विष्णुनारायण भातखण्डे द्वारा स्वीकृत दस थाट-पद्धति आज हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति नाम से प्रचलित है। थाट अर्थात् विशेष स्वर सप्तक। प्रत्येक सप्तक को सप्तक के स्वरानुसार एक राग का नाम दे दिया गया है। यमन, विलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी और तोड़ी। ये जनक राग अथवा थाट कहे जाते हैं। इन में किसी राग का नाम लेने से हमें उस राग में लगने वाले सभी स्वरों का बोध हो जाता है। जनक अर्थात् पैदा करने वाला। जनकत्व की चरितार्थता राग-परिवार में इस भाँति स्पष्ट होती है। उदाहरणार्थ जब हम कहते हैं अमुक राग खमाज थाट का जन्य है तब हमें यह तुरन्त ज्ञात हो जाता है कि इस राग में कोमल तथा तीव्र निषाद, दोनों का प्रयोग होगा तथा शेष स्वर शुद्ध होंगे। क्योंकि इसके जनक, आश्रय अथवा थाट खमाज की यही स्वरावली है।

यहाँ राग तथा थाट का अन्तर जानने की आवश्यकता है। थाट केवल स्वर समूह के आरोही वर्णों द्वारा अभिव्यक्त होता है किन्तु राग की अभिव्यक्ति स्वरों के रागानुकूल आरोहावरोह के मिश्रण द्वारा होती है। थाट में सम्पूर्ण सप्तक का प्रयोग अनिवार्य है। राग केवल पाँच स्वरों का भी हो सकता है।

---

१. प्रो० ललित किशोर सिंह, *ध्वनि और सङ्गीत*, पृ० २२२-२३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पं० भातखण्डे द्वारा स्वीकृत दस जनक थाटों की स्वरावली इस प्रकार है—

यमन अथवा कल्याण—	सा	रे	ग	म॑	प	ध	नि	।
विलावल—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	।
खमाज—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि॒	।
भैरव—	सा	रे॒	ग	म	प	ध॒	नि	।
पूर्वी—	सा	रे॒	ग	म॑	प	ध॒	नि	।
मारवा—	सा	रे॒	ग	म॑	प	ध	नि	।
काफी—	सा	रे	ग॒	म	प	ध	नि॒	।
आसावरी—	सा	रे	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	।
भैरवी—	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	।
तोडी—	सा	रे॒	ग॒	म॑	प	ध॒	नि	।

उल्लिखित थाटों की स्वरमालिका का आरोहावरोह में रागानुकूल प्रयोग करके हमें नामाङ्कित दस जनक रागों की सम्प्राप्ति होती है। अनेक जन्य रागों का आधार होने के कारण उल्लिखित दस रागों को जनक राग कहा जाता है। पं० भातखण्डे ने दस थाट पद्धति का प्रयोग पारम्परिक रागों के वर्गीकरण और परिरक्षण के उद्देश्य से किया। प्रक्रिया अत्यन्त सुगम एवं भ्रान्तिहीन होने के कारण समादृत हुई। यह स्मरणीय है, कि पं० भातखण्डे ने उल्लिखित स्वरावली के माध्यम से किसी नये राग का सृजन नहीं किया।

राग सृजन की प्रक्रिया के अध्ययन हेतु हमें सर्वप्रथम, "देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरञ्जकम्।" की ओर दृष्टिपात करना होगा। देश के प्रदेशों में लोकरुचि से पोषित हृदयरञ्जक सङ्गीत ही शास्त्रीय रागों का मूल स्रोत है। अतः अद्यावधि यह सङ्गीत 'देशी' संज्ञा द्वारा अभिहित हो रहा है। लोक-मानस की भावनाओं का व्यञ्जक सङ्गीत अपने सहज रूप में सदैव लोकगीत नाम से जन-जन का मनोरञ्जन करता आ रहा है। लोकसङ्गीत के सम्बन्ध में सङ्गीतमार्त्तण्ड पं० ओम्कारनाथ ठाकुर का कथन है—"बीज से वृक्ष का उद्भव और विकास होता है।" इस सिद्धान्त के अनुसार एक 'षड्ज' स्वर से ही अन्य छः स्वरों का उद्भव हुआ है। इसीलिए उसे छः स्वरों के जन्मदाता के रूप में, 'षड्ज' कहा जाता है। सामवेद भी प्रारम्भ में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित—इन तीन स्वरों में निबद्ध था; क्रमशः पाँच, छः और सात स्वरों का विकास हुआ, जो 'गौतमस्य परकम् कश्यपस्य वर्हिषम्' की संज्ञा से सम्बोधित हैं। इसके बाद से ही सात

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वरों के स्थान, गान के समय परिवर्तित किये जाने लगे। इसी प्रकार सामगान की सहस्र-शैली, पतञ्जलि के कथानानुसार 'सहस्रवर्त्मा सामवेद:' कही जाने लगी। वैदिक सङ्गीत के विकास की परम्परा, बीज द्वारा ही हुई है। आगे चलकर विकास-प्राप्त वैदिक सङ्गीत के क्रमश: 'निबद्ध गीत' 'प्रबन्ध गीत' और 'मार्गीय सङ्गीत' नामक भेद हुए।

देशी सङ्गीत

देशी सङ्गीत के विकास की पृष्ठभूमि लोक सङ्गीत है। जिस देश या जाति का संवेदनशील मानव जिस समय अपने हृदय के भावों को अभिव्यक्त करने की ओर प्रवृत्त हुआ, उसी अवसर पर स्वयंभू स्वर और लय, प्रकृत्या उसके मुख से उद्भूत हुए। उन्हीं स्वरों, गीत, और लय को नियम बद्ध करके उनका जो शास्त्रीय विकास किया गया, वही 'देशी सङ्गीत' बना। मतङ्ग रचित 'वृहद्देशी' ग्रन्थ देशी सङ्गीत का प्रामाणिक और पुरातन ग्रन्थ है। मेरी धारणा है, कि आज भी यदि शोध किया जाए तो प्रचार में गाए जाने वाले रागों का उत्पादक 'लोक सङ्गीत' ही सिद्ध होगा। लोक सङ्गीत में प्रेम, भक्ति, अनुराग और धर्म आदि मानव-जीवन के सभी अवयवों का सन्निवेश है। आधुनिक प्रचलित गुर्जरी, सोरठ, सौराष्ट्रटङ्क, गान्धारी, भूपाली, मुल्तानी, बङ्गभैरव तथा कर्नाट (कानड़ा) आदि राग अपने नाम-आख्याभेद के अनुसार तत्तज्जनपदों और देशों के लोक-सङ्गीत का प्रतिनिधित्व करते हैं।[१]

पं० ओम्कारनाथ ठाकुर के पश्चात् लोक-सङ्गीत से शास्त्रीय सङ्गीत के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए पं० कुमार गन्धर्व का कथन है—"यदि शास्त्रीय सङ्गीत की उत्पत्ति लोक सङ्गीत से हुई है तो निश्चय ही लोक सङ्गीत को अपने आप में पूर्ण होना चाहिए। लोक सङ्गीत का निर्माण स्वाभाविक है। इसको समझकर जब हम विश्लेषण करके नियमबद्ध करते हैं, तब वह 'लोक' से हटकर 'शास्त्रीय' रूप धारण करता है। इस प्रकार बना हुआ शास्त्रीय सङ्गीत निश्चय ही अपने-आप में एक पूर्ण वस्तु हो जाता है। वह अपने मूल 'लोक' रूप से अधिक सुसंस्कृत और व्यवस्थित होता है। लोक भाषाओं का उदाहरण लीजिए। वे अनेक हैं। उन्हें किसी ने बनाया नहीं। पर उनके होते हुए 'संस्कृत' भाषा का निर्माण हुआ जो अधिक नियमबद्ध, शुद्ध और परिपूर्ण है। ठीक इसी प्रकार लोक सङ्गीत और शास्त्रीय सङ्गीत की स्थिति है। लोक भाषाएँ जिस प्रकार स्वयं बनी हैं, उसी प्रकार लोक धुनें भी बनती रहीं और बनती जायेंगी।

---

१. पं० ओम्कारनाथ ठाकुर, *सङ्गीत,* लोकसङ्गीत अङ्क, पृ० २३, २४, जनवरी १९६६ ई०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इन्हीं धुनों से शास्त्रीय रागों का विकास हुआ है। किन्तु राग कैसे बने? यह प्रश्न सङ्गीताचार्यों को सदैव तापदायक रहा है। उन्होंने नये राग बनाने के प्रयास किए, किन्तु वे प्रयास केवल वर्तमान रागों के मिश्रण से मिश्र-राग और जोड़-राग बनाने तक ही सीमित रहे। वर्तमान रागों के एकाध स्वर निकाल कर दूसरा वर्ज्य स्वर डाल देने से नया राग नहीं बनता है। पूर्णतया कोई राग-निर्माण करना प्रायः उन्हें असम्भव ही प्रतीत हुआ। यदि आधुनिक युग में सङ्गीतज्ञ नवीन रागों का निर्माण नहीं कर सकते तो पूर्वजों ने उन्हें कैसे बनाया होगा? यह प्रश्न मेरे मन में बराबर उठता रहा। बचपन में मैं समझता था कि राग बनाए जाते हैं किन्तु अनुभव से इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि **राग बनाए नहीं जाते, बनते हैं।** हम लोक धुनों में रागों को छुपा हुआ पाते हैं। उन्हें पकड़कर जब हम प्रकट कर देते हैं तो शास्त्रीय पक्ष सामने आ जाता है। लोक धुनें न्सिर्ग-निर्मित हैं, इसलिए वे निसर्ग की तरह पूर्ण होती हैं। उनमें कोई-न-कोई राग अवश्य होता है। उसके लिए दृष्टि की आवश्यकता है। राग के मूल स्वरों को जानकर जब उन्हें पूर्णता प्रदान की जाती है तो शास्त्रीय दृष्टि से उनका रूप निखर आता है। अतः स्पष्ट है कि शास्त्रीय राग लोकधुनों में छुपे हुए रागों के विकसित स्वरूप होते हैं। लोकधुन यदि निसर्गपूर्ण है तो भी वह सीमित है। इसी कारण उसमें प्रगति नहीं होती। उसके सीमित होने का प्रमुख कारण यही है कि वह स्वयं-निर्मित है। खोज करते समय मुझे अनेक प्रचलित कई छोटे-बड़े रागों की लोक धुनें प्राप्त हुई हैं। उनमें शास्त्रीयता का आभास होता है। कुछ नई धुनें भी ऐसी मिली हैं जिसके द्वारा नवीन रागों का निर्माण किया जा सकता है। अतएव लोक-धुनों को एकत्र करने के साथ-साथ हमारा यह दृष्टिकोण होना चाहिए कि मूल को आधार मानकर आगे निर्माण किया जाए।

हिन्दुस्तानी सङ्गीत-शास्त्र में लगभग तीन-चार सौ रागों का उल्लेख किया गया है। श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ गायक भी उन सब रागों को नहीं गा सकता। जिस भारतीय सङ्गीत पर हम इतना गर्व करते हैं, उसमें इतने थोड़े रागों का होना वास्तव में दुर्भाग्य का विषय है। हमारे रागों की पूँजी आख़िर इतनी कम क्यों है? इसका कारण यही प्रतीत होता है कि रागों के निर्माण और विकास के सम्बन्ध में सोचा ही नहीं गया। इतना ही नहीं सङ्गीत विद्या का कण्ठ मात्र से सम्बन्ध होने के कारण क्रमशः अनेक विकृतियाँ और अशुद्धियाँ भी उसमें आती गईं। सङ्गीताचार्य लोकसङ्गीत की इन दिनों चर्चा करते हैं। कोई-कोई लोक-सङ्गीत में पाँच स्वरों का सारङ्ग राग ही अधिक देखते हैं और इस लिये बिना समझे-बूझे, सर्वप्रथम सारङ्ग राग ही बना होगा—इस बात की कल्पना करते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अतएव नये रागों के उल्लेख के सिलसिले में लोक सङ्गीत सम्बन्धी प्रचलित चर्चा का उल्लेख प्रसङ्गानुकूल मानकर ही मैंने यह बात कही है।''

लोकधुनों की विशेषताएँ

(क) साधारणतया लोक धुनें चार-पाँच स्वरों में सीमित हैं। क्वचित् धुनों में ही छ: स्वर मिलते हैं, जिनकी संख्या निश्चय ही बहुत कम है।

(ख) लोक-धुनें लय-बद्ध होती हैं। लय सूचक कोई वाद्य लोक-धुन गाते समय न बजाए जाने के कारण ऐसा भास होता है कि धुनों में केवल स्वर का महत्त्व है; परन्तु अधिक ध्यान दिया जाए, तो लय स्पष्ट दिखाई देती है। नृत्य के साथ जो धुनें गाई जाती हैं उनमें लय ढोलक़ की संगति के कारण स्पष्ट दिखाई देती है। आश्चर्य की बात यह है कि लय के अनेक प्रकार लोक धुनों में मिलते हैं। समान भाग की लय, जो कि सरल होती है और क्लिष्ट विभाजन की लय, जिसके हिस्से समान नहीं होते—ऐसे दोनों ही प्रकार लोक धुनों में पाए जाते हैं। शास्त्रीय सङ्गीत में भी दोनों प्रकार के ताल हैं।

(ग) लोकधुनों के स्वर समय के अनुरूप होते हैं। प्रातःकाल. मध्याह्न सायंकाल और रात्रि के अनुसार स्वरसाम्य लोक धुनों में स्वाभाविक है। शास्त्रीय सङ्गीत में यह अत्यन्त महत्त्व का विषय समझा गया और रागों का समय विभाजन उनके स्वरों के अनुसार किया गया है।

(घ) लोकधुनें प्रायः सरल होती हैं। परन्तु किसी-किसी धुन में रागों का सम्मिश्रण भी मिलता है। जैसे कि शास्त्रोक्त सङ्गीत में अनेक रागों के सम्मिश्रण से मिश्र-राग या जोड़ राग बनाए गए हैं। भैरव-बहार, सोहनी-भटियार, नट-केदार, हेम-नट, नट-मल्हार, तथा नट-बिहाग आदि इसी प्रकार के राग हैं। इसी प्रकार लोकधुनों में भी जितनी मिश्र या जोड़ धुनें मुझे मिलती हैं, वे अत्यन्त ही सुन्दर और सुमधुर हैं। उनका मिश्रण कलात्मक और अत्यन्त स्वाभाविकता से युक्त है।

(ङ) लोकधुनों की स्वर-रचना प्रसंगानुरूप भी होती है। उन स्वरों के प्रसंग के अनुरूप भाव व्यक्त होते हैं। उदाहरण स्वरूप इधर मध्य प्रदेश, मध्य भारत आदि के गाँवों की ओर कहीं-कहीं बलि का आयोजन किया जाता है। उस समय जो धुन गाई जाती है, उसकी स्वर-रचना में वीभत्स भावों का सञ्चार होता है। मुझे जो धुन प्राप्त हुई है, उसका ऋषभ इतना विचित्र लगता है कि सुनने वालों को रोमाञ्च हो आता है। मैंने स्वयं प्रयोग कर यह अनुभव भी किया है। झूले की धुनों में झूले के दोलन (Pangs) बहुत स्पष्ट और मार्मिक प्रतीत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होते हैं। शास्त्रोक्त सङ्गीत में भावना को स्वरों में व्यक्त करने के लिए सम्पूर्ण शक्ति खर्च करनी पड़ती है। परन्तु बहुत ही कम गायकों को भिन्न-भिन्न स्वरूपों को व्यक्त करने की कला हस्तगत हुई है।

(च) एक ही लोकधुन में अनेक गीत गाये जाते हैं। किन्तु गीत के बोल भिन्न होने के कारण और विशेषत: लय में परिवर्तन होने के कारण वे बिलकुल एक दूसरे से भिन्न हो जाते हैं। स्वर-रचना करने के पश्चात् ही ऐसी विभिन्न धुनें ज्ञात होती हैं।[१]

प्रसिद्ध गायक कुमारगन्धर्व के विचारों के साथ ही पं० रविशङ्कर के लेख 'लोक हृदय की धड़कनें' का अवलोकन प्रासङ्गिक होगा—"हमारे देश में लोकधुनों का इतना भण्डार पड़ा है कि हम उसे सुनकर चकित रह जाते हैं। हर प्रान्त के अलग-अलग लोकगीत और लोकधुनें हैं जिनका गायन भिन्न-भिन्न अवसरों पर होता है।

शब्दों के साथ धुनें भी वर्षों से एक साँचे में ढली हुई चली आ रही हैं। इनको हम अलग-अलग क्रमबद्ध कर सकते हैं। भटियाली धुन सुनकर जैसे नावों का विचार आ जाता है, वैसे ही उत्तर प्रदेश की सावनी, कजरी, पंजाब का माहिया, महाराष्ट्र का पोवाड़ा, व लावणी आदि सुनकर मन में विशेष प्रकार के भाव जागृत होते हैं।

देश-विदेश में घूमने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि समस्त विश्व की लोकधुनों में साम्य है। वे एक-दूसरे से मिलती-जुलती हैं। मेक्सिकी धुन सुनने पर तमिलनाडु के लोकगीतों की याद आ जाती है। जार्जियन धुनें हमारे महाराष्ट्र की लोकधुनों से बहुत मिलती-जुलती हैं। केवल रीति, धर्म और चलन में फ़र्क होता है। पर वे होती हैं वही ३०-४० मुख्य बानगियों पर आधारित।

मुझे बचपन से ही लोकधुनें आकर्षित करती रहीं हैं। बङ्गाली होने के नाते मैं बङ्गाली लोकधुनों को काफ़ी अच्छी तरह जानता हूँ लेकिन मेरा जन्म बनारस में हुआ। मेरा ननिहाल था नसरथपुर में, जो गाज़ीपुर ज़िले में है। उसी समय से मैं लोकधुनों की ओर खिंचा-सा चला आया हूँ।

मुझे याद है कि जब रात के सन्नाटे में अकेला बैठा हुआ मैं कुछ सोच रहा होता और दूर से कहीं गाँववालों के गीतों की ध्वनि कानों में पड़ती—कभी कोई ग्रामवासी बिरहा गाता हुआ चला आता, तो उसे सुनकर मैं भाव-विभोर हो उठता था। गाँव में रहने से मुझे चमार, धोबी और अन्य लोगों के नृत्य देखने तथा उनके गीत सुनने का अवसर भी मिलता रहा। बनारस में कजरी, चैती, होरी

१. पं० कुमारगन्धर्व, *सङ्गीत*, जनवरी १९६६ ई०, पृ० २५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सुनने को मिलती थीं। मैंने दो-तीन वर्ष लोकधुनों का अन्वेषण किया और संग्रह करता गया। दक्षिण भारत का संग्रह भी मेरे पास है।

मेरे विचार में, लोकधुनों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। एक भाग वह, जिसका मूल शास्त्रीय राग पर आधारित है और जिसका मूल-सूत्र भक्तिरस है। इसमें हरिकथा से लेकर रामायण तक गायी जाती है। महाराष्ट्र और दक्षिण भारत के लोकगीत इसी तरह के होते हैं। ये धुनें किसी-न-किसी एक राग पर अवलम्बित होती हैं। इन लोकगीतों में अधिकतर दुर्गा, पीलू, काफी, भैरवी, गौरी, कालिङ्गड़ा आदि रागों का उपयोग होता है।

दूसरे भाग में आते हैं हमारे गाँव के गीत जो अलग-अलग अवसरों पर गाये जाते हैं। इसमें हिमाचल और गढ़वाल के पहाड़ी इलाकों में गाये जाने वाले गीत भी सम्मिलित हैं। ये लोकगीत रागों पर आधारित तो होते हैं, किन्तु उनके अनुयायी नहीं होते। इन गीतों में प्रायः दुर्गा, भूपाली, पहाड़ी, सारङ्ग, पीलू, गौरी और झिंझोटी का उपयोग होता है।

तीसरे भाग में गोंड भील, संथाल, नागा तथा मरिया आदि, आदिवासियों के लोकगीत आते हैं। इसमें अलग-अलग रागों के अशुद्ध मिश्रण पाये जाते हैं। वे दुर्गा और भूपाली अपने ही ढँग से गाते हैं। इस रीति से गायी जाने वाली धुनों में हम उन श्रुतियों को सुनते हैं, जिनके लोग आदी नहीं है। क्योंकि हम व्यवहार में आने वाली केवल १२ श्रुतियों ही के आदी बन चुके हैं, जो पियानो, माउथ आर्गन, हार्मोनियम में पायी जाती हैं। इस लिए वे बेसुरे से लगते हैं। लेकिन हिन्दुस्तानी शास्त्रीय सङ्गीतकार जो इस गुप्त भेद को जानते हैं और २२ श्रुतियों का उपयोग जानते हैं वे इसके गुण गाये बिना नहीं रह सकते।

इन सीधे-सादे विद्याहीन आदिवासियों को इन श्रुतियों का आसानी से उपयोग करते हुए देख हमें आश्चर्य होता है। वे एक ही गीत की पंक्ति को दुहराते जाते हैं, अभिन्न स्वर में, जिसे सुनते-सुनते एक नशा-सा होने लगता है। पर इसके लिए हमें इन लोकगीतों को उनके ही वातावरण में सुनना चाहिए।[१]

लोक में 'जातियाँ' कई प्रकार की हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वाञ्चल में जातियों द्वारा गाये जाने वाले गीतों में कुछ इस भाँति हैं। अहीर-लोरिक और चन्दा की प्रेम कथा पर आधारित 'लोरिकायन'। कहार-कहरवा। नाई-झूमर। तेली-चनैनी। चनैनी अर्थात् चन्दा की प्रेमगाथा। लोरिकायन में नायक लोरिक प्रधान है उसी भाँति इसमें नायिका चन्दा प्रधान है। इसमें नायक को नयकवा कहे जाने के कारण गीतों को नयकवा भी कहा जाता है। कोहार-कुण्डा बजाकर गाते हैं।

---

१. पं० रविशङ्कर, *लोक हृदय की धड़कनें,* नवनीत, दीपावली अङ्क, (नवम्बर) १९६७ ई०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इनके गीतों की अलग शैली है। धोबी-लँहगा पहनकर, कमर में छोटी घण्टियाँ बाँधकर गाते हुए नाचते हैं। इनके गीत प्रायः पति-पत्नी को एक दूसरे द्वारा सम्बोधित करते हुए कथोपथन पर आधारित होते हैं। सम्भवतः लोक गायकों में केवल धोबी ही अपने नृत्य-गान में मृदङ्ग वाद्य का प्रयोग करते हैं। अन्य छोटी जातियाँ-निर्गुन, भजनप्रकार आदि का गायन करती हैं। इनके अतिरिक्त मौसम और त्योहारों के गीत होरी, चैती, कजरी, आल्हा तथा भजन आदि हैं जिन्हें सभी जातियों के लोग गाते हैं। साथ ही पुत्रजन्म, मुण्डन, जनेऊ एवं विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का विविध लय-स्वरों से पूरित विस्तृत परिवार है। जिनमें नव राग सृजन की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं।

✤

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

७

लय ताल एवं मात्रा

राग सम्बन्धी चर्चा को और आगे बढ़ाने से पहले हमें आवश्यक है कि हम लय, ताल, मात्रा और कतिपय विशिष्ट तालवाद्यों की संक्षिप्त चर्चा करें। कारण स्पष्ट है। गायन, वादन अथवा नृत्य ये सब ताल में प्रतिष्ठित हैं। इसके बिना इनमें से एक भी पूर्णता नहीं प्राप्त करता। ताल की आधारशिला लय है। लय का मात्राओं द्वारा विभाजन एवं विभागीकरण द्वारा आवर्तन निश्चित करके हम इसके नियमन और विविध तालों के रूप निर्धारण में समर्थ होते हैं। लय की व्यापकता, सूक्ष्मता और जटिलता आदि को देखते हुए हम इसके सहवर्ती मात्रा, विभाग, ताली, सम-विषम, गति, यति, विलम्बित, मध्य तथा द्रुत आदि शब्दों को किंचित् निकट से देखने का प्रयत्न करेंगे।

लय—ध्यान का एकाग्र होना। एक वस्तु का दूसरी में मिल जाना। कण्ठध्वनि और वाद्यों की ध्वनि की परस्पर एक रूपता। विश्रामस्थल। स्वरों के आरोह अथवा अवरोह से उत्पन्न गति अथवा धुन। लय के मध्य, विलम्बित तथा द्रुत तीन प्रकार हैं। पुनः ये तीन द्रुत, द्रुततर और द्रुततम भेद से नौ प्रकार के हो जाते हैं। विलम्बित किंवा द्रुतलय की अति सङ्गीत में रसभङ्ग का कारण होती है। महर्षि भरत के नाट्यशास्त्रानुसार "उत्तम जन विलम्बित लय, मध्यम जन मध्यलय का और अधम जन प्रचुराद्रुत गति का प्रयोग करते हैं। सत्त्वानुसार तीनों लयों का प्रयोग किया जाना चाहिए।[१]" महर्षि भरत द्वारा प्रयुक्त शब्द 'सत्त्ववशेन' व्यापक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। सत्त्ववशेन अर्थात् नाटक के विषयानुसार, कथापात्र की मनोदशा सूचक आदि।

लय के सम्बन्ध में ध्यान देने पर हम देखेंगे, साँस का आना-जाना, दि़ल का धड़कना, नाड़ी स्पन्दन, दिन, सन्ध्या और रात का होना आदि अनेक भौतिक कार्य-व्यापार एक निश्चित क्रम से बार-बार होते रहते हैं। रेलगाड़ी की ध्वनि छुक्, छुका, छुक् आदि में एक विशेष क्रम और आवृत्ति होती है। यह आवृत्ति

---

१. धैर्योपपन्नागतिरुत्तमानां, मध्यागतिर्मध्यम सम्मतानाम् ।
द्रुतागतिश्च प्रचुराधमानां, लयत्रयं सत्त्ववशेन योज्यम् ॥

नाट्यशास्त्र गा० सं; अ० १२/१३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और क्रमिकता ही लय है। लय विहीन सृष्टि की कल्पना सम्भव नहीं है। ब्रह्माण्ड में जीवन के प्रथम स्फोट की जननी लय है। लय की निष्पत्ति, गति, प्रवाह और यति अर्थात् विराम के पारस्परिक एवं क्रमिक संघात से होती है। लय की व्याप्ति दिक् और काल दोनों में अबाध और सनातन है। यह केवल काव्य और सङ्गीत तक सीमित नहीं है वरन् जीवन के प्रत्येक कार्यकलाप में व्यक्त-अव्यक्त रूप में सदैव सक्रिय रहती है। भेद केवल इतना है कि, जहाँ कविता और सङ्गीत में लय, काल-सापेक्ष होती है, वहीं चित्र, मूर्ति एवं बास्तुकला आदि में दिक् सापेक्ष।

प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में योगिजनवल्लभा लय की थोड़ी चर्चा की गई है। सङ्गीत प्रयोज्य लय की प्राप्ति हेतु हम अखण्ड, सतत प्रवाहित लय को मात्राओं द्वारा विभाजित करते हैं। मात्रा के विषय में आचार्यों के कथन द्वारा हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुँचते हैं।

मात्रा—मापक इकाई। भाग, अंश। छन्दशास्त्र में एक मात्रा का क्षण। ह्रस्व स्वर के उच्चारण में लगने वाला काल। स्वर का स्थितिकाल। किन्तु यहाँ स्वर का तात्पर्य किसी ताल-वाद्य की ध्वनि है। मृदङ्ग की एक थाप की ध्वनि एक मात्रा की सूचक स्वीकार की जाती है। मात्रा को परिभाषित करने के अनेक प्रयत्न किये गए हैं। वर्ण की भाँति मात्रा भी लघु, गुरु, अथवा प्लुत (दीर्घायित) हो सकती है। मात्रा लघु की दुगनी गुरु और लघु की तिगुनी प्लुत आँकी गई है। शास्त्रों में मात्रा को 'कला' भी कहा गया है। कला प्रसङ्ग में उक्त काल को परिभाषित करते हुए कहा गया है—चन्द्रमण्डल का सोलहवाँ भाग; राशि के तीसवें अंश का साठवाँ भाग; काल का एक मान; १.६ मिनट। मात्रा के इस माप को स्पष्ट करते हुए बताया गया है, निमिष वा निमेष आँखों की पलकों के झपकने को कहा जाता है। अर्थात् पलक झपकने में लगा समय 'कला' का बोधक है। यह समय एक लघु वर्ण के समकक्ष माना जाता है। ऐसे पाँच लघु वर्ण के उच्चारण में लगा समय एक मात्रा काल के रूप में प्रतिष्ठित होगा। किन्तु कला के घटक वर्ण ह्रस्व अथवा दीर्घ या मिश्रित होते रहते हैं अतः कला इन्हीं के प्रभाववश लघु, गुरु एवं प्लुत होती रहती है।

मृदङ्ग की एक थाप की ध्वनि को एक मात्रा का बोधक कहा जा चुका है। तन्त्रीवाद्य के आचार्य इसे स्वर के माध्यम से समझाते हुए कहते हैं—मन्द्र सप्तक के षड्ज को छेड़िए। स्वर की सम्पूर्ण समाप्ति से पूर्व स्वयम्भू गान्धार सुनाई देगा। स्वयम्भू गान्धार के पूर्व की ध्वनि का काल एक मात्राकाल का बोधक है। फ़ार्सी ग्रन्थों में नाड़ी की एक धड़कन को एक मात्राकाल कहा गया है। किन्तु चन्द्रकला के १.६ मिनट के परिमाण को देखते हुए यह स्वीकार्य नहीं लगता। मात्राबोधक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक अन्य प्रयत्न के अनुसार नीलकण्ठ पक्षी एक, कौआ दो और मोर तीन मात्राकाल में बोलता है। इनके विपरीत नेवला केवल आधी मात्रा में बोलता है।[१]

मात्रा की व्याख्या करते हुए कहा गया है; क्षण=४/५सेकेण्ड। दो क्षणों का लव। दो लवों का एक निमेष। १८ निमेषों की एक काष्ठा। तीस निमेषों की एक कला शास्त्रसिद्ध है।[२] एक मात्रा अथवा कला ही जहाँ ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत प्रकारों द्वारा जटिलतर होकर रह गई हो वहाँ आधी मात्रा का प्रत्यक्षीकरण कैसे हो? मात्रा, मात्र छन्द एवं ताल सीमित नहीं है। तन्त्रमार्ग की उपासना में 'कलान्यास' का अपना विशिष्ट स्थान है। चर्चित आधी मात्रा कोरी कल्पना नहीं है। इसे अनिर्वचनीय स्वीकारते हुए भी आप्त ऋषिगण ने आधी मात्रा विषयक अपनी अनुभूति की साधकों के हितार्थ अभिव्यक्ति की है।

दुर्गासप्तशती के प्रथम अध्याय के 'विश्वेश्वरीं' से 'हन्तुमेतौ महासुरौ' पर्यन्त पन्द्रह श्लोक 'रात्रिसूक्त' नाम से विख्यात हैं। इनके द्वारा भगवती योगनिद्रा की स्तुति करते हुए विधाता कह रहे हैं—"हे अक्षरे! तुम अमृत हो। नित्य, तथा ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत अथवा अ, उ, म् से ॐकार रूपिणी तीन मात्राओं वाली हो। हे पराजननी! विशेषरूप से अनुच्चार्या अर्धमात्रा रूप से तुम्हीं स्थित हो।"

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥

सप्तशतीसर्वस्व कर्त्ता पं० सरयूप्रसाद द्विवेदी उल्लिखित श्लोक की टीका में कह रहे हैं—"जो नित्य, अपरिणामिनी, विशेषतया तीन मात्राओं की विलक्षणता के कारण अनुच्चार्या, वेदान्त वाक्यलक्षणा, मुक्तिदायिनी तुरीयासंज्ञक आधी मात्रा है, वह तुम्हीं हो। प्रणव प्रसङ्ग में भगवान् दत्तात्रेय का कथन है—अकार, उकार और म्कार ये तीन अक्षर हैं। सत्, रज तथा तम की प्रतीक ये ही तीन मात्राएँ हैं। केवल योगिजनों द्वारा अनुभवगम्य इनके अतिरिक्त एक अन्य आधी मात्रा नाम से विज्ञात है। यह गान्धार स्वर में स्थित है। इसे गान्धारी नाम से जानना चाहिए। प्रयुक्त होने पर यह मस्तक में चींटी रेंगने के समान स्पर्श द्वारा अनुभूत होती है। आधी मात्रा का कानों द्वारा श्रवण मात्र परमार्थक जानना चाहिए। प्रथमा मात्रा (अ) व्यक्त, दूसरी (उ) अव्यक्त और तीसरी (म्) चित् शक्ति रूपिणी, परमपद की द्योतक आधी मात्रा है। क्रमशः प्रथमा मात्रा ह्रस्व, द्वितीया दीर्घ, तृतीया प्लुत तथा अर्धस्था है। यह शब्दादि द्वारा इन्द्रियगोचर नहीं है। "वचसः सा न गोचरा"। अर्धमात्रा? व्यञ्जन वर्णरूप मातृका तुम्हीं हो। कहा गया है, व्यञ्जन अर्धमात्रक होते हैं। यह मातृका कैसी है? अर्धमात्रारूपिणी, नित्या, ध्रुवा, मोक्ष सूचिका, तथा

---

१. चाषस्तेषां वदेन्मात्रां, द्विमात्रं वायसो वदेत् ।
त्रिमात्रं तु शिखीब्रूयान्नकुलश्चार्धमात्रकम् ॥

२. श्री सरयूप्रसाद द्विवेदी, *सप्तशती सर्वस्व,* पृ० ३७८, कलाकाष्ठदिरूपेणेति।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुच्चार्या होने के कारण आत्मरूपा अतः अवर्णनीया। जहाँ पहुँचकर वाणी निवृत्त हो जाती है। ''यतो वाचो निवर्तन्ते।[१]''

मात्र अनुभवगम्य अर्धमात्रा के विषय में प्रसिद्ध सितारवादक पं० रविशङ्कर का कहना है—''मैंने ९ मात्राओं के मत्त ताल, ग्यारह मात्राओं के चार ताल की सवारी, तेरह मात्राओं के जय, १५ मात्राओं के पञ्चमसवारी १७ मात्राओं के शिखर तथा साढ़े चार, साढ़े पाँच और साढ़े छः मात्राओं से विज्ञात तालों में वादन प्रचलित किया। आधी मात्रा संयुत ये ताल बहुत पारम्परिक नहीं हैं। वास्तव में ये विषम मात्राओं वाले तालों के द्रुत संस्करण हैं। जैसे, नौ मात्रा का ताल द्रुत लय में साढ़े चार का और ग्यारह मात्राओं का ताल साढ़े पाँच मात्राओं का हो जाता है। लय के ऐसे आवर्त्तनों को मैं कोई नया काल्पनिक नाम देना नहीं पसन्द करता हूँ प्रत्युत ताल के मूल नाम से आगे 'अर्ध' लगा देता हूँ। जैसे, अर्ध मत्त ताल, अर्ध सवारी, अर्ध जय आदि।[२]''

यहाँ विशेष परिलक्षित करने योग्य बात यह है, कि सङ्गीत प्रयोज्य ऐसे आधी मात्रा की उपलब्धि विषम मात्रा की ताल की लय को द्विगुणित कर देने पर हो रही है। यह सम्प्राप्ति भी मात्रअनुभवगम्य और अनुच्चार्य है।

मोक्षार्थी योगिजनसेविता मात्रा के विषय में म० म० गोपीनाथ कविराज के शब्द हैं—''अकार की एक, 'उ' कार की दो और 'म' कार की तीन सब मिलाकर छः मात्राएँ हैं। विन्दु 'अर्धमात्रा' है। अर्धचन्द्र आदि की मात्रा क्रमशः और भी कम है। 'विन्दु' से 'समना' तक मात्रांश को जोड़ देने पर १ मात्रा होती है। यद्यपि माया जगत् में मन्त्र की छः मात्राएँ हैं परन्तु मायातीत पद में वह केवल एक ही मात्रा है। वह एक मात्रा भी सूक्ष्म है और सूक्ष्मतर होते-होते सर्वत्र व्याप्त होकर कार्य करती है।''

मात्रांश इस प्रकार हैं—

विन्दु	—	१/२	मात्रा
अर्धचन्द्र	—	१/४	''
निरोधिनी	—	१/८	''
नाद	—	१/१६	''
नादान्त	—	१/३२	''
शक्ति	—	१/६४	''
व्यापिनी	—	१/१२८	''
समना	—	१/१२८	''
जोड़	—	१ मात्रा	

१. श्री सरयूप्रसाद द्विवेदी, *सप्तशती सर्वस्व*, पृ० १०२

2. Ravi Shankar, *My Music, My life*, p. 30

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अतएव हृदय से इस मूलमन्त्र-स्वरूप ॐकार का उच्चारण ही पूर्ण ब्रह्म-विद्याप्राप्ति का सोपान है। निष्कल ॐकार में उसकी ग्यारह कलाएँ भासती हैं। उच्चारण के प्रभाव से एक के बाद एक कला का विकास होता है और तत्तत् अनुभूति की जागृति होती है। क्रम-विकास के मार्ग से निम्नस्थ कला की अनुभूति ऊर्ध्वस्थ कला की अनुभूति में स्थित हो जाती है। योगी लोग ग्यारह कलाओं को अ, उ, म, विन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी और समना—इन ग्यारह नामों से पुकारते हैं। ॐकार की इन ग्यारह कलाओं के अनुभव के बाद ही उसके निष्कल अनुभव का उदय होता है, वही परमानुभूति है। ये दोनों अनुभूतियाँ मिलकर ही पूर्ण ब्रह्मविद्या कहलाती हैं।[१]''

ताल—चर्चित मात्राओं की निश्चित संख्या तथा उनके विभागों द्वारा सङ्गीताचार्य तालों का रूप निर्धारण करते हैं। ताल की आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए 'तकार' को भगवान् शङ्कर और 'लकार' को भगवती पार्वती का प्रतीक कहा गया है। अतः शिव और शक्ति के समायोग को 'ताल' कहा गया।[२] व्याकरण की दृष्टि से 'तल्' धातु का स्थापित करना तथा नियमित करना दो अर्थों में प्रयोग किया जाता है।[३] मात्राओं का आकलन द्वारा नियमन, विभाजन तथा तज्जन्य ताल प्राप्ति द्वारा गायन, वादन, और नृत्य का ताल विशेष में स्थापन करते हुए हम 'तल्' धातु के दोनों अर्थों को चरितार्थ होते देखते हैं।

ताल की रचना, मात्राओं की गिनती एवं उनका विभाजन करके की जाती है। मात्राओं का विभाग आवश्यकतानुसार सम-विषम आदि कुछ भी होता है। विभागों की प्रारम्भिक मात्रा पर ताल रूप का निर्धारण करने वाले सङ्केतों (ताली तथा खाली) की स्थापना की जाती है। अब हमें ताल की प्राप्ति हो जाती है। मात्राओं की संख्या और विभाग के अनुसार हम ताल विशेष का नामकरण करते हैं। मिश्रित संख्या की विभागीकृत मात्राओं का समूह किसी ताल का एक आवर्तन है। विभागों पर समग्र रूप में यथा नियम ताली देकर और निःशब्द, दायें हाथ को दायीं ओर ले जाकर खाली का सङ्केत करते हुए, तालरूप का प्रदर्शन एवम् अध्ययन-अध्यापन किया जाता है। ताल कोई हो, मात्राओं की संख्या कुछ भी हो, विभाग कितने और कैसे ही क्यों न हों मात्राओं का अनुपात समान होगा। मात्राओं

---

१. म० म० गोपीनाथ कविराज, *कविराज प्रतिभा,* पृ० १६९-७२

२. तकारः शङ्करः प्रोक्तः लकारः पार्वती स्मृतः ।
शिवशक्ति समायोगात्तालरित्यभिधीयते ॥ *अभिनव तालमञ्जरी*

३. भूतले तालयन्ते ते वृक्षान् बहुफलप्रदान् ।
तालयन्ति च तालज्ञा गायकस्वरपद्धतिम् ॥
पं० राजकिशोर मणि, *पाणिनीयो धातु पाठः,* पृ० २२७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का एक के काल में दो और दो के काल में एक का प्रयोग करके लय की गति को द्रुत अथवा विलम्बित किया जाता है। समान दूरी पर स्थित ये मात्राएँ सङ्गीत प्रयोज्य ताल के आवर्तन और कालमान का वैसे ही नियमन करती हैं जैसे घड़ी एक टिक् से दूसरी, तीसरी और चौथी टिक् बोलती हुई क्रमशः मिनट, इनके पाँच के बारह विभाग और घंटा की सूचना देती है। घंटा को ताल का आवर्तन कहा जा सकता है। ताल में ताली और खाली एक-एक और एकाधिक भी होती हैं।

सङ्गीत रत्नाकर में बहुत से तालों का उल्लेख मिलता है। ग्रन्थ में चार मात्रा के आदि ताल से लेकर, छानबे मात्रा के ताल, सिंहविक्रीडित का वर्णन किया गया है। इनमें सभी सङ्गीत प्रयोज्य नहीं हैं। एक मत के अनुसार वर्तमान में केवल पैंतीस ताल प्रचलित हैं। इनमें सोलह मात्राओं का तीन ताल सर्वाधिक प्रयोग में है। इसके साथ दादरा (६ मात्रा) रूपक (७ मात्रा) कहरवा (८ मात्रा) झपताल (१० मात्रा) एकताल (१२ मात्रा) चौताल (१२ मात्रा) झूमरा (१४ मात्रा) आड़ा चौताल (१४ मात्रा) धमार (१४ मात्रा) और चाचर या दीपचंदी (१४ मात्रा) सङ्गीत कार्यक्रमों में प्रायः सुने जाते हैं। सोलह से अधिक मात्राओं के तालों का प्रदर्शन सङ्गीत सभाओं में यदा-कदा मृदङ्गवादकों द्वारा एकल वादन करके किया जाता है। ग्रन्थों में वर्णित तालों की तालिका देखने पर ज्ञात होता है कि इसका मात्र तृतीयांश ही वर्तमान सङ्गीत की आवश्यकता को परिपूर्ण कर देने को पर्याप्त सिद्ध हुआ है।

ऐसी स्थिति में यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि शेष अप्रचलित ताल क्या ग्रन्थ शोभा मात्र हैं? ऐसा नहीं है। इनके विषय में गुरुजनों की उक्ति इस प्रकार है। हमारा सङ्गीत उपासना मूलक है। जिन अप्रचलित तालों को हम प्रयुक्त होते नहीं देखते वे ताल, ताल वादकों द्वारा अपनी व्यक्तिगत साधना हेतु परिकल्पित किए गए थे। ये सामान्य सङ्गीत साधकों के वश के नहीं हैं। इस मत की पुष्टि में यह भी कहा जाता है कि ऐसे तालों का विस्तृत भण्डार पखावज वादकों के पास है और यह स्वीकृत तथ्य है कि मृदङ्ग की ध्वनि और शान्त रस का नित्य सम्बन्ध है। मृदङ्ग के विद्वान् सरस्वती वन्दना, सरस्वती परन तथा शिवपरन आदि अनेक देव-देवियों की स्तुतियाँ प्रचलित अप्रचलित अनेक तालों में प्रस्तुत करते हैं।

सङ्गीत के विद्वान् और अनुभवी कलाकार इस तथ्य से अवगत हैं कि लय विहीन ताल रचना सम्भव नहीं है। लय के क्रमबद्ध विभाजन द्वारा तालों की उपलब्धि होती है। विभाजक गणित है अतः यह अनन्त है। विभाज्यकाल है, जिसके हम अपनी आवश्यकतावश कितने ही कल्पित विभाग क्यों न करें इसकी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सनातन अखण्डता अक्षुण्ण रहती है। काल एवं गणित के समायोग से रचित ताल को ऋषिगण द्वारा अनन्त[१] घोषित किया जाना सर्वथा उचित है।

अंग्रेजी भाषा के शब्द Rhythm रिद्म के शब्दकोश के अनुसार अनेक अर्थ होते हैं। गति, प्रवाह, वज़न, रवानी, छन्द, लय, ताल, तालानुगति, ठेका, अङ्गों की स्पन्दलय, थिरकन, सामञ्जस्य एवं मधुर सम्बन्ध। इस विषय में प्रसिद्ध सङ्गीतशास्त्री श्री वी०के० नारायण मेनन के शब्द हैं, 'रिद्म' के लिए भारत में ताल शब्द का प्रयोग होता है, लेकिन ताल रिद्म नहीं है बल्कि यह समय का एक माप है। एक ही ताल में कई 'रिद्म' हो सकती हैं किन्तु एक रिद्म में कई ताल नहीं हो सकते। 'लय' शब्द में ताल और 'रिद्म' दोनों ही का अर्थ निहित होता है।[२]

रिद्म अथवा वज़न या प्रवाह की प्राप्ति और अभिव्यक्ति हेतु हमें सङ्गीत के 'पढ़न्त' पक्ष की ओर ध्यान देना चाहिए। गायक ''ठुमक चलत रामचन्द्र'' पद को इस भाँति प्रस्तुत करेंगे जैसा सामान्य पाठक से सम्भव नहीं है। पद को सुनते ही श्रीराम के भक्त, बालक राम का ध्यान करके रामरस में निमग्न हो जाते हैं। किन्तु गायक के साथ बैठा ताल वादक गेय साहित्य को मात्र लय, छन्द और मात्रा की दृष्टि से देखता है। उसे उक्त पद के छन्द में तीन-तीन से विभक्त छः मात्राओं का 'दादरा' ताल दिखाई देता है। ताल वादक अत्यन्त सतर्कता से गति के 'वज़न' को परख कर ठेका लगाना प्रारम्भ करता है। सङ्गीत के अनुभवी विद्वान् जानते हैं कि 'वज़न' के प्रभाववश गेय पद को तालबद्ध करने में तालवादक कभी बराबर और कभी दोगुनी मात्राओं का प्रयोग करता है। साहित्य के शब्दों में छन्दप्रभाव से उत्पन्न 'वज़न' समेटने के लिए उसे ऐसा करना आवश्यक होता है। साथ ही गायक के लिए अनिवार्य हो जाता है कि वह 'वज़न' के अनुसार गायन करे। चाहे ऐसा करते हुए उसे व्याकरण, और शब्दों की कितनी ही तोड़-मरोड़ क्यों न करनी पड़े? उसका शब्दों के साथ ऐसा व्यवहार शास्त्र सम्मत है। गायन अथवा वादन को ओजस्वी बनाने के लिए ऐसा करना नितान्त आवश्यक है। 'भारत माता की जय' बोलते समय हम अनजाने ही 'जय' पर एक विशिष्ट 'वज़न' पैदा कर देते हैं।

लय और ताल सम्बन्धी ये कुछ मूलभूत तथ्य हैं। राग प्रस्तुतीकरण में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान होने के कारण संक्षिप्त चर्चा की गई। मृदङ्ग की ध्वनि को शान्त रस से सम्बन्धित कहा जा चुका है। अतः अब हम ताल वाद्यों की चर्चा करेगें।

✤

१. न रागाणाम् न तालानामन्तो कुत्रापि विद्यते।

२. वी० के० नारायण मेनन, *सङ्गीत,* सितम्बर १९८५ ई०, पृ० २६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

८

ताल वाद्य और ध्वनि

सकल कलागुरु भगवान् शङ्कर का डमरु अवनद्ध वाद्यों में प्रथम है। अवनद्ध वाद्यों के इतिहासविद् तालवाद्यों के आविष्कार की तर्क सङ्गत सम्भावना ढूँढने को स्वतन्त्र हैं। किन्तु भारतीय आस्था के अनुसार भगवान् शङ्कर ने गजासुर के वध के उपरान्त उसी के चमड़े द्वारा अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया।

क्रमशः अवनद्ध वाद्यों का परिवार विस्तृत होता गया। अवनद्ध, अर्थात् मढ़ा अथवा ढका हुआ। इन वाद्यों के विभिन्न रूप और नाम देखे-सुने जाते हैं। ग्रन्थों में वर्णित डमरु, ढक्का, पटह, पुष्कर, प्रणव, भेरी, काहल, दुन्दुभी, मर्दल, मुरज एवं मृदङ्ग आदि संस्कृत नामों के साथ ही लोकभाषा के गूझू, उकोली, हुलक, हुड़का, पवन, दरू, डफ, ढोल, नगाड़ा, खँजरी, डफली, ताशा और दमामा आदि नामों से केवल अवनद्ध वाद्यों का बोध होता है।

संस्कृत नाम प्रायः वस्तु की आकृति-प्रकृति के विषय में भी सूचना देते हैं। उदाहरणार्थ, 'मृदङ्ग' अर्थात् जिसका खोल या अङ्ग मिट्टी का बना हो। मुरज नामक अवनद्ध वाद्य अपने नाम में दुहरे अर्थ समेटे हुए है। मुरज अर्थात् लपेट कर (चमड़ा बद्धी आदि) बनाया गया। मुरजफल, कटहल के पेड़ को कहा जाता है। सम्भव है कटहल की लकड़ी से बनाये जाने के कारण इस वाद्य को मुरज कहा गया हो। दोनों ही निरुक्त युक्तियुक्त हैं।

पुष्कर नामक अवनद्ध वाद्य के निर्माण की पुराण कथा इस भाँति है। स्वाति नाम के ऋषि जल लेने सरोवर की ओर गए। इसी समय देवराज इन्द्र की इच्छा से प्रेरित मेघ समूह ने वर्षा की झड़ी लगा दी। सरोवर के कमल पत्रों पर अनवरत गिरती बूँदें चित्ताकर्षक लय की सृष्टि कर रही थीं। ऋषि को ब्रह्माण्ड व्यापिनी 'लय' का प्रथम साक्षात्कार हुआ। रह-रहकर हो रहे मेघ गर्जन ने ऋषि स्वाति की कल्पना को 'सम' का सङ्केत दिया। लय और सम को सङ्गीत प्रयोज्य बनाने के उद्देश्य से स्वाति ऋषि ने विश्वकर्मा की सहायता से पुष्कर नामक वाद्य का निर्माण किया। पुष्कर को चर्ममण्डित करने का सङ्केत देने को कमलपत्र पर्याप्त थे।

उक्त कथानुसार लौकिक दृष्टि से पुष्कर को ढोल, मृदङ्ग आदि से खँजरी पर्यन्त एकमुखी, दोमुखी सभी वाद्यों का पूर्वज कहा जाना चाहिए। किन्तु पुष्कर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के तीन मुखों को देखकर ऐसी प्रतीति होती है कि यह ताल वाद्यों के विकसित दिनों में निर्मित हुआ होगा। कालान्तर में दो मुँहे मृदङ्ग अथवा पखावज ने अपने अनेक साथियों को पीछे छोड़ते हुए सर्वश्रेष्ठ स्थान ग्रहण कर लिया।

इतिहास अन्वेषकों के विचार से वनवासी पूर्वजों ने प्रसन्न होकर पेट पर उँगलियाँ फिराते हुए लय की अनुभूति को अभिव्यक्ति दी। किसी आखेट जीवी कलाकार ने भूमि में गड्ढा खोदकर उसे चर्ममण्डित किया। अवनद्ध वाद्यों के क्रम में यह 'भूमिदुन्दुभि' नाम ही प्रथम है। 'ललितविस्तर' के अनुसार एक मुँह वाले हुडुक को तूण, ढोल को पणव तथा मुकुन्द कहा जाता था। श्लोक संख्या २०४ में वर्णित वाद्यों के विषय में पाद टिप्पणी की क्रम १३ के भोट प्रतिशब्दों में एक है मुकुन्द=दुम् दुम फग्। दुम् दुम फग्[१] तथा मुकुन्द नामों द्वारा ढोल की विशाल आकृति और गम्भीर ध्वनि का भान होता है। ढक्का शब्द डमरु और ढोल दोनों का वाचक है। ढक्का शब्द लोकभाषा में ढाँक नाम से प्रचलित है। महाकाव्य नैषधीय चरित (१५/१७) में कहा गया है—"न ते हुडुक्केन न सोऽपि ढक्कया न मर्दलैः सापि न तेऽपि ढक्कया।" यहाँ मर्दल शब्द ढोल के लिए प्रयुक्त हुआ है। लोकवाद्य ढोल या ढोलक शब्द संस्कृत शब्द कोश (आप्टे) में 'ढौल' नाम से संग्रहीत है। हुडुक्क शब्द आज तक लोकभाषा में हुलक, हुड़क अथवा हुड़का नाम से विज्ञात है। मर्दल नेपाल की तराई की आदिवासी थारू जाति के लोकवाद्यों में मादल, मानर और मनरा नाम से अब तक बजाया जा रहा है। मादल नामक ताल वाद्य बंगाल में प्रचलित है।

भेरि और दुन्दुभि प्रायः नक़्क़ारः के लिए प्रयुक्त होते हैं किन्तु दुन्दुभि का प्रयोग बड़े ढोल के लिए भी हुआ है। ढोल और उक्त वाद्यों में स्पष्ट अन्तर है ढोल का दोमुँहा होना। वनों से ग्राम और नगर संस्कृति तक की यात्रा में ढोलक की थाप युद्ध क्षेत्र से प्रसूतिगृह के द्वार तक सदैव हमारे साथ रहती आ रही है। इसके मुख्य कारण हैं, ढोलक की छोटी-बड़ी और मझोली आकृति एवं संवहन सुविधा। वीर रस प्रधान आल्हा, शृङ्गार रससिक्त होली और कजरी, कथा-कीर्तन के आयोजन एवं विवाह आदि अनेक माङ्गलिक कार्यों का आरम्भ और समापन ढोलक की मधुर ध्वनि द्वारा करने की परम्परा है।

युद्ध में उत्साह बढ़ाने के लिए अवनद्ध वाद्यों के विविध प्रकार प्रयोग में लाए जाते थे। इनमें पटह नामक बड़ा ढोल कपड़े के चाबुक सरीखे उपकरण से पीटकर बजाया जाता था। मृदङ्ग सामान्यतया मात्र माङ्गलिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों तक प्रयोग में आने वाला वाद्य समझा जाता है किन्तु युद्ध के अवसरों

---

१. शान्ति भिक्षुशास्त्री, *ललित विस्तर*, पृ० १७६, उ०प्र०हि० संस्थान

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर भी मृदङ्गप्रयोग का वर्णन किया गया है।[१] भले ही मृदङ्ग कभी युद्धस्थल में बजा हो किन्तु परवर्ती दिनों में अपनी विशेष ध्वनि के नाते यह मन्दिरों और राजसभा के सङ्गीत कार्यक्रमों का पूरक बन गया।

भारतीय आध्यात्मिक वृत्ति ने मृदङ्ग की जो व्याख्या की है उसके अनुसार "मृदङ्ग की दायीं ओर रुद्र और बायीं ओर उमा प्रतिष्ठित हैं। अतः मृदङ्ग का नाद शिवशक्तिमय है। मात्र शिवनाद से व्याधि, शक्तिनाद से दारिद्र्य, श्रुतियुक्त दो नादों (शिवशक्ति) से युक्त मृदङ्ग वादन श्रेष्ठ होता है। बड़े मुख से स्त्री (छोटी) ध्वनि तथा छोटे मुख से पुरुष (बड़ी) ध्वनि ये दोनों आयु और लक्ष्मी का हरण करते हैं अतः अश्राव्य हैं। श्रुतिसंयुक्त, व्यक्त और मधुर नाद, श्रेष्ठ आयु और लक्ष्मीकारक होता है। मृदङ्ग के ये लक्षण नारद द्वारा कहे गए हैं।[२]

उल्लिखित मृदङ्ग महिमा द्वारा हमें इसके अध्यात्म-गौरव का स्पष्ट बोध होता है। परिवर्तनशील सङ्गीत में ख़याल गायन की लोकप्रियता बढ़ी। इस शैली में गमकों का प्रयोग अत्यल्प होने के कारण मृदङ्ग की गम्भीर ध्वनि इसे रास नहीं आई। ख़याल गायन के उपयुक्त ध्वनिवाले वाद्य की तलाश में तबले का विकास हुआ। इस विषय में डा० योगमाया शुक्ल के शब्द हैं—"त्रिपुष्कर वाद्य के सन्दर्भ में विस्तृत रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि कालान्तर में भरतकालीन त्रिपुष्कर वाद्य के विघटन से मुख्यतः दो प्रकार के स्वतन्त्र अवनद्ध वाद्यों का विकास हुआ। जिनमें एक प्रकार के वह अवनद्ध वाद्य जो कि लिटाकर बजाए जाने वाले द्विपार्श्वमुखी आङ्किक से विकसित हुए और दूसरे वे अवनद्ध वाद्य, जिनका विकास दो हिस्सों में ऊर्ध्व व आलिंग्यक से हुआ। पहले प्रकार के वाद्यों में पटह, पखावज, ढोलक, दक्षिण भारतीय मृदङ्गम्, महाराष्ट्र की नाल, बङ्गाल व मणिपुर में प्रचलित खोल व पुङ्ग आदि हैं। दूसरे प्रकार अर्थात् जोड़ी

---

१. अवादयन्त पटहान्गणाः शङ्खांस्तथापरे ।
मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ॥ *दुर्गा सप्तशती* २/५४/५५

२. दक्षिणाङ्गे स्थितो रुद्रः उमा वामे प्रतिष्ठिता ।
शिवशक्तिमयो नादो मर्दले परिकीर्तितः ॥ १ ॥
शिवनादे भवेद् व्याधिः शक्त्या दारिद्र्यमाप्नुयात् ।
द्विर्नादयुक्तः श्रेष्ठश्च श्रुतियुक्तश्च मर्दले ॥ २ ॥
स्त्रीध्वनिः पुरुषाकारः स्त्र्याकारश्चैव पुंस्वरः ।
आयुर्लक्ष्मी हरौ नित्यमश्राव्यौ तावुभौ ध्वनी ॥ ३ ॥
सर्वेषां श्रुतिसंयुक्तमव्यक्तमधुरान्वितम् ।
नादमीदृग्विधं श्रेष्ठमायुर्लक्ष्मीकरं जगुः ॥ ४ ॥
लक्षणं तु मृदङ्गस्य कथ्यते नारदेन च ।
सङ्गीतमकरन्द, *सङ्गीत,* जनवरी-फरवरी, १९६५ ई०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के रूप में बजाए जाने वाले ऊर्ध्वमुखी वाद्यों में दुक्कड़, पंजाब की जोड़ी तथा तबला इत्यादि हैं।[१]"

परिवर्तनशील सङ्गीत में क्रमशः ठुमरी एवं टप्पा शैलियों का आगमन हुआ। तबला वादकों ने तबले में लग्गी, लड़ी आदि ढोलक के गुणों का आंशिक समावेश करके इसे उक्त गान के उपयुक्त बनाया। तब से आज तक ध्रुवपद शैली के साथ मृदङ्ग, ख़याल और ठुमरी-टप्पा के साथ तबले का प्रयोग होता आ रहा है। ढोलक लोकगीत एवं कीर्तन-भजन में बजाया जाता है। इन तीनों ताल वाद्यों ने अपनी गम्भीर-सात्त्विक, मधुर और राजस् तथा ह्रस्व और तामस गुणयुक्त ध्वनि के नाते सङ्गीत जगत् में अपना स्थान निश्चित किया है।

---

१. डॉ० योगमाया शुक्ल, *तबला: उद्गम, विकास और शैलियाँ*, पृ १०९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

९

घराना

राग-परिष्कार में घरानों का विशिष्ट योगदान है। सङ्गीत संसार में यह स्वीकृत परम्परा है। कभी कोई विशिष्ट प्रतिभा का धनी व्यक्ति गायन, वादन अथवा नृत्य में कुछ विशिष्ट प्रयोग करके एक शैली को जन्म देता है और उसे सज्जन, रसिकश्रोता तथा गायक, वादकों द्वारा समाज-स्वीकृत करवाता है। तदनन्तर इस शैली के प्रवर्त्तक पुरुष के वंशज अथवा शिष्यगण इस शैली को आगे बढ़ाते हैं। तीसरी पीढ़ी में पहुँचने के साथ शैली को 'घराना' की मान्यता प्राप्त हो जाती है। घराने को जहाँ विशिष्ट शैली के जन्मदाता होने और उसे आगे बढ़ाने की प्रतिष्ठा प्राप्त है, वहीं उसे इसके लिए विडंबित भी होना पड़ता है, कि गायक-वादकों की निजी कल्पनाशीलता को 'घराना' शैली सीमित कर देती है। घरानों के गुण-दोष का विवेचन सर्वथा विषयान्तर होगा अत: हम केवल घरानों के प्रासंगिक पक्षों की चर्चा करेंगे।

प्रस्तुत प्रसंग में आगरा घराने के प्रतिनिधि डॉ० सुशील कुमार चौबे के शब्द हैं—"तो प्रश्न उठता है, कि घराना क्या है? सामान्य रूप से शायद इस शब्द की परिभाषा आसानी से की जा सकती है। परन्तु इसको हम एक स्वगुणनिर्देशक पद मान कर केवल इसकी स्वगुणार्थक परिभाषा से सन्तुष्ट नहीं हो सकते। हम यह जानना भी आवश्यक समझते हैं कि आधुनिक हिन्दुस्तानी सङ्गीत के सन्दर्भ में हम 'घराना' किसे कहते हैं? इस के पहले कि हम इस विषय में कुछ खुलासा बातचीत करें, हमें इस बात को याद रखना चाहिए कि, संसार के और किसी सङ्गीत में घराने नहीं होते। यह विशेषता हिन्दुस्तानी सङ्गीत ही में पायी जाती है और एक तरह से हम इसे इस सङ्गीत का एक लाक्षणिक गुण ही मानेंगे। गुरुओं का विशिष्ट 'सम्प्रदाय' और उनकी शिष्य-परम्परा तो कर्नाटक सङ्गीत में भी पायी जाती है, किन्तु इसमें भी सङ्गीतज्ञों के विशेष घराने नहीं होते। यह कहना ग़लत न होगा कि 'घराना' हिन्दुस्तानी सङ्गीत ही की देन है। यहाँ हम व्यावहारिक सङ्गीत ही की बात कर रहे हैं जिसका पोषण कम से कम पिछली तीन शताब्दियों में गायकों और वादकों ने किया था। अकबर के युग (१५५६-१६०५ ई०) से लेकर अब तक के सङ्गीत को हम आमतौर से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आधुनिक सङ्गीत ही मानेंगे। यह सङ्गीत तानसेन की ध्रुवपद परम्परा और सदारङ्ग-अदारङ्ग की ख़याल परम्परा से विशेष रूप से सम्बन्धित रहा है।

हम इसे 'शास्त्रीय-सङ्गीत' के नाम से भी पुकारते हैं। क्योंकि यह शास्त्रों में लिखे गये सङ्गीत के आधार पर है और उनके ही मूल सिद्धान्तों का पालन करता है। एक तरह से यह व्यावहारिक सङ्गीत माने हुए सङ्गीतशास्त्रों के सङ्गीत का अनुवाद है। प्रतिष्ठित गायकों और वादकों ने इस सङ्गीत का अनुवाद अपने गायन और वादन से किया और उसे हर तरह से प्रामाणिक बनाया। उच्च कोटि का घरानेदार सङ्गीत शास्त्रीय सङ्गीत का सुन्दर अनुवाद माना गया है, और इस पर दो राय नहीं हो सकती। इस सङ्गीत की प्रस्तुति तरह-तरह से की जाती है और इसकी विविधता में विलक्षणता का गुण होता है। परन्तु यह परम्परागत हिन्दुस्तानी सङ्गीत अथवा शास्त्रीय सङ्गीत ही होता है और इसकी आत्मा एक-सी रहती है।

घरानों की चर्चा करते हुए हमें इस ओर भी ध्यान देना उपादेय होगा। पाश्चात्त्य सभ्यता का गहरा प्रभाव हमारी सभ्यता पर पड़ा है। रही वहाँ के सङ्गीत की बात, इस बात को हम जानते हैं कि उच्च कोटि के पाश्चात्त्य सङ्गीत से हमारा बहुत थोड़ा सम्पर्क रहा है। आधुनिक काल में हमारी फिल्म कम्पनियों ने केवल वहाँ की तीसरी अथवा चौथी श्रेणी के लोकप्रिय सङ्गीत को अपना कर एक तरह के भावुक और बाज़ारू सङ्गीत का ही निर्माण किया है जिसकी बाज़ार में बहुत माँग है। पश्चिम के उच्च कोटि के सङ्गीत में कला और शैली की विलक्षण विविधता होती है, और सङ्गीत के विद्वान् ही इस सङ्गीत की महानता को जानते हैं। पाश्चात्त्य सङ्गीत हमारे सङ्गीत से बिल्कुल अलग है और सैद्धान्तिक रूप से दोनों में कोई साम्य नहीं है। पाश्चात्त्य साहित्य और कला में भी केवल अलग-अलग मत और वाद ही होते हैं। इन्हें 'स्कूल' के नाम से पुकारते हैं किन्तु यह एक विशेष वाद अथवा मत से ही सम्बन्धित होता है। वह किसी घराने से सम्बन्धित नहीं होता।

हिन्दुस्तानी सङ्गीत के किसी घराने के एक-दो गायक या वादक ही उसके सङ्गीत और उसकी शैली का निर्माण करते हैं। प्रत्येक घराने का आवाज़ लगाने का ढँग, उसका उतार-चढ़ाव और कला चातुर्य अपने ही ढँग का होता है। यही विशिष्ट ढँग 'शैली' कहा जाता है। गायन में हम इसी को 'गायकी' और वादन में 'बाज' कहते हैं। घरानों के पारस्परिक सम्पर्क और संघर्ष में जिस प्रतिद्वन्दिता का जन्म हुआ वह व्यावहारिक सङ्गीत के हित में थी।[१] इससे जहाँ गायन तथा

---

१. डॉ० सुशीलकुमार चौबे, *सङ्गीत के घरानों की चर्चा*, पृ० १६-२०, २१ आदि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वादन कला की विविध शैलियों का निर्माण हुआ वहीं घराने की श्रेष्ठता स्थापित करने हेतु नवीन रागों का सृजन भी किया गया।

कुछ विशिष्ट घराने—घरानों का ह्रास-विकास काल प्रभाववश होता रहा है। अत्यन्त समादृत, स्वीकृत कुछ गायन के घरानों के नाम इस प्रकार हैं।

१. तानसेन का घराना (ध्रुवपद परम्परा)
२. क़व्वाल बच्चों का घराना और ग्वालियर घराना (ग़ुलाम रसूल, लखनऊ)
३. सदारङ्ग देहली के प्रसिद्ध संगीतज्ञ और तानरस ख़ाँ का घराना (दिल्ली)
४. ध्रुवपद गायक बहराम ख़ाँ का घराना (सहारनपुर)
५. आगरा घराना (ध्रुवपद तथा ख़याल)
६. जयपुर घराना (,, ,,)
७. खुर्जा घराना (ख़याल)
८. रामपुर-सहसवान घराना (ख़याल)
९. अतरौली घराना (ख़याल)
१०. मथुरा घराना (स्वामी हरिदास की ध्रुवपद परम्परा)
११. फतहपुर सीकरी घराना (ध्रुवपद)
१२. सिकन्दराबाद का रँगीला घराना (ख़याल)

उक्त घरानों के अतिरिक्त पटियाला, मेवाती तथा इन्दौर घराने की गायकी ने सङ्गीत क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना रखा है। इनमें इन्दौर घराना सर्वाधिक नवीन है। इसके साथ ही अपनी विलक्षण गायकी के कारण कुमार गन्धर्व को देवास घराने का प्रवर्तक मानने की बहस जब-तब होती रहती है।

गायन के साथ ही पिछले तीन सौ वर्षों में वादन और नृत्य के घरानों का भी विकास हुआ है। अकबरी दरबार में ध्रुवपद गायन की सङ्गत वीणा वादक करते थे। वीणा वादन की स्वतन्त्र शैली सर्वथा ध्रुवपद आश्रित विकसित हुई। ध्रुवपद, ख़याल, ठुमरी आदि के विकास के साथ तन्तु वाद्य के वादकों ने प्रत्येक विधा को अपनाया। 'वीणा' शब्द तन्तु वाद्य मात्र का बोधक है। इस दृष्टि से वीणा, तानपूरा, सितार, सरोद, सारङ्गी, सन्तूर, इसराज, वायलिन और गिटार आदि देशी-विदेशी अनेक वाद्यों सहित उत्तर भारतीय सङ्गीत के प्रचार में वीणा का अप्रतिम योगदान है।

वाद्य सङ्गीत के घरानों के विकास में डॉ० सुशील कुमार चौबे की पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं—दिल्ली दरबार के पतन के बाद सभी गायक और वादक अन्य राजदरबारों का आश्रय ढूँढने लगे। इस समय सेनिया घराने के सङ्गीतज्ञों ने, जो दूसरे दरबारों का सहारा ढूँढ रहे थे, वाद्य सङ्गीत की ओर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अधिक ध्यान दिया और उसमें बहुत कुशलता प्राप्त की। ये सङ्गीतज्ञ ध्रुवपद-परम्परा ही के अनुयायी थे अतः उन्होंने अत्यन्त परिश्रम से वाद्य सङ्गीत को ध्रुवपद शैली का प्रतिनिधि बनाया।

अन्य राजदरबारों में पहुँचे कलाकारों के विभिन्न घरानों द्वारा वाद्य शैली के प्रवर्तन के विषय में श्री चौबे के शब्द हैं—तो इस तरह विलास खाँ और नियामत खाँ के वंशज विशेष रूप से बनारस में जाकर बस गये। वे लखनऊ और आस-पास के दरबारों में भी नियुक्त हो गये। ये पूर्विए कलाकार कहलाये। दूसरे वर्ग के सङ्गीतज्ञ जो सुरतसेन के घराने के थे जयपुर जाकर बस गये। इनको पछाहीं (पश्चिमी) कलाकार के नाम से पुकारा गया। जिस तरह सेनिया घ़राने के पूर्वी सङ्गीतज्ञ वीणा और रबाब बजाने के अलावा ध्रुवपद गायन भी करते थे उसी तरह सेनिया घराने के पश्चिमी सङ्गीतज्ञ सितारवादन और वीणावादन के अलावा ध्रुवपदगायन भी करते थे। सुरतसेन के सम्बन्ध में श्री चौबे लिखते हैं—दूसरा घराना तानसेन के एक अन्य पुत्र सुरतसेन के नाम से बना जो डागरबानी का सर्वश्रेष्ठ गायक माना जाता था। उसके वंशज जयपुर जाकर बस गये। जहाँ से उनकी शिष्य-परम्परा फलती-फूलती रही।[१]

वादकों के विभिन्न घराने श्री चौबे के अनुसार इस प्रकार हैं—

उत्तर प्रदेश के लखनऊ, बनारस और रामपुर सङ्गीत के केन्द्र माने गए हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त और भी बहुत से छोटे-छोटे नगर और क़स्बे काफ़ी मशहूर हुए हैं। बहुत से सङ्गीत के श्रोता कदाचित् यह नहीं जानते कि इटावा में सितारवादकों का एक मशहूर घराना था जिसमें इमदाद ख़ाँ और इनायत ख़ाँ ऐसे सितारिये हुए हैं। शाहजहाँपुर के सरोदिये और अलग़ोजा बजाने वाले भी बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। लखनऊ के प्रसिद्ध सरोद वादक सख़ावत हुसेन ख़ाँ शाहजहाँपुर घराने के थे। स्वर्गीय नवाब छम्मन साहब के सुरसिंगार वादन ने भी बिलसी ऐसी जगह को मशहूर कर दिया था। सहसवान के इनायत हुसैन ख़ाँ, इमदाद ख़ाँ और मुश्ताक़ हुसैन के अतिरिक्त सहसवान और बदायूँ के फ़िदा हुसैन ख़ाँ और निसार हुसैन ख़ाँ भी अच्छे ख़्याल गायक माने गए हैं। कालपी, खजूरगाँव और बाँदा के सङ्गीतज्ञों के अलावा मेरठ और मुरादाबाद के तबलावादक और गायक भी मशहूर हुए हैं। खुर्जा के गायकों का घराना भी अपने ढँग से प्रसिद्ध माना गया है।

हम (श्री सुशीलकुमार चौबे) इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में यह देखते चले आये हैं कि कभी-कभी कुछ मामूली गायक-वादक भी प्रसिद्ध घरानों

१. डॉ० सुशीलकुमार चौबे, *सङ्गीत के घरानों की चर्चा*, पृ० ४८-५०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के आरम्भकर्ता बन जाते हैं और उन्हें अपने जीवनकाल में इस बात का सङ्केत भी नहीं मिलता। उदाहरणार्थ हम अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तानी सङ्गीत के रत्न' में बता चुके हैं कि लखनऊ के प्रसिद्ध सितारवादक यूसुफ़ अली ख़ाँ को खजूरगाँव के उस्ताद अब्दुलग़नी ख़ाँ से सितारवादन की शिक्षा मिली थी। परन्तु स्वयं अब्दुलग़नी ख़ाँ को अपने जीवनकाल में कोई विशेष ख्याति नहीं मिली थी। अपनी शैली के विशेषज्ञ होते हुए भी सङ्गीतसंसार इनसे भली-भाँति परिचित नहीं था। यह सच है, कि कभी-कभी कुछ अज्ञात गायक-वादक भी अपने घरानों को विलक्षण प्रेरणा देते हैं और उनके प्रथम पुरुष बन जाते हैं।[१]

उस्ताद अब्दुलग़नी ख़ाँ खजूरगाँव के निवासी थे। सितारवादन में ये जयपुर की सेनिया परम्परा के प्रतिनिधि कालपी घराने के शिष्यों में हैं। इनके छोटे भाई के विषय में डा० शत्रुघ्न शुक्ल के शब्द हैं—"कालपी घराने के प्रसिद्ध सितारिये अब्दुलग़नी ख़ाँ के छोटे भाई मुरव्वत ख़ाँ बहुत अच्छे हारमोनियम व सितारवादक थे। उन्होंने 'मुरव्वत पिया' उपनाम से अनेकों ख़्याल, सादरे व ठुमरियों की उत्तम रचनाएँ कीं जिनमें बोल-बाँट और बोल-बनाव दोनों प्रकार की ठुमरियाँ हैं। ये उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले में स्थित चन्दापुर रियासत में थे और वहीं सन १९४५ ई० के लगभग इनकी मृत्यु हुई।[२]

यह विदित तथ्य है, कि खजूरगांव के गायक-वादक मूलतः कालपी से सम्बद्ध हैं। इसी भाँति कालपी घराना जयपुर के सुरतसेन से प्रारम्भ हुए सेनिया घराने से जुड़ा है। उक्त सेनिया परम्परा के रत्न उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ के शिष्य, प्रसिद्ध सङ्गीत निर्देशक नौशाद अली का कथन है—"व्यक्तिगत रूप से मुझे जिन कलाकारों के विषय में जानकारी हुई वह अपने गुरु यूसुफ़ अली ख़ाँ के माध्यम से हुई जो सितारवादन में विश्वविख्यात थे।[३]" लखनऊ निवासी प्रो० तजम्मुल हुसैन ख़ाँ अपने विस्तृत शोधपूर्ण लेख में लिखते हैं—"उस्ताद अब्दुलग़नी ख़ाँ और यूसुफ़ अली ख़ाँ से लखनऊ घराने की एक पृथक् परम्परा बनी।[४]"

लेखक को ख़ुशक़िस्मती से उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ से आठ बरस तक सितार सीखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस बीच उस्ताद द्वारा बतायी बातें इस प्रकार हैं। लखनऊ के नज़ीराबाद मुहल्ले में सन १८७७ ई० में सैयद बहादुर अली ख़ाँ के घर बालक यूसुफ़ अली का जन्म हुआ था। आय का स्रोत सितार

१. डॉ० सुशीलकुमार चौबे, *सङ्गीत के घरानों की चर्चा*, पृ० १७९-८०
२. डॉ० शत्रुघ्न शुक्ल, *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ*, पृ० १६०
३. नौशाद अली, लखनऊ की गायकी और कथक, *नया दौर*, अवध अंक, पृ० ५८
४. तजम्मुल हुसैन ख़ाँ, लखनऊ के घराने, *नया दौर*, अवध अंक, पृ० १९४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बनाने की दूकान थी। इस प्रकार प्रारम्भ से ही आप को स्वरमय वातावरण मिला। नियमित शिक्षा के विषय में उस्ताद बताते थे—"भैया, हमने जिन्दगी दो ही कामों में गुज़ारी है। रात को सितार के दाँव-पेंच और दिन में अखाड़े के। मेरे दोनों उस्ताद (अब्दुलग़नी ख़ाँ-मुरव्वत ख़ाँ) बारी-बारी से रोज़ शाम से २-३ बजे रात तक मुझसे रियाज़ करवाते थे। सेनिया शैली की शिक्षा और खजूरगाँव में बीते तेरह बरसों की कठोर" साधना ने युवक यूसुफ़ अली को उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ बना दिया। कुश्ती के शौक ने उस्ताद को गठा हुआ शरीर और रोबदार व्यक्तित्व दिया। लम्बी देह, गूँजती आवाज़ के सम्पुट में कलाकार का कोमल मन छिपा था।

सन १९११ ई० में उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ सम्राट् जार्ज पञ्चम के राज्याभिषेक के अवसर पर आमन्त्रित किए गए। ग्यारह महीनों के लन्दन प्रवास में उन्होंने तूँबे के स्थान पर शुतुरमुर्ग़ के अण्डे का प्रयोग करके सितार बनाकर दिखाया। बारहवें महीने में उस्ताद लौटकर भारत, लखनऊ आये।

श्री भातखण्डे द्वारा आयोजित सन १९२४, २५ और ३६ ई० में लखनऊ के अखिल भारतीय सङ्गीत सम्मेलनों द्वारा इन्हें पर्याप्त ख्याति मिली। आकाशवाणी केन्द्र लखनऊ के प्रारम्भ से ही आप प्रथम श्रेणी के कलाकार थे। आकाशवाणी के राष्ट्रीय कार्यक्रम में आप के सितारवादन के कई प्रसारण हुए थे। उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ पटना आदि विश्वविद्यालयों के सङ्गीत परीक्षक होने के साथ ही लखनऊ के भातखण्डे सङ्गीत महाविद्यालय में सितार शिक्षक नियुक्त हुए थे। संस्था के अतिरिक्त आप घर पर आये किसी भी विद्यार्थी को निःशुल्क शिक्षा देते थे।

चलचित्रों के प्रसिद्ध सङ्गीत निर्देशक नौशाद के अलावा उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ के वरिष्ठ शिष्यों में मुहम्मद इलियास ख़ाँ ने सितारवादन में नाम कमाया। उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ के बड़े बेटे मुहम्मद इस्माइल सितारवादक, आक़ाशवाणी के लखनऊ केन्द्र पर नियुक्त थे। लेखक ने दि० २ मार्च सन १९५२ को लखनऊ में ख़ाँ साहब को देखा। सन १९५२ में ६ दिसम्बर को उस्ताद अधिराज्य नेपाल में लेखक के घर बनगाई गाँव पर पहुँचे। दूसरे दिन से सितार शिक्षण प्रारम्भ हुआ। सन १९५३ ई० के नवम्बर माह में उस्ताद दुबारा बनगाई आये। लेखक के पितामह द्वारा बनवाये शिवालय की दालान में भगवान् शंकर को सिर झुकाकर बैठे और लगभग आधे घण्टे तक सितार सुनाया। दिनाङ्क २६ नवम्बर सन १९५३ ई० को उस्ताद ने गण्डाबन्धन करके मेरे शिष्यत्व की औपचारिकता पूरी की।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सन १९५८ ई० में उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ राष्ट्रपति पुरस्कार द्वारा सम्मानित किए गए। उस्ताद ने लेखक को बताया है—उस्ताद अब्दुलग़नी ख़ाँ साहब मेरे ख़ास उस्ताद थे फिर भी मुझे उस वक्त के कई गुनी बुज़ुर्गों से बहुत सी बातें और बन्दिशें मिली हैं। इसी सिलसिले में बस्ती (मिश्रौलिया) के मिसिर जी (कविवर, पं० बलराम प्रसाद मिश्र 'द्विजेश') से भी मुझे सितार की गतें मिली हैं। इस तरह मिसिर जी मेरे गुरुओं में हैं। सन १९५९ ई० के लगभग मिश्रजी स्वर्गीय हुए। उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ मिश्रौलिया आये। स्व० मिश्रजी के घर की ड्योढ़ी को आसुओं से सींचा। सितार वादन द्वारा श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। दूसरे दिन ड्योढ़ी चूमकर लखनऊ वापस गये।

सितार की सेनिया परम्परा की लखनऊ शाखा के प्रवर्तक उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ यावज्जीवन सितार समर्पित रहे। भातखण्डे महाविद्यालय के अतिरिक्त दिन भर किसी न किसी विद्यार्थी का प्रशिक्षण चलता रहता था। लेखक के समकालीन एक भट्टाचार्य एक शशधर दत्त दो विद्यार्थी कलकत्ते से लखनऊ आये थे।

दिनाङ्क १५ अक्टूबर सन १९६२ ई० के आकाशवाणी के कार्यक्रमों में उस्ताद का सितार वादन प्रकाशित था। दिनाङ्क १४ अक्टूबर को आकाशवाणी केन्द्र लखनऊ द्वारा प्रादेशिक समाचार में प्रसारित किया गया—विख्यात सितारवादक उ० यूसुफ़ अली ख़ाँ नहीं रहे। सूचना मिली है पचासी बरस के उस्ताद ने शाम साढ़े छ: बजे आख़िरी साँस ली।

✤

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१०

स्वर, रस एवं राग

नई रागरचना की इच्छापूर्ति कल्पनाशीलता द्वारा होती है। इच्छा होने से पहले रसानुभूति और भाव का स्फुरण इसके आवश्यक अङ्ग हैं। रस और भाव के मनीषियों ने रसों की संख्या ९ और सञ्चारी भावों की संख्या ३३ निश्चित की है। राग द्वारा इनमें से किसी एक रस और उससे सम्बद्ध भावों की अभिव्यक्ति होती है। स्वर राग के घटक हैं अतः ग्रन्थों में स्वर और रस के सम्बन्ध की चर्चा की गई है। सङ्गीतदर्पण के अनुसार षड्ज और ऋषभ वीर, रौद्र तथा अद्भुत, धैवत, बीभत्स और भयानक, गान्धार और निषाद, करुण तथा मध्यम और पञ्चम स्वरों से हास्य एवं शृङ्गार रस की निष्पत्ति होती है।[१] सङ्गीत पारिजात में वर्णित स्वर और रसों का सम्बन्ध इस प्रकार है—षड्ज हास्य रस में, मध्यम शृङ्गार में, धैवत, बीभत्स, निषाद, करुण, पञ्चम, भयानक, ऋषभ, शृङ्गार और गान्धार हास्य रस में प्रयुक्त होता है। तीव्र स्वर, वीर रस में, तीव्रतर स्वर, अद्भुत, हास्य और रौद्र रसों में, तथा तीव्रतर मध्यम शृङ्गार रस में प्रयुक्त होता है। तीव्रतम स्वर शृङ्गार और कोमल मध्यम, हास्य रस में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार सात स्वरों द्वारा नवरसों की प्राप्ति बतायी गयी है।[२]

सङ्गीत दर्पण तथा पारिजात दोनों के स्वरों के रस निरूपण में मतभेद है। रस संख्या की दृष्टि से एक का दूसरे से साम्य नहीं है। जिज्ञासु को ये ग्रन्थ, स्वर और रसों के सम्बन्ध की व्याख्या द्वारा विचारमूढता की स्थिति में पहुँचा देते हैं। पारिजात के अनुसार षड्ज और गान्धार दोनों केवल हास्य रस के आलम्बन हैं। दर्पणकर्ता का मत है हास्य का आधार मध्यम स्वर है। पारिजात, मध्यम स्वर को शृङ्गार रस का पोषक बताता है। दर्पण, शृङ्गार की स्थिति पञ्चम स्वर में स्वीकार करता है। पारिजात के अनुसार पञ्चम भयानक रस का पोषक है।

केवल धैवत के बीभत्स रस का आधार होने में दोनों ग्रन्थ एकमत हैं। तथापि दर्पणकर्ता धैवत में भयानक रस को भी समाविष्ट करते हैं। सात स्वरों में नौ रसों की स्थिति की कल्पना करते समय ऐसा करना अनिवार्य है। एक स्वर में

---

१. *सङ्गीतदर्पण*, श्लोक ३१, पृ० ३२

२. *सङ्गीत पारिजात*, श्लोक ९४, ९५, ९६, पृ० २६-२७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सन १९५८ ई० में उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ राष्ट्रपति पुरस्कार द्वारा सम्मानित किए गए। उस्ताद ने लेखक को बताया है—उस्ताद अब्दुलग़नी ख़ाँ साहब मेरे ख़ास उस्ताद थे फिर भी मुझे उस वक्त के कई गुनी बुजुर्गों से बहुत सी बातें और बन्दिशें मिली हैं। इसी सिलसिले में बस्ती (मिश्रौलिया) के मिसिर जी (कविवर, पं० बलराम प्रसाद मिश्र 'द्विजेश') से भी मुझे सितार की गतें मिली हैं। इस तरह मिसिर जी मेरे गुरुओं में हैं। सन १९५९ ई० के लगभग मिश्रजी स्वर्गीय हुए। उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ मिश्रौलिया आये। स्व० मिश्रजी के घर की ड्योढ़ी को आसुओं से सींचा। सितार वादन द्वारा श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। दूसरे दिन ड्योढ़ी चूमकर लखनऊ वापस गये।

सितार की सेनिया परम्परा की लखनऊ शाखा के प्रवर्तक उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ यावज्जीवन सितार समर्पित रहे। भातखण्डे महाविद्यालय के अतिरिक्त दिन भर किसी न किसी विद्यार्थी का प्रशिक्षण चलता रहता था। लेखक के समकालीन एक भट्टाचार्य एक शशधर दत्त दो विद्यार्थी कलकत्ते से लखनऊ आये थे।

दिनाङ्क १५ अक्टूबर सन १९६२ ई० के आकाशवाणी के कार्यक्रमों में उस्ताद का सितार वादन प्रकाशित था। दिनाङ्क १४ अक्टूबर को आकाशवाणी केन्द्र लखनऊ द्वारा प्रादेशिक समाचार में प्रसारित किया गया—विख्यात सितारवादक उ० यूसुफ़ अली ख़ाँ नहीं रहे। सूचना मिली है पचासी बरस के उस्ताद ने शाम साढ़े छः बजे आख़िरी साँस ली।

✤

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१०

स्वर, रस एवं राग

नई रागरचना की इच्छापूर्ति कल्पनाशीलता द्वारा होती है। इच्छा होने से पहले रसानुभूति और भाव का स्फुरण इसके आवश्यक अङ्ग हैं। रस और भाव के मनीषियों ने रसों की संख्या ९ और सञ्चारी भावों की संख्या ३३ निश्चित की है। राग द्वारा इनमें से किसी एक रस और उससे सम्बद्ध भावों की अभिव्यक्ति होती है। स्वर राग के घटक हैं अतः ग्रन्थों में स्वर और रस के सम्बन्ध की चर्चा की गई है। सङ्गीतदर्पण के अनुसार षड्ज और ऋषभ वीर, रौद्र तथा अद्भुत, धैवत, बीभत्स और भयानक, गान्धार और निषाद, करुण तथा मध्यम और पञ्चम स्वरों से हास्य एवं शृङ्गार रस की निष्पत्ति होती है।[1] सङ्गीत पारिजात में वर्णित स्वर और रसों का सम्बन्ध इस प्रकार है—षड्ज हास्य रस में, मध्यम शृङ्गार में, धैवत, बीभत्स, निषाद, करुण, पञ्चम, भयानक, ऋषभ, शृङ्गार और गान्धार हास्य रस में प्रयुक्त होता है। तीव्र स्वर, वीर रस में, तीव्रतर स्वर, अद्भुत, हास्य और रौद्र रसों में, तथा तीव्रतर मध्यम शृङ्गार रस में प्रयुक्त होता है। तीव्रतम स्वर शृङ्गार और कोमल मध्यम, हास्य रस में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार सात स्वरों द्वारा नवरसों की प्राप्ति बतायी गयी है।[2]

सङ्गीत दर्पण तथा पारिजात दोनों के स्वरों के रस निरूपण में मतभेद है। रस संख्या की दृष्टि से एक का दूसरे से साम्य नहीं है। जिज्ञासु को ये ग्रन्थ, स्वर और रसों के सम्बन्ध की व्याख्या द्वारा विचारमूढता की स्थिति में पहुँचा देते हैं। पारिजात के अनुसार षड्ज और गान्धार दोनों केवल हास्य रस के आलम्बन हैं। दर्पणकर्ता का मत है हास्य का आधार मध्यम स्वर है। पारिजात, मध्यम स्वर को शृङ्गार रस का पोषक बताता है। दर्पण, शृङ्गार की स्थिति पञ्चम स्वर में स्वीकार करता है। पारिजात के अनुसार पञ्चम भयानक रस का पोषक है।

केवल धैवत के बीभत्स रस का आधार होने में दोनों ग्रन्थ एकमत हैं। तथापि दर्पणकर्ता धैवत में भयानक रस को भी समाविष्ट करते हैं। सात स्वरों में नौ रसों की स्थिति की कल्पना करते समय ऐसा करना अनिवार्य है। एक स्वर में

१. *सङ्गीतदर्पण,* श्लोक ३१, पृ० ३२

२. *सङ्गीत पारिजात,* श्लोक ९४, ९५, ९६, पृ० २६-२७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो रसों के विपरीत पारिजातकर्ता दो स्वरों ऋषभ और मध्यम में केवल शृङ्गार रस की स्थिति घोषित करते हैं। पारिजात का षड्ज स्वर को हास्य रस का स्रोत बताना कहा जा चुका है। दर्पण के मत से षड्ज के श्रवण से श्रोता को वीर और रौद्र दो रसों की अनुभूति होती है। पारिजात का शृङ्गार रस पोषक ऋषभ दर्पणकर्ता को अद्भुत रस का जनक प्रतीत हो रहा है। पारिजातकर्ता का मत निषाद को करुण रस का पोषक सिद्ध करता है। दर्पण के मत से निषाद और गान्धार दोनों से करुण रस की अनुभूति होती है।

उल्लिखित विसङ्गतियों के अतिरिक्त पारिजात में सात स्वरों द्वारा हास्य, शृङ्गार, बीभत्स, करुण, एवं भयानक सहित केवल ५ रसों की उत्पत्ति का वर्णन है। दर्पणवर्णित वीर, रौद्र, अद्भुत, बीभत्स, भयानक, करुण, हास्य और शृङ्गार सहित रसों की संख्या ८ है। ऐसा प्रतीत होता है दर्पण का रस विवेचन नाट्यशास्त्र[१] सम्मत है। नाट्य में शान्तरस आवश्यक नहीं समझा जाता है। किन्तु नाटकों में सङ्गीत की स्थिति पूरक उपाङ्ग की है। आध्यात्मिक, मोक्षसाधकों के सहायक, सङ्गीत का शान्तरस[२] मूलाधार है। क्योंकि इसका स्थायी भाव निर्वेद है। विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी निर्वेद के योग द्वारा प्राप्त शान्तरस पूरित सङ्गीत ही साधक को समाधि अवस्था तक पहुँचाने में समर्थ है। मीरा, सूर, कबीर आदि अनेक अध्यात्मपथिकों का पाथेय। सङ्गीत के शान्तरस से प्रेरित, प्रभावित चित्त ने ही स्वर समष्टियों में विभिन्न राग-रागिनियों की छवि के दर्शन किए हैं। अपनी-अपनी चित्तवृत्ति के अनुसार। पृथक्-पृथक्।

अध्यात्म से पोषित अथवा साधनामूलक सङ्गीत अपनी उपस्थिति द्वारा इसे नौ रसों की उपलब्धि करा देने योग्य बना देता है। एक-एक स्वर की रस सामर्थ्य के विषय में ग्रन्थ मत हम देख चुके हैं। २२ श्रुतियों द्वारा घटित स्वर सप्तक में श्रुति संख्या इस भाँति है। षड्ज, मध्यम एवं पञ्चम में ४-४ श्रुति, ऋषभ और धैवत में ३-३, तथा गान्धार और निषाद में २-२ श्रुतियाँ हैं। केवल एक स्वर से दो रस और दो स्वरों से एक ही रस का ग्रन्थमत देखा जा चुका है। स्थूल दृष्टि से ऐसा होना सम्भव नहीं लगता। स्वरों के नामों की व्याख्या करते हुए कहा गया है—"ऋषभ से निषाद पर्यन्त छः स्वरों से उत्पन्न अथवा छः स्वरों के जनक स्वर की 'षड्ज' संज्ञा है।" एक ही स्वर की यह व्याख्या भी जन सामान्य को सहज स्वीकार्य नहीं लगती। किन्तु शास्त्रीय सङ्गीत का अभ्यास करने वाले

---

१. शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ॥

२. निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः । *काव्यप्रकाश, ४*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यक्ति को तानपूरे के षड्ज स्वर से उद्भूत छः स्वर कुछ ही दिनों बाद सुनाई देने लगते हैं। गायक अथवा वादक के चित्त संवेग द्वारा प्रभावित स्वर 'काकु'[१] युक्त होकर भय, शोक, क्रोध आदि विभिन्न मनोभावों को व्यक्त करने में समर्थ होता रहता है। काकु सिद्ध साधक, गायक-वादक, स्वरों और रागों में इसी काकु भेद से आपेक्षित रसानुभूति करते-कराते रहते हैं।

स्वर और रस की भाँति राग और रस के सम्बन्ध में विचार करते समय लय, समय एवं ऋतु की ओर ध्यान देना आवश्यक होगा। लय की चर्चा ७वें अध्याय में की गई है। यथावकाश हम राग, ऋतु और समय आदि की चर्चा करेंगे। परन्तु स्वर और रस की चर्चा का समापन पं० भातखण्डे के शब्दों से किया जाना उचित होगा—"मारवा की प्रकृति पूरिया जैसी गम्भीर नहीं। कोई-कोई इसके खड़े स्वर देखकर कहते हैं कि इस राग में वीर रस के गीत अधिक शोभा देंगे। मैं यह पहले ही सूचित कर चुका हूँ कि यह रस विषय जितना सरल समझा जाता है उतना है नहीं। इसका निर्णय केवल कल्पना के आधार पर नहीं किया जा सकता। अमुक स्वर का परिणाम प्रत्येक मनुष्य पर अमुक ही होगा यह निर्विवाद सिद्ध कर दिखाने में बड़ी चतुरता की आवश्यकता है।[२]"

उक्त विचार असन्दिग्ध हैं। मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना, की भाँति रुचि और रसबोध नितान्त वैयक्तिक होते हैं।

✤

---

१. भय, शोक, क्रोध आदि संवेगों के कारण स्वर में परिवर्तन। भिन्न कण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते। *साहित्यदर्पण।*

२. पं० विष्णुनारायण भातखण्डे, *भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र*, भाग ३, पृ० २२७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

११

वर्तमान रागनियम

उत्तर भारतीय शास्त्रीय सङ्गीत के निम्नलिखित नियमों का पालन आज प्रत्येक कलाकार द्वारा अपने अध्ययन एवं ज्ञान के अनुसार किया जा रहा है। शिक्षण संस्थाओं में प्रायः इन्हीं नियमों द्वारा निर्दिष्ट सङ्गीत, छात्रों को सिखाया जा रहा है। कतिपय अपवादों को छोड़कर समस्त नये राग इन्हीं नियमों के अन्तर्गत रचे जा रहे हैं।

१. दो मध्यम वाले रागों के आरोह में प्रायः 'नि' वक्र तथा दुर्बल होता है और अवरोह में ग।
२. किसी राग में मध्यम और पञ्चम एक साथ वर्जित नहीं हो सकते।
३. षड्ज प्रत्येक राग का अनिवार्य स्वर है।
४. तीव्र मध्यम वाले रागों में केवल कोमल निषाद का प्रयोग नहीं होगा।
५. दोनों मध्यम वाले रागों में सामान्यतः तीव्र मध्यम गौण माना जाता है।
६. मध्यम वादी वाले राग प्रायः गम्भीर प्रकृति के होते हैं॥
७. दोनों मध्यम वाले रागों में प्रायः यदि तीव्र मध्यम न भी हो तो राग का स्वरूप नहीं बिगड़ता।
८. तीव्र मध्यम दो-एक अपवादों को छोड़कर रात्रि सूचक माना जाता है।
९. किसी भी राग में नि और नि॒ का प्रयोग वादी के रूप में नहीं किया जाता।
१०. तीव्र मध्यम को वादी अथवा संवादी का स्थान कभी नहीं प्राप्त होता।
११. दो मध्यम वाले रागों में अन्तरा प्रायः शुद्ध मध्यम से शुरू किया जाता है।
१२. जिन रागों में गान्धार स्वर वर्जित हो उन में प्रायः तीव्र मध्यम का भी प्रयोग नहीं होता।
१३. कोमल ग-नि वाले रागों के आरोह में तीव्र निषाद लेने का चलन है।
१४. कोमल ग-नि वाले रागों में सामान्यतया तीव्र मध्यम का प्रयोग नहीं होता है।
१५. कोमल ग-नि वाले राग प्रायः दोपहर या आधी रात में गाये जाते हैं।
१६. जिस राग में गान्धार दुर्बल होता है उस में निषाद भी दुर्बल होता है।
१७. स्वर-संवाद षड्ज-मध्यम अथवा षड्ज-पञ्चम भाव से निश्चित किया जाता है। अर्थात् दोनों में नौ अथवा तेरह श्रुतियों का अन्तर होता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१८. वादी स्वर देर तक टिकाव अथवा बार-बार प्रयोग से दिखाते हैं।
१९. वादी-संवादी स्वर राग के अनिवार्य तत्त्व हैं।
२०. जिस राग में षड्ज वादी होता है उसमें पञ्चम वर्जित नहीं होता।
२१. यथासम्भव विकृत स्वरों को वादी संवादी नहीं बनाया जाता। यदि ऐसा होता भी है तो वे सीनक नहीं रहते अर्थात् उन पर देर तक टिकाव नहीं रहता वरन् वे बार-बार प्रयोग से दिखाये जाते हैं।
२२. निषाद और गान्धार परस्पर संवादी होते हैं और ऋषभ-धैवत उनके विवादी।
२३. राग का प्रस्तार, वादी और संवादी को केन्द्र मानकर किया जाता है।
२४. अर्द्ध स्वर का अन्तराल विवादी माना जाता है।
२५. राग में यदि कोई स्वर दुर्बल होगा तो इसका संवादी भी दुर्बल होगा।
२६. विवादी स्वर का प्रयोग राग में तभी होता है जब उसका संवादी स्वर राग में विद्यमान हो। (भैरवी के विवादी अपवाद हैं।)
२७. राग में विवादी स्वर सामान्यत: अवरोह में लगाया जाता है।
२८. जिस ठाठ का राग हो उस से अन्य ठाठ का ही स्वर विवादी होता है, जैसे केदार में नि कल्याण थाट का स्वर नहीं है और बिहाग में मे बिलावल थाट का स्वर नहीं है। (यह नियम त्रुटिपूर्ण है। औडुव जाति के राग इस नियम के अपवाद हैं और षाडव राग भी इसकी परिधि में नहीं आते।)
२९. समश्रुति स्वर साधारणत: आपस में संवादी हैं।
३०. रे ग ध को गौण वादी माना जाता है इसलिये वादी रूप में इन्हें कम्पित करके या बार-बार प्रयोग द्वारा दिखाया जाता है।
३१. जिन रागों में ऋषभ वादी होता है उन में अधिकतर पञ्चम ही प्रधान रहता है।
३२. जिन रागों में ऋषभ वादी के रूप में पूर्णतया विकसित रहता है उन में मंद्र पञ्चम के साथ उसकी संगति दिखाई जाती है।
३३. जिन रागों में ऋषभ और धैवत दुर्बल होते हैं उन में सामान्यत: षड्ज, मध्यम और पञ्चम बढ़ाये जाते हैं।
३४. उत्तराङ्ग प्रधान रागों में सा से अवरोह में प न्यास का स्वर होता है। यदि उस राग में प वर्जित हो तो म पर न्यास होता है।
३५. षड्ज, मध्यम एवं पञ्चम पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग दोनों में माने जाते हैं, अत: यदि इन में से कोई स्वर राग में वादी हो तो वह राग बहुधा सर्वकालिक माना जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३६. उत्तराङ्ग वादी रागों में राग का वैचित्र्य अवरोह में होता है, और पूर्वाङ्ग वादी राग का आरोह में।
३७. वादी पूर्वाङ्ग में हो तो राग का प्रारम्भ वादी अथवा संवादी से करना चाहिए।
३८. पूर्वाङ्ग प्रधान रागों में षड्ज विश्रान्ति का स्थान माना जाता है।
३९. राग की एकरसता (समरसता) के लिए पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग के स्वरों में षड्ज-मध्यम अथवा षड्ज-पञ्चम भाव होना जरूरी है।
४०. पूर्वाङ्ग वादी राग दिन के बारह बजे से रात के बारह बजे तक और उत्तराङ्ग वादी राग रात के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक गाये जाते हैं।
४१. सायंकालीन सन्धिप्रकाश रागों में सामान्यतः ग और नि एक साथ वर्जित नहीं होते।
४२. दोपहर के रागों में अधिकतर कोमल गान्धार ही लगता है या इसे वर्जित कर दिया जाता है।
४३. रात्रिगेय रागों के अङ्ग आरोह में और दिन में गाये जाने वालों के अङ्ग अवरोह में व्यक्त होते हैं।
४४. सन्धिप्रकाश रागों में रे - ध कोमल और ग - नि तीव्र होते हैं।
४५. जिन रागों में रे - ध शुद्ध होते हैं वे सन्धि प्रकाश रागों के बाद गाये जाते हैं।
४६. प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश रागों में सामान्यतः रे॒ - ध॒ वर्जित नहीं होते हैं।
४७. सायङ्कालीन राग पूर्वाङ्ग वादी और प्रातःकालीन राग उत्तराङ्ग वादी होते हैं।
४८. सन्धिप्रकाश रागों से पहले अथवा दिन और रात के तीसरे पहर गाये जाने वाले रागों में सा, म, और प को लम्बा किया जाता है और इन में से कोई एक स्वर वादी होता है।
४९. दोपहर दिन और आधी रात के रागों में सारंग का अङ्ग आता है।
५०. तीसरे पहर के रागों के आरोह में ऋषभ सामान्यतया दुर्बल रहता है।
५१. सुबह के रागों में ऋषभ और धैवत की प्रबलता दिखाई देती है।
५२. ग - प संगति प्रातर्गेय है और प - ग सायंगेय।
५३. सामान्यतः रात्रि के रागों के आरोह में ऋषभ का प्राबल्य रहता है।
५४. सन्धिप्रकाश रागों में सा, रे॒ रे॒ सा स्वरों का बड़ा महत्त्व समझा जाता है।
५५. ध प अथवा ध॒ प स्वरों के लम्बे उच्चारण से प्रातःकाल का बोध होता है और राग गम्भीर प्रकृति का हो जाता है।
५६. सायंगेय रागों में राग वैचित्र्य रे ग और प पर निर्भर रहता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५७. स्वरों की संगति में कम से कम एक स्वर का लंघन होना चाहिए, जैसे— सा ग, रे म, प नि, प ग आदि।

५८. कुछ विशेष रागों को छोड़कर समान्यतः किसी स्वर के दोनों रूप (शुद्ध तथा विकृत) एक के बाद दूसरा, साथ-साथ नहीं लगाये जाते।

५९. सबसे ऊँचा न्यास स्वर निषाद माना जाता है। न्यास का स्वर तार स्थान में नहीं होता किन्तु अड़ाना, सोहनी जैसे कुछ राग अपवाद हैं।

६०. अर्ध स्वर का छोटा अन्तराल सङ्गीतोपयोगी नहीं समझा जाता।

६१. राग का उत्तम मण्डन मध्य स्थान में होता है।

६२. अचल (स, प) स्वरों को छोड़कर अन्य सभी स्वरों की प्रवृत्ति स्वभावतः आरोह में कुछ चढ़ने की और अवरोह में कुछ उतरने की होती है। (स, प भी मृदु हो जाते हैं)

६३. सायंकाल के रागों में ग, नि की प्रबलता होती है।

६४. सायंकालीन सन्धिप्रकाश रागों में शुद्ध मध्यम का और प्रातःकालीन सन्धि प्रकाश रागों में तीव्र मध्यम का प्रयोग अल्प मात्रा में किया जाता है।

६५. अकेले तीव्र मध्यम के साथ कोमल निषाद का प्रयोग नहीं होता। दोनों मध्यम और दोनों निषाद वाले राग हो सकते हैं।

६६. परमेल प्रवेशक अथवा दो ठाठों के मध्यवर्ती राग में द्विरूपी स्वरों का प्रयोग होता है। अर्थात् उसमें किसी स्वर के तीव्र और कोमल दोनों रूप लगते हैं।

६७. जिन रागों में शुद्ध मध्यम के साथ कोमल धैवत और कोमल ऋषभ होते हैं वहाँ प्रायः पञ्चम वर्ज्य नहीं किया जाता, अगर किया गया तो पञ्चम के स्थान पर तीव्र मध्यम लेना पड़ेगा।

६८. जिन रागों में किसी स्वर के दोनों रूपों का प्रयोग होता है उन में प्रायः आरोह में स्वर का तीव्र रूप और अवरोह में कोमल रूप प्रयुक्त होता है।

६९. क्षुद्र प्रकृति के रागों में मन्द्र स्थान के स्वर अच्छे नहीं लगते।

७०. जो राग मन्द्र सप्तक में अच्छे लगते हैं उनमें तार सप्तक में अधिक ऊँचे नहीं जाया जाता।

७१. जिन रागों में कोमल ऋषभ का प्रयोग होता है उन में रे॒ को षड्ज से आरोह में प्रायः अल्प प्रमाण में लिया जाता है। वहाँ रे॒ को सा ग रे॒ ग, सा रे॒ सा ग, सा रे॒ ग रे॒ ग, अथवा नि रे॒ ग इस प्रकार लिया जाता है।

७२. क्षुद्र प्रकृति के रागों में प्रायः मुक्त मध्यम (मन्द्र) नहीं रहता।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

७३. जिन रागों के आरोह में रे, ध, स्वर वर्ज्य होते हैं उन में सा, म और प प्रबल होते हैं।
७४. सा, म और प के वादी होने पर राग की प्रकृति गम्भीर होती है।
७५. समान रागों का भेद स्वर सङ्गति तथा वादी भेद से दरसाना हितकर होता है।
७६. मारवा थाट के रागों में आधार षड्ज अप्रधान हो जाता है फलतः पञ्चम भी या तो वर्जित रहता है या दुर्बल।
७७. जिस राग में मध्यम स्वर बढ़ता है, उसमें गान्धार दुर्बल रहता है।
७८. प्रातर्गेय रागों में सा, म, प, और ध में से कोई एक स्वर वादी होता है।
७९. जिन रागों में वादी तथा संवादी स्वरों का निर्णय विवाद ग्रस्त होता है, उनमें षड्ज को वादी और संवादी दोनों मान लिया जाता है। केवल षड्ज को ही यह विशेषाधिकार प्राप्त है। ऐसी स्थिति में दोनों षड्ज दो सप्तकों के होंगे।
८०. भैरव में रे और ध आन्दोलित रहते हैं, मेघ में रे आन्दोलित रहता है; दरबारी में ग और ध आन्दोलित रहते हैं, कान्हड़ा में ग प्रायः आन्दोलित रहता है, मियाँ मल्लार में ग, ध आन्दोलित रहते हैं तथा मियाँ की सारङ्ग में ध आन्दोलित रहता है।

राग वर्गीकरण के कुछ नियम

उल्लिखित नियम पं० भातखण्डे द्वारा स्वीकृत हैं। ये ही पं० भोलादत्त जोशी द्वारा रचित ग्रन्थ 'सङ्गीतशास्त्र तथा राग-माला' के पृष्ठ १३७-४० पर एकत्र किए गए हैं। इनके अतिरिक्त ये कुछ अन्य नियम हैं जिन से राग-रूप निर्धारण तथा परिरक्षण में सहायता प्राप्त होती है।

राग वर्गीकरण के प्रसङ्ग में प्रो० ललितकिशोर सिंह का कथन है—"प्राचीन काल से ही रागों के विभाग की एक विशेष प्रथा प्रचलित है जिस के अनुसार राग तीन वर्गों में विभक्त किये जाते हैं—(१) शुद्ध, (२) छायालग, सालंक या सालग और (३) सङ्कीर्ण अथवा मिश्र। भरत के जाति-विभाग में भी इस का सङ्केत मिलता है। मतङ्ग और शार्ङ्गदेव ने भी इसकी चर्चा की है। शुद्ध राग वे समझे जाते हैं जो अपने शुद्ध रूप में हों। छायालग में दूसरे राग की भी छाया होती है। सङ्कीर्ण, शुद्ध और छायालग का मेल है।

स्ट्रैंग्वेज़ के मतानुसार सरल शब्दों में (१) यमक-मेल को शुद्ध, (२) विषम मेल को सङ्कीर्ण और (३) दोनों गान्धार, दोनों निषाद आदि वाले मेल को छायालग कहेंगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसी परिभाषा के अनुसार वेंकटमखी के ७२ मेलों का विभाग इस प्रकार होगा—

(१) शुद्ध—भातखण्डे के १० हिन्दुस्तानी मेल।

(२) सङ्कीर्ण—रामस्वामी के ३२ मेलों में से शेष २२ मेल।

(३) छायालग—वेंकटमखी के ७२ मेलों में से शेष ४० मेल।

वादी-संवादी

मेलगत यमक के साथ राग के वादी-संवादी का घनिष्ठ सम्बन्ध है। भरत मुनि की पद्धति में वादी-संवादी-अनुवादी एवं विवादी, ये स्वरों के पारस्परिक सम्बन्ध माने जाते थे। 'जाति' के प्रधान या जीव स्वर को 'अंश' कहा जाता था। अब वादी-संवादी आदि राग की ही उपाधियाँ माने जाते हैं। राग का जो मुख्य या जीव स्वर होता है उसे अब 'अंश' न कहकर वादी कहते हैं। इस वादी पर ही राग की प्रकृति निर्भर है। दो राग एक ही प्रकार के हों, दोनों के स्वर समान हों, जाति एक हो, फिर भी वादी-भेद से दोनों रागों की प्रकृति तथा गायन समय भिन्न होते हैं। जैसे भूपाली और देशकार के स्वर-प्रबन्ध बिलकुल एक से हैं। दोनों ही औडुव (५ स्वरों के) जाति के हैं। दोनों ही के आरोही-अवरोही स्वर सा रे ग प ध सं हैं। पर भूपाली का वादी गान्धार है और देशकार का धैवत। इस वादी-भेद से ही दोनों की प्रकृति में स्पष्ट अन्तर हो जाता है। इसी प्रकार पूरिया-मारवा, और रेवा-विभास आदि में जो अन्तर है वह वादी स्वर के कारण ही है। वादी से ही राग में व्यक्तित्व आता है उसका रूप निखरता है। राग के पूर्वार्ध अथवा उत्तरार्ध, दोनों में से किसी एक में वादी स्वर निश्चित हो जाने पर दूसरे भाग में इस वादी का मध्यम या पञ्चम अनायास स्वयमेव संवादी स्वर निश्चित हो जाता है। दोनों यमक अङ्गों में एक का केन्द्र वादी और दूसरे का संवादी स्वर होता है। इस प्रकार वादी और संवादी सप्तक के दोनों अङ्गों को जोड़ते हैं। दोनों अङ्गों के यमकत्व के साथ-साथ दोनों केन्द्रों का संवाद राग की इष्टता और समरसता के लिए बड़ा महत्त्व रखता है। इसी संवाद के कारण जब गायक वादी स्वर से दूसरे अङ्ग के संवादी स्वर पर जाता है तो राग की प्रकृति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है और भाव में कोई बाधा नहीं पड़ती।

उल्लिखित व्यवस्था का पालन भारतीय सङ्गीत की अपनी विशेषता है। शुद्ध, छायालग आदि वर्गीकरण को स्पष्ट करते हुए प्रो० ललितकिशोर सिंह अतिया बेग़म को उद्धृत करते हैं—अतिया बेग़म इसके विषय में लिखती हैं—शुद्ध उन रागों का नाम हैं जिनके स्वर अपनी मौलिक शुद्धता में चले आ रहे हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

समय या व्यक्ति के व्यभिचार से जिन में विकृति नहीं होने पाई है, जैसे ६ राग (पुरुष राग) और कुछ मुख्य रागिनियाँ (स्त्री राग)।[१]

सालंक, सालग या छायालग वे राग हैं जिनमें दूसरे रागों की छाया है। ऐसे राग बहुत से हैं।

सङ्कीर्ण वे राग हैं, जो दो शुद्ध रागों या पाँच या छः रागिनियों के मेल से बने हों। इनकी संख्या बहुत है।

महासालंक वे राग हैं जो सालंक और सङ्कीर्ण के मेल से बने हों। इनकी संख्या का कोई अन्त नहीं है। कुछ ग्रन्थों में 'महासालंक' की जगह 'महा सङ्कीर्ण' आया है।[२]

वादी-संवादी भेद के अतिरिक्त रागाङ्ग भेद द्वारा भी रागों का वर्गीकरण आचार्यों द्वारा किया गया है। कुछ विशिष्ट स्वरानुक्रम द्वारा किसी रागविशेष की पहचान बनती है—जैसे, रे ग प, ग प, बिलावल, ऱे म रे सारङ्ग, और नि॒ प ग॒ म रे, कानड़ा आदि।

रागों के गायन के समय-निर्धारण हेतु, राग में वादी-संवादी की सप्तक के पूर्वाङ्ग अथवा उत्तराङ्ग में स्थिति, तार षड्ज का वैशिष्ट्य आदि के नियम निश्चित किये गए हैं। वसंत, और वर्षा ऋतु के रागों का अपना स्वतन्त्र गायन काल निश्चित किया गया है। मल्लार अङ्ग के सा, रे म रे, रे प म रे, आदि स्वर-संहतियों के आधार से इन रागों के गायन-काल का निर्णय किया गया है।

स्वर-संख्या द्वारा रागों की जाति का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है।

(१) औडव, अर्थात् केवल पाँच स्वर वाले राग।

(२) षाडव, अर्थात् केवल छः स्वर वाले राग।

(३) सम्पूर्ण, अर्थात् केवल ७ स्वर वाले राग।

उल्लिखित तीन प्रकारों के स्वर-समूह से रचित रागों के अतिरिक्त इन के विपर्यय द्वारा समुद्भूत रागों का वर्गीकरण करते हुए उन्हें औडव-षाडव, औडव-सम्पूर्ण, षाडव-औडव, षाडव-सम्पूर्ण, सम्पूर्ण-षाडव तथा सम्पूर्ण-औडव आदि नामों से वर्गीकृत किया गया है।

अछोप राग—वर्गीकरण के विविध प्रकारों की एक संक्षिप्त चर्चा की जा चुकी है। मौसम के राग, दिन-रात-शाम-सबेरे-दोपहर और आधीरात के राग

---

१. इस विषय में आचार्य बृहस्पति का मत है, "केवल वागीश्वरी और भीमपलासी आज भी भरतोक्त श्रुतिसारणा के अनुसार अविकल रूप में प्राप्त होते हैं।"

२. प्रो० ललितकिशोर सिंह, *ध्वनि और सङ्गीत*, पृ० २३७-४०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आदि के बीच यदा-कदा 'अछोप राग' नाम सुनाई पड़ता है। सामान्यतया इसे 'अप्रचलित राग' मान लिया जाता है। किन्तु ऐसा है नहीं। अप्रचलित राग वे हैं जो कभी प्रचलित थे। किन्तु परम्परा के उच्छेद अथवा परिवर्तित जनरुचि आदि कारणों से क्रमशः अप्रचलित हो गए। अछोप शब्द संस्कृत के अक्षोभ्य शब्द का अपभ्रंश है। मुसलमान गायक-वादकों ने अपने अज्ञान के कारण, स्वर को सुर, लम्बोदर को लम्बूधरो, सङ्कीर्ण को संकीरन, दग्धाक्षर को दधच्चर और अक्षोभ्य को अछोप बना डाला। अक्षोभ्य, अर्थात् वे राग जो शास्त्र के नियमों की कसौटी पर तो एकदम खरे उतरते हैं, राग के समग्र लक्षणों से परिपूरित किन्तु उनका स्वर-सन्दर्भ गायक-वादकों के कठिन प्रयत्नों के बावजूद सज्जनों का रञ्जन नहीं कर पाता। फलस्वरूप ऐसे राग अक्षोभ्य अर्थात् न हिलाए-डुलाए न आन्दोलित किए जा सकने वाले कहे गए।

✤

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१२

अप्रचलित राग

चर्चित वर्गीकरण द्वारा देखा जा चुका है कि प्राचीन काल में ही कुछ राग ग्रन्थ पृष्ठों तक सीमित रह गए। अवश्य ही उन्हें प्रचलित करने के प्रयत्न हुए होंगे। सम्भव है, ऐसे राग क्षेत्रीय प्रचार के बाद परिवर्तित जनरुचि के कारण अल्प प्रचलित होकर अप्रचलित हो गए हों। जो हो, इनका क्रमबद्ध इतिहास जान पाना सम्भव नहीं रह गया है। अत: अब हम राग के अन्य पक्षों की ओर ध्यान देंगे।

विवेचन, अध्ययन हेतु राग के दो वर्गों की कल्पना सुविधाजनक होगी। (१) मन, अथवा भावना प्रधान राग। (२) गणित सिद्ध अथवा बुद्धि प्रधान राग। सामान्यतया ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्रीय-सङ्गीत का एक विकसित व्याकरण है अत: समस्त राग गणित सिद्ध हैं। किन्तु आज के सङ्गीत विवेचक भली भाँति जानते हैं कि वर्तमान राग कुटुम्ब में कितने ही राग ऐसे हैं जो लोकमानस द्वारा उद्‌भूत 'धुनों' के रूप में प्रयुक्त होने के बाद शास्त्रीय सङ्गीत के कुशल कलाकारों द्वारा राग लक्षण मण्डित कर के राग-परिवार में समाविष्ट किए गए हैं। पीलू, देश तथा तिलककामोद आदि रागों की उपलब्धि इसी प्रकार हुई है।

गणितमूलक राग रचना का मूल, मस्तिष्क में उत्पन्न कुतूहल है। अगर हम इसमें यह राग मिला दें अथवा राग के अमुक स्वर को कोमल/तीव्र कर दें तो? इस और ऐसे अनेक कुतूहलों ने राग-मिश्रण और स्वर-मिश्रण को प्रोत्साहित किया। परिणाम स्वरूप आज सङ्कीर्ण रागों की संख्या शुद्ध राग तथा छायालग रागों से अधिक होती जा रही है। वर्तमान शास्त्र के अनुसार पं० भातखण्डे के १० जनक रागों को शुद्ध अथवा मूल राग स्वीकारते हुए हम इन के जन्य कुछ अक्षोभ्य राग तथा नवनिर्मित रागों की चर्चा करेगें। चर्चा से प्रथम हमें यह ध्यान रखना उपादेय होगा कि आज के नव-राग-रचयिता की ओर से अपनी रचना के पक्ष में एक तर्क प्रस्तुत किया जाता है। वह यह कि प्रत्येक राग अपने सृजन तथा प्रस्तुति के काल में नवीन ही था। हमारे नये रागों को २२वीं शती के लोग प्राचीन और पारम्परिक ही कहेंगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जनक बिलावल—सङ्गीत १९५३ ई० के विशेषाङ्क से उद्धृत

१. शुद्ध बिलावल	२. अल्हैया बिलावल	३. शुक्ल बिलावल
४. देवगिरी बिलावल	५. यमनी बिलावल	६. नट बिलावल
७. सरपर्दा	८. हमीर बिलावल	९. हेम कल्याण
१०. लच्छासाख	११. कुकुभ बिलावल	१२. शुद्ध नट
१३. बिहागड़ा	१४. बिहाग	१५. नट बिहाग
१६. पट बिहाग	१७. मलूहा केदार	१८. जलधर केदार
१९. दुर्गा	२०. गुनकली	२१. पहाड़ी
२२. माँड	२३. मेवाड़ा	२४. पटमञ्जरी
२५. दीपक	२६. आसा	२७. कमल रंजनी
२८. चन्द्रिका	२९. चक्रधर	३०. जयराज
३१. देशकार	३२. भवानी	३३. रसरंजनी
३४. रसचन्द्र	३५. लाजवन्ती	३६. शङ्करा
३७. सावनी कल्याण	३८. भिन्नषड्ज	३९. चित्तमोहिनी
४०. जनरंजनी	४१. आरभी	

जनक बिलावल आज शास्त्र तथा शिक्षण-सीमित किन्तु अप्रचलित हो चुका है। थाट के शेष ४० रागों में संख्या ८, १०, १८, २०, २३, २४, २५, २७, २८, २९, ३०, ३२, ३४, ३५, ३९, ४० तथा ४१ के राग अब तक प्रचलित नहीं हो सके हैं। संख्या ३२ का राग भवानी केवल चार स्वरों का है। ५ स्वरों से कम का राग नहीं हो सकता। स्पष्ट है नव-रचना के उत्साह में ऐसा अनर्गल प्रयोग किया गया। १९५४ ई० के पश्चात् सङ्गीत कार्यालय (हाथरस) द्वारा 'राग-कोश' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। इसके अनुसार बिलावल थाट के अन्तर्गत ये नवीन राग समाविष्ट किये गए हैं। ये सब नवनिर्मित राग हैं। इन में कुछ कर्नाटक पद्धति के राग भी हैं।

रागकोश, चतुर्थ संस्करण, फरवरी १९९०

१. उदयरवि चन्द्रिका		रागकोश, पृष्ठ २८	संख्या २७९
२. कोलाहल		,, ,,	,, २८८
३. गर्वप्रिया		,, ,, ३०	,, ३१०
४. जोगी बसन्त		,, ,,	,, ३२६
५. नौरोज	सम्पूर्ण	,, ३२	संख्या ३४५
६. नागनन्दिनी		रागकोश, पृष्ठ ३२	,, ३४८
७. नवरोज	सम्पूर्ण-षाडव	,, ,, ३३	,, ३५९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

८. पार्वती	रागकोश, पृष्ठ ३३	संख्या ३६७
९. पूर्णचन्द्रिका	,, ,, ३३	,, ३६८
१०. पूर्णोदय	,, ,, ३४	,, ३७०
११. बलिहारी	,, ,, ३४	,, ३७३
१२. मोहन	,, ,, ३५	,, ३८७
१३. माहुरी	,, ,, ३५	,, ३९४
१४. रघुपति	,, ,, ३६	,, ४०९
१५. सामेरी मल्हार	,, ,, ३९	,, ४४८
१६. शाम	,, ,, ३९	,, ४५३
१७. हरीनाट	,, ,, ४०	,, ४६७
१८. कौशिक ध्वनि	,, ,, ४०	,, ४७३
१९. झङ्कार	,, ,, ४१	,, ४८२
२०. पूर्वहोलिका	,, ,, ४२	,, ४८९
२१. मनहर	,, ,, ४२	,, ४९०
२२. ममता	,, ,, ४२	,, ४९५
२३. हेम	,, ,, ४२	,, ४९९
२४. हेमन्त	,, ,, ४२	,, ५००

रागकोश की प्रस्तुत तालिका की संख्या २८८, ३२६ और ३४५ के रागों को सम्पूर्ण-सम्पूर्ण तथा सभी के वादी-सम्वादी धैवत और गान्धार को कहा गया है। इस एक ही स्वर-समुच्चय को तीन राग (कोलाहल, जोगीवसंत एवं नौरोज) कैसे माना जाय? संख्या ३८७ का राग मोहन, औडुव है तथा इसके वादी-सम्वादी गान्धार और धैवत हैं। मोहन अर्थात् भूपाली। सङ्गीत बिलावल अङ्क ५३ ई० का भिन्न षड्ज, सङ्गीत फरवरी ५५, पृ० ९ का राग हिण्डोली तथा रागकोश, पृ० ४०, संख्या ४७३ का राग कौशिक ध्वनि ये सर्वथा एक हैं। केवल नाम-भेद है।

कल्याण अङ्क, सङ्गीत १९५४ ई० के अनुसार

१. यमन	२. यमन कल्याण	३. शुद्ध कल्याण
४. श्याम कल्याण	५. जैत कल्याण	६. राज कल्याण
७. लक्ष्मी कल्याण	८. श्री कल्याण	९. दुर्गा कल्याण
१०. गौड़ सारङ्ग	११. हमीर	१२. कामोद
१३. विरंचिमुखी	१४. केदार	१५. भूपाली
१६. छायानट	१७. मालश्री	१८. मारूबिहाग
१९. हिण्डोल	२०. साँझ का हिण्डोल	२१. आनन्दी (नन्द)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२२. मालारानी २३. वैजयन्ती २४. चन्द्रकान्त
२५. हंस कल्याण २६. सङ्गम केदार २७. सामन्त कल्याण
२८. शुभ कल्याण (जनसम्मोहनी) रागविज्ञान, भाग ७, पृ० ६६

रागकोश, चतुर्थ संस्करण, १९९० ई० के अनुसार, नवनिर्मित

२९. कुमुदकी, सा रे ग मं नि ३०. कल्याण केसरी ३१. रसिकप्रिया
३२. क्रियाभरण ३३. देवकी पूरिया ३४. योगज्योति
३५. श्रानू ३६. सारंगा ३७. सरसकल्याण
३८. हंसनन्दा ३९. तिलकश्याम ४०. दीपावली
४१. यमनमाँझ ४२. रसिया

कल्याण थाट के उपलब्ध नये-पुराने रागों की प्रस्तुत तालिका में संख्या ६, ७, ८ तथा ९ के राग अप्रचलित हैं। संख्या १६ का राग भी अक्षोभ्य रागों में है। संख्या १७ का राग मालश्री येन-केन-प्रकारेण मं और नि का प्रयोग करके औडुव बनाया जाता है। इसी कारण प्रचलित नहीं हो सका। संख्या २० का राग 'साँझ का हिण्डोल' नि स्वर को प्रबल करके कल्पित किया गया। किन्तु ऐसा करने पर ग मं ध नि सां से सोहनी राग आगे आने लगता है। संख्या २२, २३, २४, २५, २६, २७ एवं २८ के राग ग्रन्थों तक सीमित हैं। संख्या २९ से ४२ तक के रागों में ३९, ४१ तथा ४२ के तिलक श्याम, यमन माँझ, और रसिया केवल धुनों तक सीमित रह गए। इनके रचयिता पं० रविशङ्कर हैं। संख्या ४० का राग दीपावली स्व० पन्नालाल घोष की रचना है। यमन तथा ललित का यह मधुर मिश्रण अभी गायकों द्वारा मञ्च तक नहीं पहुँचाया गया।

सङ्गीत, जनवरी सन १९५६ ई० के अनुसार खमाज थाट के अप्रचलित राग

१. दुर्गा, अल्प प्रचलित
२. नागस्वरावली
३. श्यामकेदार
४. साजन
५. हंसश्री
६. खोकर
७. चम्पक
८. चम्पाकली
९. नाट कुरञ्जिका
१०. कामाइ, नवनिर्मित
११. करङ्कवराली, ''
१२. नूपुर
१३. रविकोश
१४. काम्बोजी, श्री बालाभाऊ उमडेकर द्वारा प्रचलित करने का प्रयत्न किया गया।
१५. लङ्केश्री
१६. होमशिखा

१७वें माधुरी, राग के विवरण, में कहा गया है, आरोह में केवल ४ तथा अवरोह में ५ स्वरों का प्रयोग होने के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कारण इसकी जाति चतस्र–औडुव मानी गई है। चतस्र–औडुव जाति कष्ट–कल्पना मात्र है। नवसृजन के उत्साह द्वारा प्रेरित शास्त्र विरुद्ध प्रयत्न। संख्या ७ के चम्पक राग को पं० ओम्कार नाथ ठाकुर ने प्रचलित करने का प्रयत्न किया। इसके विलम्बित ख़्याल 'ए मग जइहो' का रिकार्ड कोलम्बिआ कं० द्वारा बनाया गया था।

रागकोश, पृ० २७, संख्या २७७ का खमाजजन्य नवनिर्मित राग 'उड़नकान्ता' षाडव सम्पूर्ण जाति का है। उड़नकान्ता राग अभी तक ग्रन्थ सीमित है। रागकोश पृ० २८, संख्या २८४ का राग कलाभरण अभी सुना नहीं जा रहा है। पृ० २९, संख्या ३०३ के राग कामकेश को प्रचारक की प्रतीक्षा है। रागकोश के पृ० ३१ की संख्या ३२९/३० के दो राग जैरमा और जोगीभैरवी, गणित–प्रसूत रागों के खरे उदाहरण हैं। ऐसे अनेक नवरागों का निर्णय, प्रचार, प्रसार भविष्य के गर्भ में है। केवल तीन थाट के राग उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किए गए हैं। शेष सात थाटों के रागों की स्थिति इन से भिन्न नहीं है।

✤

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१३

नवनिर्मित राग

अब तक हम बिलावल, कल्याण तथा खमाज थाट के प्रचलित, अप्रचलित, अल्प प्रचलित तथा नवनिर्मित रागों में कुछ की चर्चा कर चुके हैं। प्रत्येक थाट के समस्त नूतन-पुरातन रागों का विश्लेषण न तो सम्भव है न ही अभीष्ट। अतः हम अब विशेषतया, यथाप्राप्त नव-निर्मित रागों की चर्चा करेंगे। चर्चा से प्रथम हमें अपनी इन सीमाओं का ज्ञान विवश करता है। नये राग गायक तथा वादकों द्वारा सृजन के पश्चात् श्रोता तक पहुँचाये जाते हैं किन्तु इन का क्रमबद्ध इतिहास हमें प्राप्त नहीं है। यह देखा जा चुका है कि एक ही राग भिन्न षड्ज दो अन्य नामों से प्रचारित किया गया है। यह भी संभव है कि अगर राग वादक द्वारा निर्मित है तो इस का गेय साहित्य उपलब्ध न होने से इसे गायक नहीं प्रस्तुत कर पाते। हम निर्णय में समर्थ नहीं हैं कि यदि कोई राग केवल गायन या वादन-सीमित है तो उसे हम राग स्वीकार करें या न करें? क्योंकि हमारे अनेक पारम्परिक राग समान रूप से गायक और वादकों द्वारा समादृत हैं। अभी विद्वानों द्वारा यह नियम स्वीकृत होना शेष है, कि कोई नवीन कल्पना जब गायक तथा वादक के समान सहयोग द्वारा श्रोतृ-वृन्द तक पहुँचेगी तभी उसे राग स्वीकार किया जायेगा। उदाहरणार्थ पं० रविशङ्कर द्वारा आविष्कृत एवं प्रचारित राग 'वैरागी भैरव' गायक और वादकों द्वारा समान रूप से प्रस्तुत किया गया किन्तु पण्डितजी के अन्य कुछ रागों का गायकों द्वारा समुचित स्वागत नहीं हुआ।

सालगवराली—इस प्रातःकालीन राग के विषय में श्री विनायक राव पटवर्धन का कथन है—"यह राग पं० एस्० एन्० रातांजंकरजी ने बनाया है। इसे षड्विधमार्गिणी या खट मारग मेल भी कहते हैं। आरोह में निषाद दुर्बल है। पूर्वाङ्ग में तोड़ी एवं उत्तराङ्ग में अहीर भैरव गाने से राग स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इसको अहीरी तोड़ी भी कह सकते हैं किन्तु अहीर के शुद्ध गान्धार का प्रयोग इस राग में नहीं करना चाहिए।" (राग विज्ञान, भाग ७, पृ० २७, २८) यह राग स्वीकृत हो चुका है यद्यपि अल्प प्रचलित है। परवीन सुल्ताना द्वारा प्रस्तुत सालगवराली का लांग प्लेइंग रिकार्ड सुनने योग्य है।

माला शृङ्गार—रचयिता, श्री बाबूराव कासलीकर, सङ्गीत अक्टूबर ५५ ई० पृ० ४। राग विवरण में कहा गया है—"हिण्डोल, तोड़ी, काफी, केदार,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दुर्गा और जयजयवन्ती इस रागमाला के संयोग से यह राग बना है।'' ऐसे रागों का पारंपरिक नाम 'राग-सागर/माला' है। ये स्वतन्त्र राग नहीं कहे जाते। इनसे केवल अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है। ये मात्र गायक अथवा वादक की अभ्यास कुशलता के द्योतक होते हैं तथा इन्हें नवीन-रचना की कोटि में नहीं माना जाता है।

वेदी का ललित—पं० दिलीप चन्द्र वेदी ने ललित में दोनों निषादों के प्रयोग द्वारा ललित का नया रूप प्रचारित करने का प्रयत्न किया। हिन्दुस्तान रिकार्ड कं० ने रिकार्ड बनाया। किन्तु जनप्रिय नहीं हो सका।

हेमन्त—बाबा अलाउद्दीन ख़ाँ की कल्पना का सुपरिणाम है। प्रचलित हो चुका है। स्वतन्त्र रूप है। कई रागों का मिश्रण नहीं है। औडुव-सम्पूर्ण जाति का राग बिलावल थाट में वर्गीकृत है। शास्त्रीय नियमानुकूल।

चन्द्रनन्दन—बाबा के सुपुत्र उ० अली अकबर ख़ाँ की कल्पना। जाति, औडुव-षाडव। दोनों गान्धार तथा निषाद। धैवत कोमल। शेष स्वर शुद्ध हैं। ऋषभ वर्जित। सङ्गीत, मई १९६४ ई०, पृ० ७ के अनुसार ज्ञात होता है कि इस राग की विलम्बित और द्रुत गेय बन्दिशों की रचनाएँ की गईं हैं। राग चन्द्रनन्दन मैहर-परम्परा के बाहर समादृत हो रहा है।

जोगकौंस—पूना के स्व० जगन्नाथ बुआ पुरोहित द्वारा किया गया जोग एवं मालकोस का मिश्रण। षाडव जाति तथा मध्यम और षड्ज के वादी-सम्वादित्व से भूषित, जनप्रिय राग।

मेघ बहार—राग के विषय में इसके परिकल्पक पं० भोलादत्त जोशी का कहना है—''यह राग काफी थाट का होगा। निषाद दोनों और गान्धार कोमल वादी मध्यम या पञ्चम, सम्वादी षड्ज, गान्धार वक्र, धैवत का बहार को व्यक्त करने में अल्प प्रयोग। ऋषभ ग्रह स्वर और आन्दोलित भी। यह राग मैंने नया बनाया है।'' सङ्गीत शास्त्र तथा राग-माला, ग्रन्थ के पृ० १३५-३६ पर इस राग की दो गेय रचनाएँ दी गई हैं। बहार राग के विषय में पं० भातखण्डे का मत इस प्रकार है—''बहार नाम यावनिक है। संस्कृत ग्रन्थों में यह नाम नहीं है। इस राग की खूबी है अन्य रागों में मिल जाना।'' भैरव-बहार, मालकंस-बहार, बसन्त-बहार. हिंडोल-बहार, बागेश्री-बहार, जौनपुरी-बहार, अड़ाना-बहार तथा रामकली-अथवा राम-बहार जैसे मिश्रित राग-नामों की चर्चा भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र के चौथे भाग, पृ० १६२ में द्रष्टव्य है। आज खमाज-बहार तथा मधुवन्ती मिश्रित मधु-बहार जैसे रागों से श्रोता परिचित हैं। बहार अर्थात् वसन्त ऋतु। मेघ अर्थात् वर्षा ऋतु नवसृजन इतनी छूट क्यों कर पा सकेगा? कि वर्षा और वसन्त एकत्र कर सके। वसन्त और वर्षा का समागम अब तक अकल्पनीय था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कनक किङ्किणी—पं० भोलादत्त जोशी का दूसरा नव सृजन है। इसके स्वर हैं, सा ग म प नि। काफी थाट की यह औडुव स्वरावली धानी राग की है। धानी के वादी-सम्वादी क्रमशः गान्धार व निषाद हैं। धानी की प्रकृति चपल है तथा यह राग सर्वकालिक कहा गया है। वादी परिवर्तन द्वारा नव-राग की उद्भावना शास्त्रानुमोदित है। पं० जी ने धानी के स्वरों के मध्यम तथा षड्ज को वादी-सम्वादी बताते हुए कनक किङ्किणी की कल्पना की है। मध्यम के वादित्व के कारण राग गम्भीर प्रकृति का हो गया है। शास्त्रीय विसंगति नहीं है तथापि जनप्रियता अभी प्रतीक्षित है।

कबीर भैरव राग के विषय में पं० विनायक राव पटवर्धन का कथन है—"यह भैरव अङ्ग का आधुनिक आविष्कार है। इस राग में ऋषभ और धैवत कोमल, दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। वादी-सम्वादी, मध्यम एवं षड्ज हैं। समय प्रातःकाल। सन १९७१ ई० में यह राग, राग-विज्ञान में प्रकाशित हो चुका है। अब तक प्रचलित नहीं हो सका।"

बरेली के डा० टी० आर० शुक्ल ने नव-राग-सृजन के प्रति विशेष उत्साह प्रदर्शित किया है। यमनी-केदार, यमनी-भैरव, श्री-वती, मधमादी, मेघदलन तथा वसंती-तोड़ी आदि इन नवीन सङ्कर रागों का संक्षिप्त परिचय इस भाँति है।

यमनी-केदार यमन तथा केदार का मिश्रण। **यमनी-भैरव**, यमन तथा भैरव का मिश्रण। **श्री-वती**, रागेश्री तथा कलावती का संयोग। **मधमादी कान्हड़ा** के विषय में श्री शुक्लजी का कथन है—थाट आसावरी। आरोह में गान्धार वर्जित होने से षाडव-सम्पूर्ण। मधमादि के स्वरों में म प ग म रे सा, करने से मधमादि कान्हड़ा हो जाता है। मध्यम और षड्ज वादी संवादी हैं। मध्य और तार सप्तक में गाया जाता है। गायन समय दिन का प्रथम प्रहर है। यह एक सुमधुर और नवनिर्मित राग है। आरोहावरोह के स्वर हैं—सा रे म प ध नी सां। सां नि ध प, म, ग म रे सा। इस राग का आरोह स्पष्ट रूप से जौनपुरी का है। अवरोह में कान्हड़ा का मिश्रण है। गायन समय संभवतः जौनपुरी की प्रबलता के कारण प्रातःकाल स्वीकृत किया गया है। इस संकर को जौनपुरी-कान्हड़ा न कहकर मधमादी कान्हड़ा सम्भवतः इसके मध्यम वादित्व के कारण कहा गया है।

राग मेघदलन—थाट, भैरवी। मध्यम, दोनों। जाति, षाडव। पञ्चम वर्जित। भैरवी, तोड़ी और ललित का मिश्रण। विवरण में कहा गया है—"मेघ राग की भाँति इसमें मरे मरे म यह स्वर प्रायः दिखाई देता है।" मेघ का ऋषभ शुद्ध है। इसे सम्भवतः भैरव थाट के जोगिया अथवा गुणकरी की भाँति बताया जाना अधिक उपयुक्त होता। कोमल ऋषभ संयुत म, रे को मेघ जैसा बताना बुद्धिगम्य नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वसंती-तोड़ी में शुक्लजी ने दोनों गान्धारों के प्रयोग द्वारा नवसृजन का प्रयोग किया है। सम्पूर्ण जाति। वादी धैवत तथा सम्वादी गान्धार है। कभी-कभी मं धृ रे सा, का प्रयोग करने को कहा गया है।

वसंत-मल्हार राग के विषय में श्री टी० आर० शुक्लजी का कथन है— "सर्वथा एक नवनिर्मित राग है एवं कुशलता पूर्वक गाने पर अत्यन्त मधुर एवं कर्णप्रिय है। थाट, काफी। निषाद दोनों। मियाँ मल्हार से मिलता-जुलता राग है, परन्तु मियाँ मल्हार मन्द्र तथा मध्य सप्तक में अधिक गाया जाता है। वसंत-मल्हार मध्य तथा तार सप्तक में गाया जाता है।" इस प्रयत्न में बहार का प्रभाव न आने देने की कोई तर्कीब नहीं बताई गई है। पुनः कहा गया है—"इस राग में बसन्त की भाँति, ध रें, सां, यह स्वर समुदाय अधिक दिखाई देता है।" शुद्ध स्वरों के ध रें सां, स्वर समूह को शुक्लजी बसन्त की भाँति कैसे मान लेते हैं? यह शोध का विषय है। कभी-कभी म ग॒, म ग॒ स्वरों के साथ 'म रे सा' स्वर लगाने को कहा गया है। कोमल गान्धार के साथ म ग॒ म ग॒ स्वरगुच्छ में शुक्लजी वसन्त का अनुभव करते-कराते हैं। आम आदमी के वश के बाहर है, यह अनुभूति। उस का संस्कार वसन्त के, मं ग मं ग, के स्थान पर इस नवीन योजना को शायद ही स्वीकार कर सके। मध्यम एवं षड्ज के संवाद को बताते हुए गायन समय रात का दूसरा पहर कहा गया है। पुनः कहा गया है—"वैसे इसे वर्षा व वसंत ऋतु दोनों में गा सकते हैं। इस प्रकार यह मौसमी राग भी है।"

अब तक की ज्ञात परम्परा के अनुसार संश्लिष्ट राग, प्रमुखता के आधार पर समय निश्चित कर के गाये जाते थे। जैसे बिलावल की प्रमुखता के कारण, यमनी बिलावल को केवल प्रातःकाल गाने का चलन है। भैरव-बहार जैसे राग भी शाम को नहीं गाये जाते। शुक्लजी वसंत-मल्हार को वसंत, वर्षा ऋतु तथा रात को गाये जाने योग्य बताते हैं। वसंत-मल्हार की दो बन्दिशें दोनों ऋतुओं के अनुकूल दी गईं हैं—जैसे, गरजन बरसन लागे घन और रंग मो पै डारी भरि पिचकारी।[१] ऐसे नव सृजन का मूल्याङ्कन शोध-विद्यार्थी के वश का नहीं है।

ममता—अब हम लगभग ६० वर्ष पूर्व रचित राग **ममता** की चर्चा करेंगे। इस के विषय में श्री कैलाश वृत्तिया, सङ्गीत, जून १९५६ ई० के पृ० २१, २२ पर विस्तृत चर्चा करते हुए कहते हैं—कहा जाता है कि स्वामी स्वरूपानन्द ने इस राग की सृष्टि की। मैहर के उस्ताद अलाउद्दीन ख़ाँ साहब ने भी इसका समर्थन

१. टी० आर० शुक्ल, *नवनिर्मित एवं अप्रचलित राग मञ्जरी एवं शास्त्र,* पृ० ८३, ९०, ९१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किया है। जाति औडुव। ऋषभ, मध्यम वर्जित। शेष स्वर शुद्ध। आरोह—सा ग प ध नि सां। अवरोह—सां नि ध प ग सा। वादी-सम्वादी, गान्धार तथा निषाद। प्रकृति गम्भीर। विशेष गति, मध्य और तार सप्तक में। थाट, अनिश्चित, बिलावल अथवा कल्याण? शङ्करा और यमन का मिश्रण। गमक का विशेष प्रयोग होता है। किन्हीं के मत से यह शङ्करा और मालश्री के मेल से बना है।'' लेखक इस मत को नकारते हुए कहते हैं—''लेकिन हमारे गुरु पूज्य पिताजी पं० बनवारी मिश्रजी जो कि हनुमान दास जी के घराने के प्रवीण गायक हैं, उन्होंने बतलाया कि ममता का स्वरूप और चलन इसी प्रकार होना चाहिए।'' इसी प्रकार अर्थात् एक अनिश्चित स्वर समूह। अन्त में श्री वृत्तिया ममता में यमन तथा शङ्करा के मिश्रण को मान्यता देते हैं।

ममता राग के विषय में लेखक पुनः कह रहे हैं—''ग्रन्थों में यमनी-शङ्करा नामक एक मिश्रस्वरूप पाया जाता है। उसमें भी इन्हीं स्वरों के साथ केवल ऋषभ का अल्प प्रयोग होता है। ऋषभ रहित होने के कारण ममता, यमनीशङ्करा से भिन्न हो जाता है साथ ही यमनी शङ्करा में तीव्र मध्यम का अल्प प्रयोग होता है। 'सङ्गीत' के जनवरी १९४० ई० के ताल अङ्क विशेषाङ्क में 'राजराग' नामक राग का परिचय पाया जाता है। इसको हंसराज ने नया राग बतलाकर इसका काल्पनिक नाम 'राज' रखा है। यह राज राग ठीक ममता के ही सदृश है। दोनों में कोई अन्तर नहीं। इसलिए पं० हंसराज का यह कहना कि यह राग उन्हीं की कल्पना है, ठीक नहीं, क्योंकि स्वामी स्वरूपानन्द ने बहुत पहले इस राग का आविष्कार कर 'ममता' नाम रखा।''

राग ममता का आविष्कार किसने किया? गायन समय कौन सा है? आदि प्रश्न अनावश्यक हैं। लगभग ६० वर्ष पूर्व रचित राग अब तक ग्रन्थ सीमित किस कारण से रह गया? श्री वृत्तिया इस विषय में मौन हैं। वे ममता के विषय में इतना और कहते हैं—''ममता के गाने का समय वास्तव में रात्रि का द्वितीय प्रहर ही उचित है, क्योंकि इसमें शङ्करा और यमन का संयोग है तथा इस का स्थान कल्याण थाट में होना चाहिए।''

सुहाग/सोहाग राग के रचयिता श्री ज० दे० पत्की हैं। सुहाग राग का परिचय देते हुए आप कहते हैं—''यह एक मधुर आधुनिक शोध है। इस राग में पञ्चम वर्जित, ऋषभ कोमल, मध्यम दोनों तथा शेष स्वर शुद्ध हैं। जाति षाडव है। मध्यम और षड्ज का सम्वाद है। रचयिता श्री पत्की महोदय द्वारा राग का विस्तृत परिचय, (संस्कृत श्लोक, दोहा, मराठी श्लोक) एकताल, त्रिताल तथा चौताल में गेय रचनाएँ आदि सहित चार पृष्ठों की विस्तृत सामग्री, सङ्गीत, अगस्त ५६ ई० के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अङ्क पृ० ९-१२ के माध्यम से सङ्गीत विद्यार्थियों तक पहुँचायी गई है। यह राग केवल ग्रन्थ सीमित रह गया है। इसके अन्य कारण जो भी हों किन्तु वादी की भ्रष्ट स्थिति एक प्रमुख कारण कही जा सकती है। श्री पत्की महोदय के अनुसार राग का वादी मध्यम है। वे पुनः कहते हैं—"सोहाग में शुद्ध मध्यम क्वचित् केवल विवादी रूप से वैचित्र्योत्पादन के लिए ही लिया जाता है। सोहाग का स्वरूप शुद्ध मध्यम न लेते ही दिखाया जा सकता है।" सम्भवतः नूतन-पुरातन समस्त राग-कुल में यही एक अभिनवा व्याख्या है जिसमें वादी स्वर को विवादी का स्थान देते हुए विलुप्त तक कर सकने की बात कही गई है।

गांधी-मल्हार—राग का परिचय देते हुए सङ्गीत, अप्रैल १९७० के पृ० ९ पर पत्रिका के सम्पादक महोदय कहते हैं—"हाल ही में 'गाँधी-जन्म-शताब्दी' के उपलक्ष्य में सुप्रसिद्ध सङ्गीतज्ञ कुमार गन्धर्व ने बम्बई के सरोद-वादक रत्नाकर व्यास के प्रोत्साहन तथा सहायता से नवीन राग गाँधी-मल्हार का सृजन किया है, जिसका सफल प्रदर्शन गत ३१ जनवरी को (गाँधी-निर्वाण-दिवस के अवसर पर) वे नई दिल्ली स्थित 'विज्ञान-भवन' में कर चुके हैं।"

'मल्हार' राग कुल १४ प्रकार का होता है, किन्तु 'गान्धी-मल्हार' नया पन्द्रहवाँ प्रकार है और कुमारजी के कथनानुसार यह अन्य सभी प्रकारों से श्रेष्ठ है, साथ ही कठिन भी। उनकी मान्यता है कि 'मल्हार' पुरुषार्थ का राग है, जीवन का राग है; अतः गान्धीजी के व्यक्तित्व एवं दर्शन को अभिव्यक्त करने के लिए इससे बेहतर कोई अन्य राग हो ही नहीं सकता था। पहले उन्होंने 'कल्याणी' राग का आधार लेना चाहा था, किन्तु फिर उसे शृङ्गारिक राग होने के कारणअनुपयुक्त समझकर छोड़ दिया।

इन्दौर के निकटवर्ती क़स्बे 'देवास' के निवासी ४४ वर्षीय कुमार गन्धर्व देश के उच्च कोटि के गायक हैं और लोक-सङ्गीत को शास्त्रीय-सङ्गीत की उन्नत शैली प्रदान करने के लिए विख्यात हैं। गाँधी-मल्हार के पहले भी वे ग्यारह स्वयंभू रागों की रचना कर चुके हैं, जो इस प्रकार हैं—मालवती, मघवा, संजारी, निदियारी, अहिमोहिनी, सहेली-तोड़ी, बीहड़-भैरव, भवमत-भैरव, मधुसुरजा, लग्न-गन्धार और राही। गाँधी-मल्हार उनकी बारहवीं भेंट है।

गाँधी-मल्हार राग में दोनों गान्धार एवं दोनों निषाद लगते हैं। मध्यम शुद्ध है। ऋषभ, धैवत शुद्ध हैं। 'ग-ध' तथा 'ध-ग' की सङ्गति महत्त्वपूर्ण है। आरोह-अवरोह वक्र है। शुद्ध गान्धार सम्पूर्ण आरोह-अवरोह में वक्र लेने से महत्त्वपूर्ण स्थान निर्माण करता है। गाँधी-मल्हार में यह शुद्ध गान्धार अत्यन्त सुन्दर, धीर-गम्भीर, शान्त और सन्तुलित रूप लेता है और यही राग का मुँह है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अवरोह में कोमल गान्धार है। इस पन्द्रहवें मल्हार-प्रकार का अपने रूप में सर्वापेक्षा स्वतन्त्र अस्तित्व है। इसकी राग-वाचक स्वरावली इस प्रकार है।

१. धगऽसा, रेसानि़ऽध़, नि़ऽसा।

२. गऽऽसाऽरेऽसा।

३. गगमपधगऽऽ, मपमऽगमऽगमऽगमपममऽरेऽसा।

४. सांऽध, नि म, पग, मप धग, मपमरे मरे मरे मपममऽरेसा।

● **आरोहावरोह स्वरूप**

प़ नि़ ध़ नि़ सा, म रे प, म प नि ध नि सां।

सां ध नि म प ग, म प ध ग, म प म-ग म-ग म-ग म प

म म-रे सा, (सा)ग सा, प़ नि ध़ ग-सा, रे सा, (रे)स, नि़, ध़, नि़, सा, (नि)सां।

सम्पादक की पंक्तियों के पश्चात् राग-परिचय स्वयं श्री कुमार गन्धर्व द्वारा दिया गया है। विस्तृत स्वर-विस्तार, तथा बड़े और छोटे ख़्याल की बन्दिशों और तानों के साथ परिचय देने पर भी 'गाँधी-मल्हार' मात्र स्मारक राग होकर रह गया है। सम्भवत: कुमारजी की विशिष्ट गायन-शैली शिष्य एवं अन्य लोगों को दुर्गम प्रतीत हुई। स्वयं कुमारजी इस मल्हार प्रकार को क्लिष्ट कह चुके हैं।

उत्तर भारत में आज पाँच प्रकार के राग प्रचलित हैं। प्रथम प्रकार के राग हैं—भैरव, मालकोश और श्री आदि। लोकधुनों पर आधारित देश तथा तिलक कामोद जैसे राग दूसरे प्रकार में हैं। दो, तीन (अधिक भी) रागों के मिश्रण नट-भैरव, अहीर-ललित, तिलक-श्याम एवं भैरव-बहार जैसे राग तीसरे प्रकार में आते हैं। दक्षिण से आये कीरवाणी, वाचस्पति एवं सिंहेन्द्र मध्यम आदि राग चौथे प्रकार में आयेंगे। पाँचवें प्रकार में मूर्च्छना प्रक्रिया पर आधारित राग आयेंगे। पं० रविशङ्कर ने इस विधा को कामेश्वरी, गङ्गेश्वरी आदि रागों के माध्यम से पुनः परिचित कराने का प्रयत्न किया है।

जैसा कि सभी जानते हैं किसी राग के पूर्वाङ्ग के स्थान पर उत्तराङ्ग को या उत्तराङ्ग के स्थान पर पूर्वाङ्ग को प्रबल कर देने से तथा मूर्च्छना-पद्धति के सिद्धान्तों से नवीन रागों की कल्पना सम्भव है। १४ दिसम्बर १९६९ ई० को पं० रविशङ्कर ने वृन्दावन के 'निधिवन' में सर्वप्रथम 'परमेश्वरी' राग की श्रोताओं के सम्मुख अवतारणा की। परमेश्वरी की कल्पना का आधार बना राग सरस्वती। पं० जी ने सोचा कि सरस्वती उत्तराङ्ग प्रधान राग है। 'प ध सां, नि ध प, सां नि ध प' का अङ्ग इसमें प्रबल है। यदि इसके स्थान पर पूर्वाङ्ग को प्रबल कर दिया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाए तो? पं० जी ने यही किया। ऋषभ को वादी तथा पञ्चम को सम्वादी बना कर उन्होंने इस नवरूप का नामकरण किया 'कामेश्वरी'।

पं० जी के मस्तिष्क में नवजात 'कामेश्वरी' राग था। अचानक सूझ आई कि इसमें भी ऋषभ को प्रबल कर के क्यों न बजाया जाए? फिर क्या था, कामेश्वरी के 'रे मं प ध नि सां रें' का स्वरूप 'सा ग म प ध नि सां' हो गया। पं० जी ने इसे मध्यम स्वर को वादी बनाकर बजाया। राग के प्रभाव से उपस्थित लोगों में से अनेकों के नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था, ऐसा स्वयं पण्डित जी का कथन है। पं० जी ने इस राग का नामकरण 'गङ्गेश्वरी' किया।

सन्ध्या का समय था। पं० जी ने गङ्गेश्वरी के 'म प ध नि सां गं मं' को 'सा रे ग म प नि सां' बना दिया। यह राग भी अत्यन्त मधुर बन गया। पं० जी ने इस राग को 'रङ्गेश्वरी' कहा। त्रिवेन्द्रम के एक होटल में पं० जी का सितारवादन हुआ। उन्होंने 'रङ्गेश्वरी' के ऋषभ को प्रारम्भिक स्वर मान कर उस के 'रे ग म प नि सां रें' को 'सा रे ग म ध नि सां' बना लिया। इस प्रकार इस राग में, बागेश्री, अहीर भैरव, बिलासखानी और शुद्ध भैरवी का मिश्रण स्वतः ही हो गया। इस में वादी स्वर मध्यम रखा और सम्वादी षड्ज। इसके प्रभाव से समस्त श्रोताओं को ही नहीं, वरन् स्वयं पण्डितजी को भी अश्रुपात् होने लगा। पं० जी ने इस राग का नामकरण 'परमेश्वरी' किया। उन्होंने इस राग की रूपक ताल में एक गीत की रचना भी वहीं की। जिसका स्थायी है—मातेश्वरी, परमेश्वरी, अरज सुनो मोरी। अन्तरा है—हम तो मूरख सन्तान माँ, पैयाँ परूँ अब तोरी, मातेश्वरी। यह घटना ७ दिसम्बर ६९ की है। इस प्रकार 'परमेश्वरी' राग भारत में सर्वप्रथम त्रिवेंद्रम में बजा।[१]

नवनिर्मित रागों के विषय में निम्नलिखित प्रश्नोत्तर द्रष्टव्य है—''प्रश्न—राधू[२] बाबू ने कई नये राग भी बनाये थे, जैसे अरुणकेदार, आभाश्री, मोहनकल्याण, ललिता दीप कल्याण, अलकनन्दा. दीपावली, चन्द्रमल्हार, शाहीकानड़ा, और मङ्गल बिलावल। इन रागों में कोई भी राग लोकप्रिय नहीं हुआ। क्या आप ये राग गाते-बजाते हैं? और क्या आपने ख़ुद भी कोई नए राग बनाये हैं?

बुद्धदेव[३]—मैंने राधू बाबू से अरुणकेदार, मोहन कल्याण, चन्द्र मल्हार, ललिता दीप कल्याण, और मङ्गल बिलावल सुने थे। ये राग वे कभी-कभी

---

१. भगवतशरण शर्मा, *पं० रविशङ्कर और उनके कुछ राग,* सङ्गीत, अप्रैल १९७० ई०, पृ० ३४, ३५, ३६

२. राधूबाबू, कलकत्ते के प्रख्यात सरोदवादक श्री राधिका मोहन मैत्र।

३. बुद्धदेव, मैत्र के प्रमुख शिष्य।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बजाते थे। एक और राग 'शुद्धरंजनी' भी वे बजाते थे राग यमन से पञ्चम निकालकर अगर दोनों मध्यम लगा दें तो वह 'मोहन कल्याण' हो जाता है। 'चन्द्रमल्हार' में राग 'मेघ' का आधार लिया गया है, और मध्यम पर विशेष ज़ोर है। राग 'अरुण केदार' में 'वृन्दावनी सारङ्ग' और केदार का मिश्रण है, और उसका स्वर समूह—सारे, मरेसा, मप निसा रेसा, मगरेसा है। इसी तरह उनका एक और राग 'हरसिंगार' है जो गम पनिसां, ध स्वरसमूह में 'विहाग' के आस-पास घूमता हुआ राग 'खमाज' का ही रूपान्तर है। मैंने नए राग बनाने की कोशिश नहीं की। क्योंकि पहले से चला आ रहा हमारा राग-सङ्गीत स्वत: पर्याप्त रूप से समृद्ध है।

प्रश्न—उस्ताद अमजद अली ख़ाँ ने अनेक नए राग बनाए हैं और उस्ताद अली अकबर ख़ाँ का राग 'चन्द्रनन्दन' तो हमारे वक्त की ही देन है। फिर नए राग अपना मुक़ाम कैसे क़ायम नहीं करते?

बुद्धदेव—आपकी बात सही है। मैं नए राग कही जानेवाली धुनों के बारे में तो नहीं कहता। लेकिन अली अकबर साहब का राग 'चन्द्रनन्दन' सचमुच ऐसा राग है, जिसे उनके घराने के लोगों ने और घराने के बाहर के कलाकरों ने भी अपनाया और वह काफ़ी लोकप्रिय भी हुआ है। उम्मीद है 'चन्द्रनन्दन' अगले सौ सालों में स्थायी रागों में शामिल हो जायेगा।

प्रश्न—पं० रविशङ्कर का राग 'परमेश्वरी' भी बहुत लोकप्रिय हुआ है, और अन्य घरानों वाले भी उसे गा-बजा रहे हैं।

बुद्धदेव—वस्तुतः सच्चा राग़ वही कहला सकता है, जो कम से कम दो पीढ़ियों तक चले, और जिसे दूसरे घरानों के कलाकार भी अपनायें। इस कसौटी पर सिर्फ़ 'चन्द्रनन्दन' ही खरा उतरता है। सिर्फ सरगम के मेल-मिलाप से ही नया राग नहीं बन जाता। हमारे पुराने रागों में मानव के मनोभावों को पकड़कर उस के मर्म तक पहुँचने की जो क्षमता है, वह नए रागों में नहीं दिखाई पड़ती। बन्दिशों की अलग-अलग गतों में किसी गत का विस्तार करते हुए उसे राग कहते जाने से उसे नया राग कैसे मान लिया जाएगा?[1]

✤

१. *छायानट*, अङ्क ७०, जुलाई-सितम्बर, १९९४ ई०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१४

राग, समय और मुद्रित सङ्गीत

अब तक राग के एकाधिक पक्षों की चर्चा की गई है। किन्तु बहु आयामी, बहुरंगी राग एतावन्मात्र नहीं है। राग के ये कुछ अन्य पक्ष भी अवलोकनीय हैं।

भौतिक दृष्टि से राग कुछ चुने-गिने स्वरों का समूह है। जिसे आरोह-अवरोह, वादी-संवादी, लय-ताल आदि नियमों का पालन करते हुए गाकर आपेक्षित रसानुभूति की और जन समूह को करायी जा सकती है। किन्तु मात्र नियमानुकूल गायन से अभीप्सित रस की निष्पत्ति में असफल होने पर इस का कारण राग का असमय प्रयोग पाया गया। घूम-फिरकर प्रसङ्ग पुनः रस की ओर आ गया है जिसे पिछले पृष्ठों में हम अत्यन्त दुरूह जान कर आगे बढ़ आये थे। भले दुरूह की स्थिति में कोई अन्तर न आये पर उसकी परिक्रमा करके हमें कुछ निकटता का लाभ होगा। अधिक नहीं तो कुछ उत्साही जिज्ञासुओं का उत्साह वर्धन तो होगा ही।

समय—पं० विष्णुनारायण भातखण्डे का कथन है—"रागों का समय निर्धारित करने में अपूर्व चातुर्य अन्तर्हित है। यह विषय विवादग्रस्त है। मैं भी उन्हीं लोगों में से एक हूँ जो यह कहते हैं, कि अमुक राग अमुक समय पर अधिक शोभन होगा। मैं जिस पद्धति का विवेचन कर रहा हूँ उसमें समय का महत्त्व स्वीकार किया गया है। पूर्वाङ्ग तथा उत्तराङ्ग (प्रधान) रागों के विषय में मैंने पहले भी सङ्केत किया था। मैंने यह भी कहा था कि रात्रि के पूर्व भाग में प्रायः ऐसे राग गाये जाते हैं जिनमें (सप्तक के) पूर्वाङ्ग का कोई स्वर वादी होता है। मध्य रात्रि के पश्चात् उत्तराङ्ग का प्राबल्य है। एक साधारण नियम याद रखो कि सा, म, प ये स्वर चाहे जिस समय वादी हो सकते हैं। राग, नियमित समय पर अपना प्रभाव अधिक सन्तोषप्रद रीति से व्यक्त करते हैं। समय के नियम को परिस्थिति के अनुसार शिथिल कर देने की प्रथा पूर्वकाल से प्रचलित दिखाई देती है। दर्पण का मत है—निर्दिष्ट समय पर नियमानुसार रागों का गान करना चाहिए। राजा की आज्ञा से बिना काल का विचार किए गान करे।[१] तरङ्गिणीकार

---

१. यथोक्तकाल एवैते, ज्ञेया पूर्वविधानतः ।
राजाज्ञया सदागेया, न तु कालं विचारयेत् ॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का भी यही सङ्केत है। दस बजे रात के बाद सारे राग गाये जा सकते हैं। रङ्गभूमि में और राजा की आज्ञा से गान करने पर कालदोष नहीं होता।[१] किन्तु अभी तुम 'समयानुसार आरम्भ किया गया राग, रंजक होता है'[२] इतना ही स्वीकार कर के आगे बढ़ो।

राग गायन के उक्त नियम रात-दिन के २४ घण्टों के विषय में सूचित करते हैं। इनके अतिरिक्त बसन्त, बहार जैसे राग और होरी जैसे लोक-गीत मात्र ऋतु सीमित हैं। इस प्रकार मल्लार के सभी प्रकार केवल वर्षा ऋतु में गाये जाते हैं। राग-परिवार के शेष रागों को छहों ऋतुओं में मुक्त रूप से गाने की प्रथा है।

सन्धि प्रकाश—रागों का एक वर्ग सन्धि प्रकाश नाम से वर्गीकृत है। यह समय सूर्योदय और सूर्यास्त के कुछ पहले से प्रारम्भ होकर कुछ देर बाद तक रहता है। प्रात:कालीन राग प्राय: भैरव और सन्ध्याकालीन राग पूर्वी थाट से सम्बद्ध हैं। यहाँ यह कहा जाना उचित है, कि राग गान के समय-निर्धारण में विद्वानों ने अनेक प्रयत्न किए हैं तथापि जनरुचि, देशाचार, रङ्गभूमि की आवश्यकता आदि के प्रभाववश नियमों में जब-तब शिथिलता देखी जाती है। भैरवी राग शास्त्र के अनुसार दिन के प्रथम भाग में गाया जाना चाहिए। किन्तु इसे गाकर गायन समाप्त करने की प्रथा ने भैरवी राग को समय-सीमा से मुक्त कर दिया है। ऐसा दूसरा राग पीलू है। शास्त्र की दृष्टि से पीलू दिन के चौथे पहर में गाया जाता है, परन्तु भैरवी और पीलू इन दोनों रागों में गायक, कोमल और तीव्र सभी स्वरों का प्रयोग कर लेते हैं। इसी कारण ये राग समय सीमा से मुक्त हैं। यहाँ यह कहा जाना आवश्यक है कि यह मुक्ति उच्छृङ्खलता का पर्याय नहीं है। आज भी प्राय: दोपहर के बाद भैरवी और दोपहर से पहले पीलू नहीं सुना जाता है। यह सुखद आश्चर्य है कि देशी सङ्गीत का लक्षण बताते हुए कहा गया है— 'कामाचार प्रवर्तित्वं देशीत्वम्' किन्तु शास्त्रीय सङ्गीत का कामाचार अत्यन्त मर्यादित है। सर्वथा विनम्र।

यन्त्रित सङ्गीत—अमेरिका के श्री एडिसन ने सन १८८० ई० में ग्रामोफोन का आविष्कार किया। इस से सङ्गीत के प्रयोग पक्ष को सुरक्षित रखने, इसे बार-बार सुनने की सुविधा प्राप्त हुई। रिकार्डो की समय सीमा ने सङ्गीत की नवीन समय-समस्या खड़ी की। शुरूआती दौर के रिकार्ड मात्र दो-ढाई मिनट में समाप्त हो जाते थे। तत्कालीन मनोविज्ञानियों का विचार था कि

---

१. दशदण्डात्परं रात्रौ, सर्वेषां गानमीरितम्।
रङ्गभूमौ नृपाज्ञायां, कालदोषो न विद्यते॥
२. यथाकाले समारब्धं गीतं भवति रंजकम्।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो–ढाई मिनट से अधिक समय तक एकाग्र होकर सुना नहीं जा सकता अतः रिकार्ड की यही अवधि उपयुक्त समझी गई। बीसवीं शती के साथ ही ग्रामोफोन भारत के मुम्बई और कलकत्ता जैसे बड़े नगरों में आ पहुँचा। शास्त्रीय सङ्गीत के कलाकारों को अपने गायन–वादन के रिकार्डों को मात्र दो–ढाई रुपयों में बिकता देखना अपमानजनक लगा। सबसे प्रमुख समस्या थी आलाप और तान प्रधान शास्त्रीय सङ्गीत के संक्षिप्तीकरण की। दोनों पक्षों ने प्रयत्न किया। रिकार्ड साढ़े तीन से पाँच मिनट तक के बनाये जाने लगे। गायक–वादकों ने कभी केवल रागालाप, कभी केवल विलम्बित और कभी केवल द्रुत लय में रागों के उदाहरण प्रस्तुत किए। विज्ञान के इस अवदान ने सङ्गीत–जगत् की अद्भुत सहायता की। अभूतपूर्व।

प्रसारित सङ्गीत—ब्रॉडकास्टिंग का प्रादुर्भाव तब हुआ जब इटली के मारकोनी ने बेतार–सञ्चार सम्बन्धी अपने आविष्कार को इंग्लैण्ड में (ब्रिटिश पेटेण्ट संख्या १२०३९) जून, सन १८९६ ई० में रजिस्टर्ड करवाया। इंग्लैण्ड, यूरोप और अमेरिका सभी ने प्रसारण की क्षमता को अपने प्रयोग तक सीमित रखने के यत्न किये। परन्तु यह शक्तिशाली सञ्चार माध्यम सारे संसार में फैल गया। वस्तुतः गुप्त न रह सकना ही प्रसारण की विशिष्ट क्षमता अथवा शक्ति है।

भारत में प्रसारण को सञ्चार का जादुई माध्यम और मनोरंजनपूर्ण माना जाता रहा। सन १९२४ ई० में बम्बई और मद्रास में रेडियो क्लब बने। परन्तु, बम्बई में प्रसारण का सङ्गठित काम १९२७ में ही आरम्भ हुआ। शीघ्र ही यह अपरिपक्व लोगों के हाथ से दूरदर्शी और व्यापार कुशल लोगों के हाथों में आ गया, और उन्होंने २३ जुलाई १९२७ को बम्बई में रेडियो–स्टेशन की स्थापना के लिए वायसराय को आमन्त्रित किया। यह सादा परन्तु प्रभावशाली समारोह था और रेडियो हाउस, अपोलो बन्दर नामक स्थान पर हुआ था। यह प्राइवेट कम्पनी 'इण्डियन ब्रॉडकास्टिंग लि०' का अपना व्यवसाय था। इस व्यवसाय के आयोजकों में से सर इब्राहिम रहीमतुल्ला ने भविष्यवाणी करते हुए ठीक ही कथा था कि—बम्बई स्टेशन भारत में आरम्भ होने वाली शृङ्खला का पहला स्टेशन है और मुझे आशा है कि एक दिन यह सारे भारत में सुना जा सकेगा। इस रेडियो स्टेशन से पहला प्रसारण १.५ कि० वा० के ट्रान्समीटर पर उस दिन शाम ६.०० बजे हुआ था।

बम्बई में सभी देशों के लोग रहते हैं, इसलिए पाश्चात्य सङ्गीत का प्रबन्ध किया गया। सुप्रसिद्ध रचनाकार और सङ्गीतविद् श्री वाल्टर कौफमान पाश्चात्य सङ्गीत कार्यक्रमों का संयोजन और निर्देशन करते रहे। आकाशवाणी की प्रारम्भिकं धुन श्री कौफमान की ही बनायी हुई है—जिसकी अधिकांश अन्य प्रसारण संस्थानों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है। इसे हम प्रतिदिन सुनते हैं। इसे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

माधुर्य और तादात्म्य के नियमों पर बनाया गया है। इसकी रचना में तानपूरा, वायलिन और वायोला का उपयोग हुआ है। यह वस्तुतः अद्‌भुत है और दैवी शक्ति सम्पन्न रचनाकार की अनुपम कृति है।

बम्बई उत्तर भारत के शास्त्रीय सङ्गीत का गढ़ रहा है और अब भी है। अधिकांश कलाकार इसी क्षेत्र से सम्बन्धित रहे हैं और इसी लिए बम्बई स्टेशन शास्त्रीय सङ्गीत के लिए प्रसिद्ध हो गया। कोई भी ऐसा सुप्रसिद्ध सङ्गीतज्ञ नहीं था जिसने अपने मधुर सङ्गीत को बम्बई से प्रसारित न किया हो। बम्बई रेडियो केन्द्र को शास्त्रीय सङ्गीत के कार्यक्रमों के कारण सम्मान प्राप्त हुआ। इसका श्रेय दैवी-प्रतिभा सम्पन्न सङ्गीतज्ञ, रचनाकार, बाँसुरी वादक तथा सङ्गीत के सम्बन्ध में अनुशासन प्रिय श्री दिनकर राव अमेमबल को है। उन दिनों यह बात प्रसिद्ध थी, कि आप म्यूज़िक स्टूडियो में जाकर अपनी आवाज़ के अनुरूप तानपूरा उठाइये और कार्यक्रम आरम्भ कर दीजिये। यह साफ और आप की आवाज़ के अनुरूप ट्यून किया हुआ होगा। ऐसा अकारण नहीं था। नये-पुराने सभी सङ्गीत कलाकार इस त्रुटिरहित व्यवस्था के कारण बम्बई रेडियो से कार्यक्रम प्रसारित करने में गौरव समझते थे।

१९५४ ई० में बम्बई रेडियो स्टेशन को ५० कि० वा० का शक्तिशाली ट्रांसमीटर मिला। इससे पहला गाना मराठी रङ्गमञ्च के महान् गायक बालगन्धर्व का प्रसारित किया गया। यह समारोह मलाड में शामियाना लगाकर किया गया था, जहाँ ट्रांसमीटर लगा है।

बम्बई आकाशवाणी को उस चुनौती का भी सामना करना पड़ा जब सङ्गीत के कलाकारों को स्वर-परीक्षा के लिए बुलाने का निश्चय किया गया। इसके लिए कलाकारों की योग्यता और तर्क सङ्गत परीक्षण प्रणाली अपनानी आवश्यक थी। उस समय श्री वी० पी० भट्ट स्टेशन डायरेक्टर थे। उन्होंने कलाकारों की शिकायतों और नाजुकमिज़ाजी के प्रश्न को बुद्धिमत्ता से सुलझाया।[१]

रिकार्ड और रेडियो बीसवीं शती में सङ्गीत की प्रत्येक विधा को घर-घर में पहुँचाने लगे। क्रमशः समय सीमा का विस्तार हुआ। अब कलाकार अपनी रचना को यथेष्ट समय देने को स्वतन्त्र हैं। पुस्तकों की भाँति अब अनेक राग सुरक्षित रखे जा सकते हैं। वर्तमान समय में अनेक नये राग बनाये जा रहे हैं। समय के साथ कुछ एक राग विस्मृति के गर्भ में चले गये हैं। अगले पृष्ठों में हम ऐसे नये-पुराने रागों की एक संक्षिप्त झाँकी देखेंगे।

---

१. के० डी० दीक्षित, कृतकार्य स्टे० डा० बम्बई, आकाशवाणी, १ अगस्त १९७७ ई०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१. रोशन आरा बेगम, छैलवा काहू सो ना डरे, मारू सारङ्ग
78 कोलम्बिआ VE 5553

२. उ० अब्दुल करीम खाँ, सोच समझ नादान, शुद्ध पीलू
LP कोलम्बिआ 33 ECX. 3251

३. पं० गोपेश्वर बनर्जी, सितार वादन, सिन्ध खमाज
78 ग्रामोफोन कंसर्ट रिकार्ड G-C-8-15217

४. ज्ञान सचल और साथी, शहनाई, गौड़ बिलावल
78 ट्विन F.T. 4054

५. नारायण राव अम्बाड़े, सितार वादन, कोमल भीमपलासी
78 हि०मा०वा० N. 5943

६. नारायणराव व्यास, ठाकुर तव शरणाई आयो, आसा
78 हि०मा०वा० N. 4138

७. बाई केशरबाई केरकर, देवी दुर्गे, कुकुभ बिलावल
78 हि०मा०वा० HQ 6

८. श्रीकृष्ण नारायण (S.N.) रत्नजङ्कर, लाजशरम, खंबावती
78 कोलम्बिआ GE 18137

९. ओम्कारनाथ ठाकुर, ए मग जइहो, चम्पक
78 कोलम्बिआ VE 1013

१०. ओम्कारनाथ ठाकुर, मितवा बालमवा, नीलाम्बरी
78 कोलम्बिआ VE 1014

११. ओम्कारनाथ ठाकुर, मालन लाई चुन-चुन, टङ्केश्री
78 कोलम्बिआ GE 3178

१२. अली अकबर खाँ, सरोद वादन, लङ्कदहन सारङ्ग
78 हि०मा०वा० N. 92591

१३. मुहम्मद खाँ, सितार वादन, नटनारायणी-मारूवसन्त
78 हि०मा०वा० N. 15913

१४. पं० रविशङ्कर, सितार वादन, यमन माँझ
78 हि०मा०वा० N. 87554

१५. इमरत हुसेन ख़ाँ, सितार वादन, जोग
LP हि०मा०वा० EASD 1345

१६. पं० जसराज, गायन, आ० वा० प्रसारण, हिजाज भैरव

१७. वसन्तराव देशपाँडे, गायन, नट भैरव
LP हि०मा०वा० ECSD 2746

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१८. पं० जसराज, गायन, नट भैरव

LP हि०मा०वा० ECLP. 2325

१९. उ० नियाज अहमद, फ़ैयाज़ अहमद, गायन, वैरागी भैरव

LP हि०मा०वा० ECLP. 2282

२०. उ० अब्दुल हलीम जाफर ख़ाँ, सितार वादन, अरज

हि०मा०वा० EASD 1397

२१. उ० लताफ़त हुसेन ख़ाँ, गायन, पटदीपकी

हि०मा०वा० ECSD 2759

२२. उ० बिसमिल्लाह ख़ाँ, शहनाई वादन, हंसकिङ्किणी

हि०मा०वा० EALP 1315

२३. उ० विलायत ख़ाँ, सितार वादन, बर्वा

हि०मा०वा० EALP 1298

२४. प्रो० बलवन्तराव शिवभक्त, गायन, धानी

ग्रामोफोन कॉन्सर्ट रिकार्ड, G. C. 4-12681

२५. उ० विलायत हुसेन ख़ाँ, गायन, धनाश्री

हि०मा०वा० 7EPE 1215

२६. उ० उब्दुल करीम ख़ाँ, गायन, नारीबहार

मराठी–देहाता शणागता, कोलम्बिया BEX. 256

२७. श्री सवाई गन्धर्व, गायन, धानी

हि०मा०वा० ECLP 2430

२८. पं० रविशङ्कर, सितार, सामन्त सारङ्ग

हि०मा०वा० EASD 1519

२९. उ० मुश्ताक़ हुसेन ख़ाँ, गायन, जँगला

23, 9, 76 का आकाशवाणी प्रसारण

३०. उ० अब्दुल करीम ख़ाँ, गायन, आनन्द भैरवी

कोलम्बिआ VE. 5004

३१. मल्लिकार्जुन मंसूर, गायन, रायसाकानड़ा, आडम्बरीकेदार

कैसेट, म्यूज़िक टुडे, A 91002

३२. पं० रविशङ्कर, सितार, आसाभैरव

म्यू० टुडे, A 91003

३३. उ० विलायत ख़ाँ, सितार, साँझ स्वरावली+माँड भैरव

म्यू० टुर्डे, A 95001

३४. परवीन सुल्ताना, गायन, मानवी

हि०मा०वा० STCS 850734

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३५. असद अली ख़ाँ, रुद्रवीणा, बड़हंस सारङ्ग, भिन्नषड्ज
म्यू० टुडे, ASAD–A 97014

३६. कुमारगन्धर्व, गायन, भवमत भैरव, मधुसूर्या
हि०मा०वा० STCS 850720

३७. पं० भीमसेन जोशी, गायन, जयजयवन्तीनट
म्यू० टुडे, A 97010

३८. पं० भीमसेन जोशी, गायन, बागेश्रीबहार, हिण्डोलित
म्यू० टुडे, A 97011

३९. उ० अली अकबर ख़ाँ, सरोद, प्रभाकली, कौसी भैरवी
1964 हि०मा०वा० EALP. 1286

४०. उ० अली अकबर ख़ाँ, सरोद, चन्द्रनन्दन, गौरी मञ्जरी, जोगिया कालिङ्गड़ा
म्यू० टुडे, L 97001 सिगनेचर

४१. उ० अली अकबर ख़ाँ, सरोद, मेधावी, भैरवी भटियार
म्यू० टुडे, L 97002 सिगनेचर[१]

भारत में रिकार्डिंग कम्पनी सन १९०२ ई० में आई। प्रस्तुत तालिका द्वारा हम बीसवीं शती के प्रचलित, विलुप्त और नवनिर्मित रागों के कुछ उदाहरण देखते हैं। ये उदाहरण जहाँ शोध विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करते हैं, वहीं कुछ प्रश्न भी उपस्थित करते हैं।

संख्या १ का मारूसारङ्ग और १३ का मारूबसन्त ये दोनों राग अब विस्मृति के गर्भ में जा चुके हैं। मारूविहाग मात्र प्रचार में है। 'मारू' विशेषण से क्या द्योतित होता है? मरुस्थल की लोकधुन से विकसित? स्वतन्त्र रागों में बहार की भाँति यत्र-तत्र मिलाया, गाया जाने वाला पूर्ण विकसित राग मारू कभी प्रचार में था?

संख्या २ का शुद्ध पीलू अब नहीं गाया जाता। वर्तमान पीलू के विकसित रूप से समाज परिचित है।

संख्या ३ का सिन्ध खमाज नाम, इसकी क्षेत्रीयता की पुष्टि करता है। ऐसे दूसरे नामों के राग सिन्ध काफी और सिन्ध भैरवी प्रचार में हैं। लेखक के शिक्षक उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ सिन्ध भैरवी राग को कसूरी भैरवी कहते थे। पञ्जाब का पश्चिमी इलाक़: कसूर नाम से प्रसिद्ध है।

संख्या ४ का राग गौड़ बिलावल, जनप्रिय नहीं हो सका। भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र में यह नाम आया है। नाममात्र। ऐसा प्रतीत होता है यह उन्हीं दिनों का नवविकसित राग था। रिकार्ड सीमित रह गया।

संख्या ५. का 'कोमल भीमपलासी' दोनों (तीव्र-कोमल) ऋषभों के

१. लेखक के निजी संग्रह से संगृहीत।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रयोग द्वारा प्रवर्तित किया गया था। आज का विद्यार्थी सम्भवतः यह नाम ही न जानता हो।

संख्या ६ का राग आसा पञ्जाबी लोकधुन से विकसित हुआ है। उदाहरण में लोकधुन की छाप स्पष्ट है। संख्या ३२ का राग 'आसा भैरव' इसी के मिश्रण से प्राप्त हुआ है।

संख्या ७ का राग कुकुभ बिलावल अल्प प्रचलित बिलावल प्रकार है। जयपुर घराने की गायकी का लगभग ७० वर्ष पूर्व का उदाहरण।

संख्या ८ का खंबावती अल्प प्रचलित रागों में रहता आ रहा है। ऐसा क्यों हुआ ? कुछ कहा नहीं जा सकता।

संख्या ९, १० तथा ११ के राग चम्पक, नीलाम्बरी और टङ्केश्री, क्रमशः अप्रचलित, अल्प प्रचलित और अपेक्षया प्रचलित हुए हैं।

संख्या १२ का राग लङ्कदहन सारङ्ग पं० वि० ना० भातखण्डे द्वारा चर्चित हुआ। किन्तु यह राग भी अल्पज्ञात रागों में है।

संख्या १३ का राग नटनारायणी भी प्रचलित रागों में नहीं है। पं० भातखण्डे ने नटनारायण नामक राग का वर्णन किया है।

संख्या १४ का यमन माँझ पं० रविशङ्कर की कल्पना का परिणाम है। गायकों द्वारा समादृत होने की प्रतीक्षा है।

संख्या १५ का राग जोग लगभग ५० वर्ष पूर्व प्रचारित हुआ अत्यन्त प्रचलित राग है। शास्त्रीय स्वर रूप में मतभेद है। ऋषभ और धैवत वर्जित स्वर हैं। कोमल-तीव्र दोनों गान्धारों का प्रयोग सर्वसम्मत है। किन्तु निषाद के प्रयोग में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान् जोग का वर्गीकरण काफी थाट में करते हैं। अतः वे इसमें केवल कोमल निषाद का प्रयोग करते हैं। इसके विपरीत कुछ गायक-वादक इसे तिलङ्ग राग में केवल कोमल ग समन्वित करके रचित मानते हैं। इस कारण वे राग में दोनों निषादों का प्रयोग करते हैं। अपनी रुचि अनुसार निषाद प्रयोग की सबको छूट है। इससे राग की लोकप्रियता में कोई फ़र्क़ नहीं आता।

संख्या १६ का हिजाज भैरव और संख्या १८ के नट भैरव में एक ही बन्दिश 'चढ़िए मुलक सुलतान' के गायक पं० जसराज हैं। इस प्रकार प्रतीत होता है दोनों नाम एक ही राग के हैं। पं० वि० ना० भातखण्डे (संगीत शास्त्र २, पृ० ३५०) ने इसका वर्णन करते हुए उसे मुसलमानी राग बताया है। यद्यपि उन्होंने इसे अप्रसिद्ध राग बताया है, तथापि कुछ संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित मतान्तरों की चर्चा में इसे हिजूजी, हेजज्जी आदि बताते हुए इसे भैरव थाट का प्रातर्गेय भैरव प्रकार कहा है। पं० भातखण्डे के ग्रन्थ में नटभैरव राग की कोई चर्चा न देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि नट भैरव परवर्ती नामकरण है। 'सङ्गीत भैरव अङ्क' सन १९५५ ई०, पृ० ७९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के अनुसार श्रीमती सोम तिवारी का कथन है—"हिजाज भैरव में केवल धैवत कोमल है, बाकी स्वर शुद्ध हैं। नट भैरव में भी शुद्ध ऋषभ तथा कोमल धैवत हैं किन्तु नट भैरव में कोमल निषाद भी लगाई जाती है। नट भैरव, नट तथा भैरव को मिलाकर बना है। हिजाज मिश्रित राग नहीं है।" इसके विपरीत भैरव अङ्क पृ० ९ के वर्णन में नट भैरव के वादी म, सम्वादी स को कहकर धैवत कोमल और शुद्ध निषाद के प्रयोग को स्वीकार करते हुए गायन समय प्रातःकाल बताया गया है। उक्त भैरव अङ्क (पृ० २०) में हिजाज के विषय में कहा गया है—धनि कोमल दोनों ऋषभ, मध्यम वादी राज। षड्ज जहाँ सम्वादी है, गावत राग हिजाज॥ इस हिजाज में निषाद कोमल और कोमल ऋषभ के प्रयोग को उचित बताया गया है। एक ही ग्रन्थ के पृष्ठ ७९ और २० में हिजाज के रूप में मतभेद है।

पं० विनायक राव पटवर्धन द्वारा सम्पादित राग विज्ञान भाग ७ (पृ० ७) में नट भैरव को यथानाम मिश्र राग कहकर मध्यम के बजाए पञ्चम को सम्वादी बताया गया है। यहाँ धैवत के सिवाय सभी स्वर शुद्ध हैं। राग विज्ञान में दो सौ छः रागों का वर्णन है किन्तु हिजाज का नाम नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है ग्रन्थकार ने हिजाज और नट भैरव को अलग नहीं माना। पं० जसराज का एक ही बन्दिश 'चढ़िये मुलुक सुल्तान' को दो नामों से प्रचारित करना भी इसी की पुष्टि करता है।

श्रीमती सोम तिवारी का यह कथन, "हिजाज़ को भारत में अमीर ख़ुसरो, मिश्र के प्रसिद्ध गवैये लाये थे" पर्याप्त भ्रान्तिपूर्ण है। मिश्र उत्तर-पूर्वी अफ्रीका का एक देश है। हिजाज़ अरब का वह प्रदेश है जहाँ मक्का और मदीना है।

अमीर ख़ुसरो के प्रसङ्ग में आचार्य बृहस्पति के शब्द हैं—"जिन लोगों ने अमीर ख़ुसरो के विषय में थोड़ा-बहुत भी पढ़ा है, वे यह बात भली भाँति जानते हैं कि अमीर ख़ुसरो भले ही तुर्क पिता की सन्तान हों परन्तु उनकी माता विशुद्ध व्रजवासिनी, भारतीय महिला थीं जिनके गर्भ से एटा जिले के परियाली नामक गाँव में अमीर ख़ुसरो का जन्म हुआ था। ख़ुसरो की मातृभाषा हिन्दी, पितृभाषा तुर्की, धर्मभाषा अरबी और राज्यभाषा फ़ारसी थी। वह अपनी मातृभाषा हिन्दी के परम भक्त थे।"[१] ख़ुसरो का जन्म वर्ष १२५० ई० है।

संख्या १९ का राग, वैरागी भैरव, पं० रविशङ्कर की कल्पना का प्रसाद है। गायक, वादक और श्रोता समादृत।

संख्या २० का राग, अरज, भैरव अङ्ग का अल्प प्रचलित राग है।

संख्या २१ का राग पटदीपकी काफी थाट का अप्रचलित राग है। भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र, भाग ४, पृ० १३९ में इसका वर्णन किया गया है।

---

१. आचार्य बृहस्पति, महान् भारतीय हृदय: अमीर ख़ुसरो, सा० हिन्दुस्तान ९ नवम्बर १९७५ ई०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संख्या २२ का राग हंसकिङ्किणी अप्रसिद्ध राग है। पं० भातखण्डे (सङ्गीत शास्त्र ४, पृ० १३२) ने इसके विषय में 'आजकल प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा है' लिखा है। काफी थाट का यह राग प्रचलित होकर अप्रचलित हो गया है।

संख्या २३ का राग बर्वा काफी थाट का अप्रचलित राग है। पं० भातखण्डे के ग्रन्थ, सङ्गीत शास्त्र में इसकी चर्चा नहीं है किन्तु पं० विनायक राव पटवर्धन द्वारा सम्पादित राग-विज्ञान भाग ६, पृ० ६४-६९ में बर्वा की बन्दिशें सङ्कलित हैं। लेखक को गुरुवर्य यूसुफ़ अली ख़ाँ द्वारा बर्वा की गतियाँ प्राप्त हुई हैं। संख्या २३ के उदाहरण को देखते हुए प्रतीत होता है, बर्वा क्रमशः अप्रचलित होता गया है।

संख्या २४ का रागधानी भी काफी थाट का ही है। ५ स्वरों, स ग म प नि, का राग धानी मींड रहित और चपल प्रकृति का होने के कारण शास्त्रीय गायक-वादकों द्वारा कम समादृत हुआ। नाटक कम्पनियों ने धानी राग का प्रयोग सहगान और भजन आदि में करके इसे अप्रचलित होने से बचाये रखा। सन १९३१ ई० में चलचित्रों में ध्वनि-संयोग के बाद धानी राग यदा-कदा सुनाई देने लगा। संख्या २७ का उदाहरण भी ५० वर्ष पूर्व का है।

संख्या २५ का राग धनाश्री अल्प प्रचलित वर्ग में आ गया है।

संख्या २६ का राग 'नारी बहार' कभी किसी ग्रन्थ में स्थान पा सका है, ऐसा नहीं लगता। सम्भवतः यह उस्ताद अब्दुल करीम ख़ाँ का अभिनव प्रयोग था जो केवल रिकार्ड सीमित रह गया।

संख्या २८ का राग सामन्त सारङ्ग अप्रचलित पारम्परिक राग है।

संख्या २९ का राग जँगला, सङ्गीत आसावरी अङ्क सन १९६१ ई० पृ० ६ पर इस भाँति वर्णित है। कोमल तीवर ग, ध, नि के दोऊ रूप सुहाय। सम्पूरन सम्वाद स प गुनी जँगला गाय॥ यह धुन प्रधान राग है। ठुमरी, टप्पा और ग़जल आदि गीत इसमें विशेष रूप से गाये जाते हैं। गायन समय रात्रि का तीसरा प्रहर है। स्पष्ट है यह लोक धुन परिष्कृत होकर राग पद तक नहीं पहुँच सकी।

संख्या ३० का राग आनन्द भैरवी उत्तरोत्तर विकसित हो रहा है किन्तु बहुप्रचलित होने में समय की अपेक्षा है।

संख्या ३१ का राग, रायसा कानड़ा, को पुराना नायकी कहा जाता है। संग्रह का दूसरा राग आडम्बरी केदार, शङ्करा और केदार राग के मिश्रण का परिणाम है।

संख्या ३२ के राग आसा भैरव की चर्चा हो चुकी है। संख्या ३३ के राग साँझ स्वरावली के रचयिता सितार वादक उस्ताद विलायत ख़ाँ हैं। साँझ स्वरावली राग खेम विहाग और कल्याण का मिश्रण है। माँड भैरव, नाम से ही स्पष्ट है।

संख्या ३४ का राग मानवी छः स्वरों का है। भूपाली राग, स रे ग प ध, पाँच स्वरों का है। इसमें कोमल निषाद संयुक्त करके मानवी राग की उपलब्धि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की गई है। राग में रञ्जन क्षमता है तथापि पूर्ण प्रतिष्ठित होने में समय की अपेक्षा है।

संख्या ३५ के राग, बड़हंस सारङ्ग और भिन्नषड्ज पारम्परिक हैं। सदैव अल्प प्रचलित।

संख्या ३६ के राग भवमत भैरव और मधुसूर्या पं० कुमार गन्धर्व की कल्पना के परिणाम हैं। आगामी दिनों में पण्डितजी द्वारा रचित अनेक नये राग इनके शिष्यानुशिष्यों द्वारा प्रचारित होकर एक नये घराने का प्रवर्तन करेंगे, ऐसा सङ्गीत प्रेमियों का विचार है।

संख्या ३७ का राग जयजयवन्ती नट, उक्त दोनों रागों का मिश्रण है। इसी भाँति संख्या ३८ के बागेश्री बहार एवं हिण्डोलित हैं। हिण्डोलित में दो प्रातर्गेय राग हिण्डोल एवं ललित अत्यन्त कुशलता रो मिलाये गए हैं।

संख्या ३९ के राग प्रभाकली और कौसी भैरवी सन १९६४ ई० में, हिज़ मास्टर्स वायस द्वारा प्रचारित किए गए। प्रभाकली राग उ० अली अकबर ख़ाँ द्वारा रचित है। लांग प्लेइंग रिकार्ड के कवर पर मुद्रित सूचना के अनुसार प्रभाकली प्रातर्गेय, औडुव सम्पूर्ण, भैरव थाट का राग है। इस के आरोहावरोह हैं—सा रे॒ म प ध॒ सां। सां नि ध॒ प म ग रे॒ सा। उक्त स्वरावली में पञ्चम को वादी तथा षड्ज को सम्वादी रखकर प्रातर्गेय सावेरी राग की रचना की जाती है। सावेरी राग पारम्परिक है। वादिभेदे रागभेदः, नियम के अनुसार राग प्रभाकली वादी-सम्वादी परिवर्तन से प्राप्त रागों का उत्कृष्ट नमूना है। कौसी भैरवी, मालवकौशिक तथा भैरवी का मिश्रण है।

संख्या ४० के राग चन्द्रनन्दन, गौरी मञ्जरी और जोगिया कालिङ्गड़ा उ० अली अकबर ख़ाँ द्वारा विरचित हैं। चन्द्रनन्दन, राग नन्दकौस, चन्द्रकौस, मालकोश तथा कौसीकान्हरा चार रागों का सुमिश्रण है। गौरी मञ्जरी राग में केवल कोमल ग स्वर वर्जित है। शेष ११ स्वरों के प्रयोग द्वारा गौरी मञ्जरी का प्रत्यक्षीकरण जन सामान्य के वश का नहीं है। राग, जोगिया—कालिङ्गड़ा राग मिश्रण का उदाहरण है।

संख्या ४१ के राग मेधावी और भैरवी भटियार के रचयिता उ० अली अकबर ख़ाँ हैं। राग मेधावी में लूम, हमीर और मलूहा केदार तीन रागों का मिश्रण है। राग भैरवी भटियार, उक्त दो रागों का मिश्रण है।

✤

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

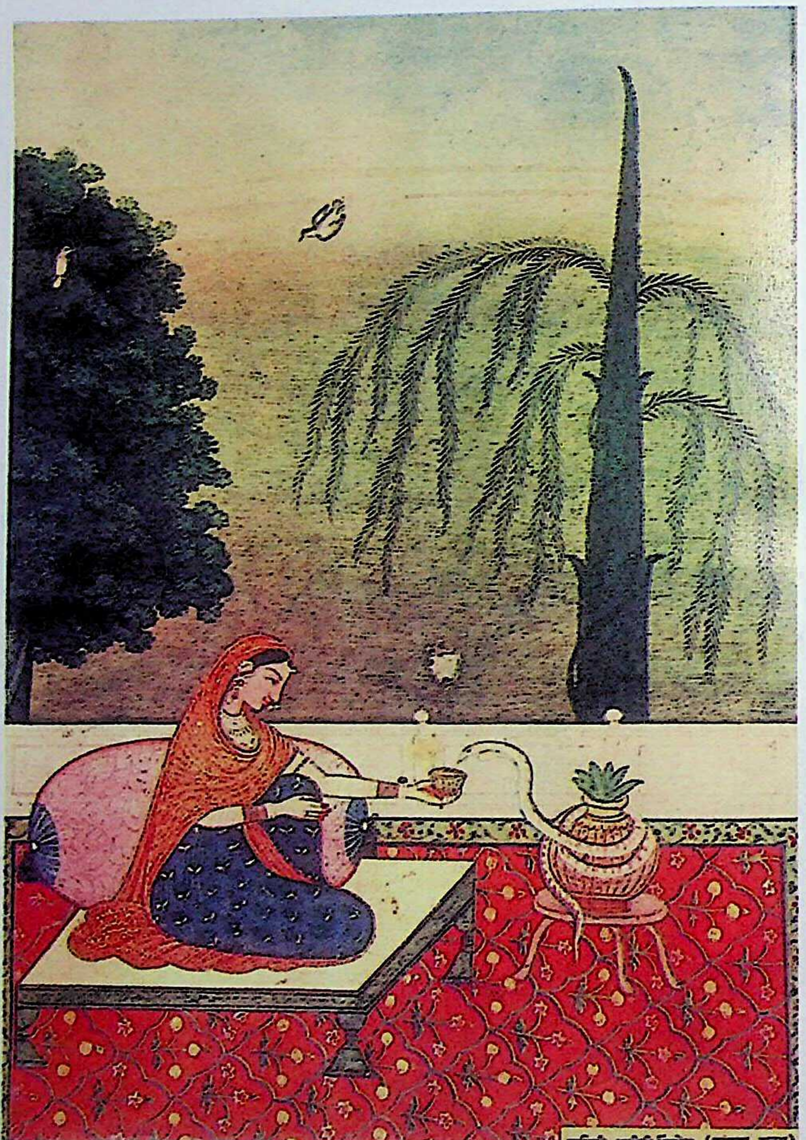

रागिनी अहीरी हिण्डोल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१५

चित्र-चर्चा

आकार, निराकार की अभिव्यक्ति का माध्यम है। फलतः स्वरों को अक्षरों के सहारे देखा-लिखा जाने लगा। षड्ज, मध्यम एवं पञ्चम आदि लिखते-पढ़ते सङ्गीत का विद्यार्थी उक्त निराकार स्वरों के ध्वनिरूप को पहचानने, उनका यथेष्ट प्रयोग करने में समर्थ होता है। इसी भाँति निराकार स्वरों के प्रभाव की चर्चा में स्वरों के रंगों को स्वीकृति मिली होगी। अनुभूति के आधार पर वर्णित स्वर के रंग अब विज्ञान द्वारा प्रमाणित किये जा चुके हैं।

वर्तमान सङ्गीत देवालयों और राजदरबारों द्वारा पोषित है। अतः राग-रागिनियों के चित्रों में भक्तिकाल और रीतिकाल का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जाता है। पिछले पाँच-छः सौ वर्षों में रचे सङ्गीत ग्रन्थों के ध्यान-श्लोकों के भावार्थ चित्रित किए गये हैं। श्लोक के पाठभेद के कारण यत्र-तत्र चित्रों में भेद है। बीसवीं शती के दूसरे-तीसरे दशक में राग, रागिनी, रागपुत्र का वर्गीकरण अस्वीकृत करके समस्त रंजक स्वर-सन्निवेशों को केवल राग कहा जाने लगा। सङ्गीत के व्याकरण की दृष्टि से यही सर्वथा उचित था। किन्तु व्याकरण का अनुशासन राग के बाह्य कलेवर तक सीमित रह गया। राग रस के पारखी श्रोता, और साधक दोनों ने अपनी रसानुभूति को वरीयता देते हुए आजतक राग-रागिनी वर्गीकरण को बरक़रार रखा है। रसिकजनों को भैरव राग में शृङ्गार रस की अनुभूति नहीं होती। रागिनी भैरवी का सम्बन्ध आज तक वीर रस से नहीं जुड़ सका है। शास्त्राद्रूढिर्बलीयसी का नियम यहाँ पूरी तरह से चरितार्थ है। राग गाये जा रहे हैं। राग-रागिनियों के चित्र बनाये जा रहे हैं। संग्रहालयों में ऐसे चित्रों की पूरी सुरक्षा की जा रही है। उपलब्ध चित्रों के माध्यम से तत्कालीन राग और रस के सम्बन्धों का अध्ययन सम्भव है। हमें प्राप्त कुछ ध्यान और चित्रों का विवरण इस भाँति है।

१. रागिनी, अहीरी हिण्डोल। स्वयं चौकी पर विराजमान है। सामने तिपाई पर रखे, स्वर्णकलश में लिपटे नाग को बायाँ हाथ बढ़ाकर कटोरी में दूध पिला रही है। वर्तमान शती के सङ्गीत ग्रन्थों में शायद ही यह नाम दिखायी दे। उक्त रागिनी प्रचार में नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२. रागिनी, मल्लारी। चित्रकार जगदीश वर्मा। आधुनिक पेन्टिंग। सम्भवत: किसी प्राचीन चित्र का नवीनीकरण है। परिचायक पंक्ति इस भाँति है—रुदन करत फिरै, धीरज उधरे पुनि पिय गुन जपन कूँ माला कर धारी है। ध नि स ग म भुवन धैवत सुर, जाति औंडों ध्वनि स बरखा गुनी मलहारी सुनारी है।

३. रागिनी तोड़ी। प्राचीन पेन्टिंग। पारम्परिक ध्यान के अनुसार वीणा वादिका। हिरन समूह को आकर्षित करती हुई।

४. रागिनी कुकुभ। उत्तर १७वीं शती। राजस्थानी शैली। मोरों से घिरी, दोनों हाथों में दो फूलों के हार लिये खड़ी है। सम्भवत: पति के स्वागत की प्रतीक्षा कर रही है।

५. राग मेघ। भगवान् कृष्ण हाथ में वीणा लिये, गोपियों से घिरे खड़े हैं। एक गोपी की कमर में मृदङ्ग बँधा है। दूसरी कन्धे पर वीणा लिये है। दो गोपियाँ नृत्य मुद्रा में हैं।

६. रागिनी केदार। ब्रह्मा के मत से श्री राग की रागिनी। हनुमान् मत से दीपक राग की रागिनी। पुरुष वेश में चित्रित तपस्विनी नारी। वियोगिनी। युवराजों की अध्यात्म शिक्षिका।

७. रागिनी देवगान्धारी, गान्धारी या देवगान्धार। हिण्डोल राग की रागिनी। वियोगिनी। प्रिय की प्राप्ति हेतु तपस्यारत।

८. रागिनी मालश्री। प्रियतम की अनुपस्थिति के कारण खिन्न। भैरव राग की रागिनी। हताश नायिका को अन्तरङ्ग सहचरी सान्त्वना दे रही है।

९. रागिनी गुनकली। भैरव की रागिनी। प्रियतम के आगमन पर माल्यार्पण को उत्सुक, हार के लिए फूल चुनती हुई।

१०. रागिनी पूर्वी। दीपक राग की रागिनी। अद्वितीय सुन्दरी, युवती, प्रिय की प्रतीक्षा में विरहकातर। कातरता सिर के ऊपर उठकर जुड़े हाथों द्वारा प्रदर्शित की गई है। अन्तरङ्ग सखियाँ धैर्य बँधा रही है।

११. ललिता (ललित) रागिनी के चित्र तीन प्रकार से चित्रित देखे जाते हैं। उपलब्ध प्रकार में, प्रिया प्रियतम को सूर्योदय के कारण शय्या त्यागकर जाते हुए जानकर, विमनस्क, मुँह फेरकर लेटी हुई विछोह के प्रति विरक्ति प्रकट कर रही है।

१२. आसावरी रागिनी को प्राय: बीन बजाकर साँपों को पकड़कर खेलते चित्रित किया गया है। प्राप्त चित्र में यह दो साँपों को हाथ में लिये बैठी है। दो सखियाँ सामने बैठी बीन बजा रही हैं। फन उठाये फ़र्श पर रेंगते दो साँप आसावरी की ओर बढ़ रहे हैं। आसावरी साँवली है। सखियाँ गोरे रंग की हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

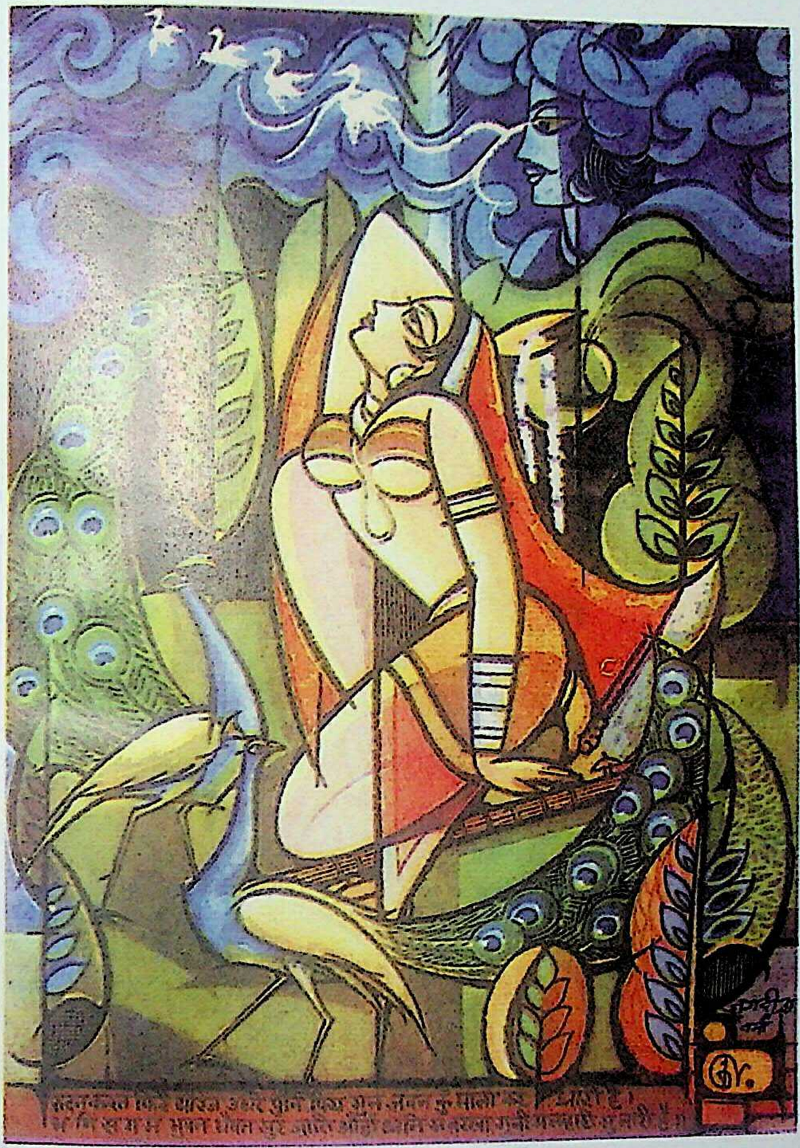

रागिनी मल्लारी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

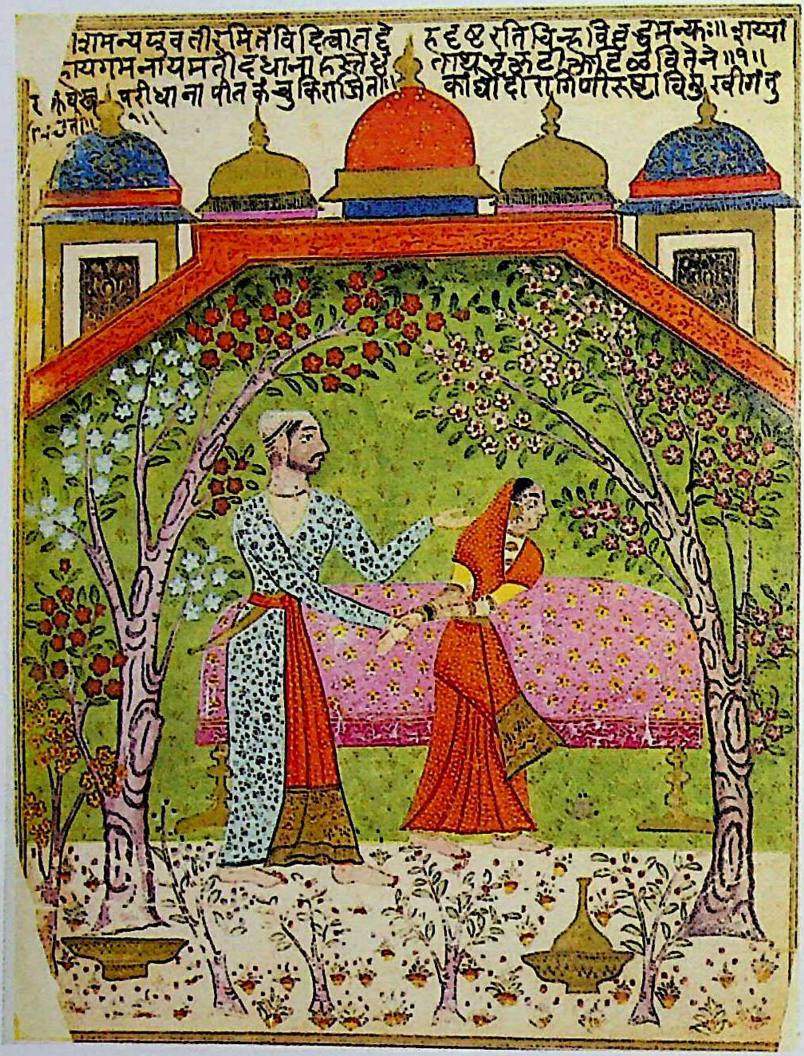

रागिनी कामोदी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चित्र राजमहल की पृष्ठभूमि में चित्रित है। जबकि आसावरी के अन्य चित्र, पर्वतीय वनों में चित्रित देखे जाते हैं।

१३. भैरवी रागिनी। प्रचलित ध्यान के अनुकूल। सरोवर के मध्य निर्मित मन्दिर में कमल के फूलों द्वारा भगवान् शङ्कर का पूजन कर रही है। उक्त चित्र, शिवाराधन में तन्मय देवी पार्वती का स्वीकृत किया जाता है।

१४. कामोद—श्री राग की रागिनी कही गई है। दोनों हाथों में फूलों का हार लिए है दो ख़रगोश बैठे हैं।

१५. गेद, अथवा कामोदी (काम्बोदी) रागिनी प्रकारान्तर से चित्रित देखी जाती है। नायक के देह में संभोग चिह्न देखकर अत्यधिक क्रुद्ध हुई, कुटिल भौंह वाली, शय्या त्यागकर जाती नायिका का हाथ पकड़कर नायक सन्तुष्ट करना चाह रहा है। दूसरे श्लोक के अनुसार, लाल साड़ी एवं पीली चोली से सुशोभित काम्बोदी क्रुद्ध हुईं, विमुख होकर लौट जाना चाह रही है। चित्र के ऊपर दोनों श्लोक प्राचीन लिपि में लिखे गए हैं। ''हृदयेशमन्ययुवतीरमितं विदित्वा तद्देहदृष्टरतिचिह्नविवृद्धमन्युः। शय्यां विहाय गमनाय मतिं दधाना हस्ते धृताथ भृकुटी कुटिलं वितेने॥ रक्तवस्त्र परीधाना पीतकञ्चुकि राजिता। काम्बोदी रागिणी रुष्टा विमुखी गन्तुमिच्छती॥[1]

१६. मधुमाधवी, रागिनी। बादल घिरे हैं। बिजली चमक रही है। नायिका खिन्न चित्त से खड़ी देख रही है।

१७. बङ्गाली, रागिनी। वियोगिनी नायिका तप करने के उद्देश्य से वन में जाती है। चित्रित सिंह वन्य प्रदेश का प्रतीक है। नाम से प्रतीत होता है, सैन्धवी की भाँति बङ्गाली वङ्गदेश की धुन है। चित्र में एक जटा धारी महात्मा के समक्ष एक कुमारी घुटना मोड़ कर गोद में तख्ती लिए बैठी है। हिरनों का जोड़ा, एक बाघ, और एक कुत्ता, बैठे चित्रित किए गए हैं।

१८. बेलावली रागिनी। प्रिय से मिलन को उत्सुक। दासी सामने दर्पण लिए खड़ी है। आभूषण धारण करती हुई शृङ्गार की पूर्णता निरख रही है।

१९. रामकली रागिनी। मानिनी रागिनी, पति के प्रणिपात मुद्रा में होकर हाथ जोड़कर क्षमा माँगने पर भी अप्रसन्न है।

२०. श्री राग। पत्नी के साथ सिंहासन पर विराजित। चामरधारिकाएँ खड़ी हैं। सामने एक वृद्ध वीणा लिए बैठे हैं। दूसरा बकरे जैसा मुँह वाला मनुष्य ताली बजा रहा है। यह सम्भवतः पुराणों में वर्णित, घोड़े के मुँह वाले किन्नरों का प्रतीक है।

---

1. Sttella Kramrisch, *The Art of India*, p. 28, Painting about 1595 A. D.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२१. वराटी रागिनी। गणिका नायिका। हाव-भाव से प्रेमी को वश में कर रखा है। वसन्त ऋतु में मध्याह्न के पश्चात् गायी जाती है। उक्त ध्यान सङ्गीत दर्पण पृ० ८७ के अनुसार है।

२२. गौडमल्लार। मेघ राग की रागिनी। अनागत पति की प्रतीक्षा में विकल। बादल और बरसात देखकर खिन्न। सखियाँ मधुर सङ्गीत से बहलाने का प्रयत्न कर रही हैं।

२३. धनाश्री। दीपक राग की रागिनी। प्रियतम के वियोग से अत्यन्त खिन्न। अवसाद के क्षणों को प्रिय का चित्र बनाकर व्यतीत कर रही है।

२४. ककुभ अथवा मल्लारी रागिनी। मोरों से घिरी, हाथ में फूल लिए, प्रिय के स्वागत हेतु उत्सुक, प्रतीक्षारत।[१]

२५. वसन्त, वसन्तिका रागिनी। नायक-नायिका को मध्य में रखते हुए नर्तकियाँ अनेक वाद्ययन्त्रों के साथ गायन-वादन में रत हैं। वसन्त का प्रतीक आम के पल्लवों से प्रदर्शित है।

२६. पटमञ्जरी, भैरव की रागिनी। विरह सन्तप्त नायिका को सखियाँ सान्त्वना दे रही हैं।

उल्लिखित चित्रों द्वारा रागों की प्रकृति अथवा चरित्र का आभास मात्र होता है। संख्या २ के चित्र का शीर्षक, मल्लारी है। संख्या २४ के चित्र को ककुभा अथवा मल्लारी कहा गया है। संख्या ४ के चित्र को कुकुभ रागिनी कहा गया है। संख्या २४ और ४ के चित्र एक से हैं। ऐसा प्रतीत होता है उन दिनों कुकुभ और मल्लारी नाम से गायी जाने वाली कोई एक रागिनी थी। आज मल्लारी अथवा कुकुभ (भा) जैसा नाम या राग प्रचार में नहीं है। आज ग्रन्थ मतानुसार राग मेघ के साथ मल्लार शब्द जोड़ते हैं। अन्य मल्लार प्रकारों का प्रेरक राग मेघ ही है। संख्या ५ के राग मेघ का वीणाधारी भगवान् कृष्ण के रूप में चित्रण शोध का विषय है। सम्भवतः यह चित्र भगवान् के मुसलाधार वर्षा के समय किये गए गोवर्धनधारण के प्रसङ्ग से प्रेरित है।

संख्या १५ की रागिनी काम्बोदी का चित्र चार सौ वर्ष प्राचीन है। स्वराधार न होने के कारण इसे वर्तमान कामोद का पूर्व रूप, प्रकारान्तर आदि कुछ नहीं कहा जा सकता।[२]

ग्रन्थों में वर्णित सभी रागों के ध्यान-चित्र सम्पूर्ण रूप से चित्रित नहीं देखे जाते। राग-रागिनी की कल्पना, मात्र मनोरञ्जन अथवा उपासना की दृष्टि से की

---

1. Shripada Bandyopadhyaya, *The Music of India*, p. 84
२. संख्या ५-१३ तथा १६ से २५ तक के चित्रों का विवरण—श्रीपद वन्द्योपाध्याय के ग्रन्थ *The Music of India*, से साभार संग्रहीत। पुस्तक श्री रामकृष्ण त्रिपाठी द्वारा प्राप्त हुई। शेष लेखक के संग्रह द्वारा चयनित।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

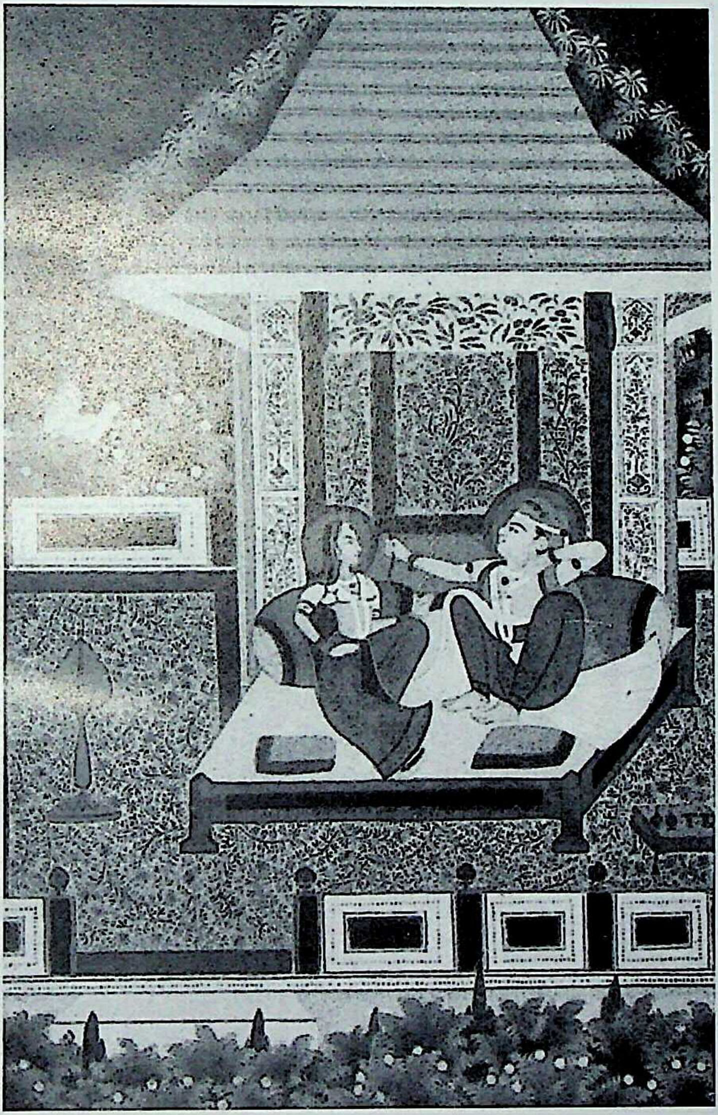

रागिनी वराटी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गई ? प्राप्त चित्रों तथा ध्यान के साहित्य के आधार पर किसी एक निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता। तथापि यह निर्विवाद है, कि सङ्गीतज्ञ और श्रोता समूह के चित्त पर इनका प्रभाव अब तक बना हुआ है। छः रागों के प्रभाव और ध्यान की विसङ्गति को देखते हुए प्रतीत होता है कि उपासना की दृष्टि से कल्पित राग भैरव के प्रभाव की अभिव्यक्ति, चमत्कार प्रिय, कुतूहली जन समूह द्वारा की गई है। सङ्गीत दर्पण, पृ० ७३ के अनुसार भगवान् शङ्कर और भगवती पार्वती द्वारा छः रागों की उत्पत्ति हुई। भगवान् शिव के सद्योवक्त्र नामक मुख से श्री राग, वामदेव से वसन्त, अघोर से भैरव, तत्पुरुष से पञ्चम तथा ईशान नामक मुख से मेघ राग की उत्पत्ति हुई। छठें राग नटनारायण की उत्पत्ति भगवती पार्वती के मुख से हुई। मुख से उत्पत्ति का तात्पर्य स्पष्ट है, उक्त मुखों द्वारा गाये गए।[1]

अघोर मुख से बहिर्गत राग भैरव के ध्यान इस प्रकार के हैं—गङ्गा जटाजूट में, द्वितीया का चन्द्रमा ललाट में, त्रिनेत्र, साँपों से आभूषित, गजचर्मधारी, मुण्डमाल त्रिशूल और श्वेतवस्त्र से सज्जित, भैरव आदि राग है।[2] (सङ्गीत दर्पण, पृ० ८१)। भगवान् शङ्कर के भैरव राग रूप का अन्य ध्यान इस भाँति है। डमरू, त्रिशूलधारी, साँपों का हार पहने, श्वेतवर्ण, चन्द्रमा, गङ्गा, विस्तृत जटाओं, त्रिनेत्र, कृष्ण मृगचर्म का धारक, विकट, भैरव राग है।[3] तीसरे ध्यान के अनुसार भैरव राग इस प्रकार का है। भयानक वेष, जटायुक्त, मुण्डमालधारी, लालनेत्र, तथा भयानक आसन पर विराजित।[4]

आदिराग भैरव के उल्लिखित ध्यान इसे रुद्र की उपासना का माध्यम बताते हैं। अर्थात् भैरव राग गाकर नियमित शिवाराधन करने से भगवान् की कृपा प्राप्त होती है। किन्तु कुतूहली जनमानस भैरव राग को मात्र इतने से नहीं छोड़ता। वह भैरव गायक से यह चाहता है कि उसके भैरव गायन के प्रभाव से कोल्हू अपने आप घूमने लगे। अपने मत की पुष्टि के निमित्त उसके पास एक कल्पित कथा भी है। कथा के अनुसार, राजा वीर विक्रमादित्य जब शनि की साढ़े साती से पीड़ित हुए तब उनका राज-पाट, लाव-लश्कर सब कुछ चला गया। किसी पराये राज्य में गुप्त रूप से एक तेली के घर में रहते हुए वे अपने

---

१. *सङ्गीत दर्पण,* पृ० ७३ श्लोक ९-११

२. गङ्गाधरः शशिकलातिलकस्त्रिनेत्रः सर्पैर्विभूषिततनुर्गजकृत्तिवासाः ।
भास्वत्त्रिशूलकर एष नृमुण्डधारी, शुभ्राम्बरो जयति भैरव आदिरागः ॥

३. डमरु त्रिशूलधारी पन्नगहारी सितोल्लसद्भसितः ।
धृतशशिगङ्गोऽतिजटोऽजिनविकटो भैरवोऽसमदृक् ॥ २॥

४. रुद्रवेषो जटायुक्तो मुण्डमालाविभूषितः ।
रक्तनेत्रो कपर्दी च भैरवो भैरवासनः ॥ ३॥

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दिन काटने लगे। एक दिन ब्राह्ममुहूर्त्त में तेली ने राजा को कोल्हू चलाते रहने को कहा। कोल्हू घर में जाकर राजा ने भैरव राग गाना आरम्भ कर दिया। कोल्हू ख़ुद-ब-ख़ुद घूमने लगा। उन दिनों यह बात आम थी कि मात्र राजा वीर विक्रमादित्य ही भैरव राग गाकर कोल्हू चला देने में समर्थ हैं। बात प्रकट हो गई। साढ़े साती समाप्त हो चुकी थी। स्थानीय राजा ने राजा विक्रम को अपनी कन्या ब्याह दी। कुछ ही दिनों में राजा ने अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया।

भैरव राग गायन के उक्त लौकिक लाभ से मुग्ध मन के गायक अथवा रसिकजन को इतनी फ़ुर्सत कहाँ है कि वह भैरव के मोक्ष प्रदायक रूप एवं प्रभाव की ओर ध्यान दे। गायक अलङ्कार अलङ्कृत जटिलतम तथा द्रुततम तानों द्वारा श्रोता को चमत्कृत कर डालने को सिद्धि-शिखर मान बैठा हो तो कोल्हू चलने, हिंडोला झूलने, दीपक जलने जैसे आध्यात्मिक सङ्केतों के तात्पर्य का तिरोहित हो जाना स्वाभाविक है। भैरव राग प्रभाव से कोल्हू जैसा जडचित्त द्रवित हो जाय, शुष्क अरसिक चित्त का व्यक्ति हिण्डोल राग प्रभाव से झूम उठे, क्या इतना पर्याप्त नहीं है? दीपक जल उठने का सङ्केत क्या साधक के चित्त में ज्ञानदीप का प्रज्वलित हो उठना नहीं है? कुतूहली जन मानस ने सङ्गीत-सम्राट् तानसेन का दीपक राग के प्रभाव से ताप दग्ध होते रहना, उनकी बाल सखी द्वारा गाये मेघ प्रभाव से हुई वर्षा के जल से तापशान्ति की कथा का पूरी आस्था के साथ प्रचार किया है। मोक्षमार्गी साधक, सङ्गीत से ऐसे प्रभावों की लालसा में समय नहीं गँवाते। बाज़ीगरी उनका अभीष्ट नहीं होती। यही कारण है, दीपक प्रसङ्ग मात्र तानसेन के साथ रह गया। उनके सङ्गीत शिक्षक स्वामी हरिदास के साथ जुड़े ऐसे किसी चमत्कारिक प्रसङ्ग का उल्लेख नहीं देखा जाता। स्वामीजी का नाम अनुश्रुतियों से अछूता है।

वास्तविक साधक, ऐसी क्षुद्र सिद्धियों की प्राप्ति और प्रदर्शन के फेर में नहीं पड़ते। दैवयोग से साधनापथ में यदा-कदा विघ्नस्वरूप ऐसे प्रसङ्ग आ जाते हैं। सर्वथा अवाञ्छित। अनाहूत। जनमानस इन्हें अत्यन्त आस्था के साथ प्रचारित करने में बड़े उत्साह से जुड़ जाता है। उक्त पंक्तियों का तात्पर्य चमत्कारों को असम्भव बताना नहीं है। साधक को साधना में होते हुए प्रमाद अथवा सफलता की सूचनाएँ, स्वप्न, प्रत्यक्ष घटनाओं, तथा सर्वथा अज्ञात के ज्ञान आदि द्वारा प्राप्त होती रहती हैं। व्यक्तिगत एवं पूर्वजन्मार्जित संस्कारों के कारण ऐसे अनुभव सर्वथा भिन्न प्रकार के होते हैं। कभी-कभी दो साधकों की अनुभूति सर्वथा एक-सी होती है। अध्यात्म के ऐसे प्रसङ्गों की व्याख्या सम्भव नहीं है।

✤

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१६

साधकों के अनुभव

साधना काल के अनुभवों को गुप्त रखने की प्रथा है। साधक का हित इसी में है। इसके विपरीत करने पर साधक के चित्त में अहङ्कार का उदय हो जाता है। अकेला 'अहम्' साधना को विनष्ट कर देने में सर्वथा समर्थ है। साधक दैवकृपा से जब सिद्धावस्था प्राप्त कर लेते हैं तब सम्भवतः भावी साधकों के मार्गदर्शन हेतु अपने अनुभवों को प्रकाशित कर देते हैं। यद्यपि ये प्रसङ्ग अत्यन्त अंतरंग नहीं होते तथापि नवागत साधकों के लिए ये पाथेयका कार्य करते हैं। सङ्गीत की पद्धति भिन्न होने के नाते देशी, विदेशी जैसे विशेषण जुड़ गए हैं अन्यथा स्वर साम्य की दृष्टि से सङ्गीत का मूल एक ही है। सङ्कलित उदाहरण मात्र भारतीय नहीं हैं। इनसे स्वरों की ब्रह्माण्डव्यापिनी सामर्थ्य का बोध होता है। यह कह पाना अत्यन्त दुरूह है कि, सङ्गीतजनित विलक्षण परिणाम साधक के निष्कलुष, अविचल मन की सङ्कल्पशक्ति का अवदान है अथवा विशिष्ट स्वरसमूह द्वारा घटित किन्हीं विशेष राग-रागिनियों की कृपा का।

"भारत में बहुत प्राचीन काल में ही विभिन्न राग-रागिनियों (सम्भवतः जातियों) के रङ्ग, रूप, आकार, प्रकार, गुण एवं प्रभाव आदि का पता लग चुका था। सिद्ध गायक राग-रागिनियों का रूप खड़ा कर देते थे। उनका प्रभाव प्रकट रूप में प्रदर्शित कर देते थे। समय ने पलटा खाया। ये बातें कपोल कल्पना मानी जाने लगीं। किन्तु इधर पश्चिमी वैज्ञानिकों के अनुसन्धान ने फिर बाज़ी पलट दी है।

लॉर्ड लिटन् के सजे-सजाये कमरे में ऊँचे दर्जे के ख़ास-ख़ास विद्वानों तथा विदुषियों का दल एकत्र था। सभी लोग बीसवीं शताब्दी के विज्ञान तथा आविष्कारों-खोजों से भलीभाँति परिचित थे। बहुत-से तो विज्ञान के पारदर्शी पण्डित थे। उनके सामने एक गायिका एक साधारण-से बाजे पर राग गायन कर रही थी। पर्दे पर ख़ास तरह के रूप की आकृतियाँ नाचती-कूदती दिखायी दीं। राग समाप्त होते ही आकृतियाँ भी देखते-देखते ग़ायब हो गयीं। गायिका ने दूसरा राग छेड़ा। बात-की-बात में दूसरे प्रकार की आकृतियाँ सामने आयीं। राग बदलते गए। आकृतियाँ भी बदलती गयीं। कभी तारे दीख पड़ते, कभी टेढ़ी-मेढ़ी सर्पाकार आकृतियाँ नज़र आती; कभी त्रिकोण, षट्कोण दिखलाई देते, कभी रङ्ग-विरङ्गे फूल अपनी शोभा से मुग्ध करते; कभी भीषण-आकृति वाले समुद्री

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जीव-जन्तु प्रकट होते; कभी फलों-फूलों से लदे वृक्ष सामने आते; कभी एक ऐसा दृश्य दृष्टिगोचर होता जिसमें पीछे तो अनन्त नील समुद्र लहराता नज़र आता और सामने नाना प्रकार की सुन्दर छोटी-बड़ी शिलाओं के बीच नाना रूप-रङ्ग आकार-प्रकार के पत्र-पुष्प-फलों से लदे वृक्ष मन्द-मन्द वायु के झोंकों से लहराते, फल-फूलों की वर्षा करते दीख पड़ते।

जैसे-जैसे राग बदलते गए, वैसे-ही-वैसे आकृतियाँ बदलती गईं। दर्शक चकित-स्तम्भित-चित्रलिखे से चुपचाप देखते रहे। गायिका ने गायन बन्द किया। आकृतियाँ अदृश्य हो गईं। दर्शक-मण्डली को चेत आया। सब अपने-अपने उद्गार प्रकट करने लगे।

लॉर्ड महोदय ने गायिका का परिचय देते हुए कहा—"आप प्रसिद्ध अन्वेषिका श्रीमती वाट्स हग्स (Watts Hughes) हैं। आप को एक बार इस बाजे पर एक राग छेड़ते समय एक विशेष प्रकार की सर्पाकृति प्रकट होती दीख पड़ी। आप जब-जब उस राग को छेड़तीं तब-तब वही आकृति प्रकट होती। इससे आपने यह निष्कर्ष निकाला की राग और आकृति का कोई प्राकृतिक सम्बन्ध अवश्य है। तभी एक ख़ास राग के छेड़ने पर एक ख़ास आकृति प्रकट हो जाती है। तब से आपने अनेक वर्षों तक इसी विषय को लेकर अनुसन्धान किया। उसका फल आज आप लोगों के समक्ष प्रदर्शित किया गया है।

इसी प्रकार फ्रांस में इसी विषय को लेकर दो बार परीक्षण और प्रदर्शन किये गए हैं। एक में तो मैडम लैंग ने एक राग छेड़ा था जिसके फलस्वरूप देवी मेरी (Virgin Mary) की आकृति शिशु जेसस क्राइस्ट (Jesus Christ) को गोद में लिए प्रकट होती दिखाई पड़ी थी। दूसरी बार एक भारतीय गायक ने भैरव राग छेड़ा था, जिसके फलस्वरूप भैरव की भीषण आकृति प्रकट हुई थी।

इसी प्रकार इटली में भी परीक्षण हो चुका है। एक युवती ने एक भारतीय से सामवेद की एक ऋचा को सितार पर बजाना सीखा। खूब अभ्यास कर लेने के अनन्तर एक बार उसने एक नदी के किनारे रेत में बैठ कर उसी राग को छेड़ा। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि रेत पर एक चित्र-सा बन गया। उसने कई विद्वानों को यह बात बतलायी। उन्होंने उस चित्र का फोटो लिया। चित्र वीणा-पुस्तक धारिणी सरस्वती का निकला। जब-जब वह युवती तन्मय होकर उस राग (ऋचा) को छेड़ती तब-तब वही चित्र बन जाता।

वर्तमान आविष्कार एवं विज्ञान के युग में यह प्रमाणित हो चुका है कि रागों से आकृतियों का एक विशेष वैज्ञानिक और प्राकृतिक सम्बन्ध है अतः राग विशेष द्वारा शून्य से सवर्ण-साकार आकृतियाँ प्रकट की जा सकती हैं।[१]

---

१. श्री भगवान दास अवस्थी, *कल्याण*, साधनाङ्क १९४० ई०, पृ० २८३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नगण्य अन्तर से उक्त घटनाएँ स्वामी शिवानन्द के 'जपयोग' नामक अंग्रेजी पुस्तक के पृष्ठ ८-१० में वर्णित हैं। इसके अनुसार फ्रान्स के भैरव गायक वाराणसी के अध्ययनरत एक बङ्गाली विद्यार्थी थे जिनके गायन प्रभाव से दर्शकों ने वाहन (श्वान) सहित भैरव का दर्शन किया था।[१]

सन १९८१ ई० में कमलनयन नामक सज्जन 'नादब्रह्म' नामक लेख में देश के शीर्षस्थ सङ्गीत साधकों से साक्षात् के प्रसङ्गों की चर्चा करते, कहते हैं— "सबसे पहले प्रख्यात शहनाई वादक बिसमिल्लाह ख़ाँ से आपको मिलायें। जिनका कहना है कि सङ्गीत अपने आप में एक मज़हब है। और इस मज़हब को मानने वाले बेसुर की शहनाई न तो सुनते हैं और न बजाते हैं। आज दुनिया का रङ्ग इसलिए बदरङ्ग है कि, हम सब अलग-अलग डफली और अलग-अलग राग में अलमस्त हैं।

ईद के तीसरे दिन सरायहड़हा (वाराणसी) की सँकरी गलियों में स्थित उनके मकान में ख़ाँ साहब से बातें होती हैं। वे मुस्कराते हुए कहते हैं, "साज़िन्दे लोग बैठे हैं, यह समय तो रियाज़ का है लेकिन आपका 'सब्जेक्ट' इतना उम्दः है कि बातचीत करके ही रियाज़ शुरू करूँगा।"

बिसमिल्लाह ख़ाँ ने एक बार अपनी आँखें मूँद लीं और ईश्वर के प्रति जो उद्गार व्यक्त किए वे शहनाई के स्वर से ज्यादा मीठे लगे। उन्होंने कहा—अपने को मासूम बनाओ तो मालिक दिखाई पड़ने लगेगा। एक मासूम बच्चे के सामने साँप छोड़ दीजिए, आग रख दीजिए वह बेख़ौफ़ इन दोनों से खेलने को आतुर हो जाएगा। इस मासूमियत के तीन हादसे मेरी ज़िन्दगी में हुए हैं, जिनमें से एक के बारे में तो बता दूँगा। दो मैंने आज तक किसी को नहीं बताये, क्योंकि पहले हादसे का बयान मैंने अपने मामूँ से कर दिया था, तो उन्होंने मेरा कान पकड़ कर कहा था—बेटा! अपकी बार कह दिया तो कह दिया, फिर किसी से ज़िक्र मत करना।

घटना साठ-सत्तर बरस पुरानी है। मेरे नाना रज्जब अली ख़ाँ ग्वालियर स्टेट की ओर से बनारस के पञ्चगङ्गा घाट पर स्थित बालाजी के मन्दिर में शहनाई वादन के लिए मुलाज़िम थे। मेरे मामूँ जब वहाँ मुलाज़िम हुए तब परम्परागत ढँग से उन्होंने मुझे वहाँ सङ्गीत साधना के लिए बैठाया और हिदायत दी कि बेटा यहाँ कुछ देखना तो किसी से कहना नहीं। उन दिनों मेरी उम्र ग्यारह-बारह बरस की थी। मैं रोज़ साढ़े छः बजे शाम को मन्दिर जाता और शहनाई वादन का रियाज़ कर ११ बजे रात को घर लौटता। रियाज़ के दौर का डेढ़ बरस बीतते-बीतते मैंने एक रात को जो दृश्य देखा तो चौंककर रह गया। मेरे

१. स्वामी शिवानन्द, *जपयोग*, पृ० ८-१०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रोंगटे खड़े हो गये। मन्दिर के प्राङ्गण में मुश्क-अंबर जैसी ख़ुशबू गमक उठी। एक दण्डी संन्यासी जिनकी लम्बी दाढ़ी छाती छू रही थी, आँखों से नूर टपक रहा था, मेरी शहनाई के सुरों में लीन होते हुए मुस्कुराए और बोले—बजाओ बेटा! ख़ूब बजाओ, एक दिन तुम्हारा नाम सात समुन्दर पार तक रोशन होगा।

इतना कहकर बिसमिल्लाह ख़ाँ ठहर गये। क्षण मात्र के लिए ख़ामोश रहे फिर बात को आगे बढ़ाते हुए बोले—मैंने देखा सभी दरवाज़े बन्द हैं तो फिर ये संन्यासी जी कहाँ से आ टपके। मैं अभी यह सब सोच ही रहा था कि वे अन्तर्धान हो गये। मैंने दरवाजा खोलकर देखा तो बाहर कहीं कुछ नहीं दिखा। मैंने इस घटना का वर्णन मामू से करना चाहा तो वे समझ गये कि आज इसने कुछ देख लिया है और मुझे इधर-उधर की बातों में फँसाते रहे ताकि मैं कुछ कह न सकूँ। परन्तु मेरा बालपन था। चुप्पी कैसे साधता और एक दिन मैंने वह सब कुछ कह ही डाला। फिर क्या था। कान पकड़ कर मामूँ ने इतने ज़ोरों से गरम किया कि फिर जो कुछ देखा किसी से नहीं कहा।

इस वार्ता के समाप्त होने पर मैंने उन्हें हर तरह से गुदगुदा कर पूछने की हरचन्द कोशिश की परन्तु उन्होंने यही कहा—"ईश्वर या अलौकिक शक्ति को महसूस किया जा सकता है, देखा नहीं जा सकता। क्या हवा दिखाई पड़ती है? नहीं! ठीक यही स्थिति सङ्गीतकारों की साधकों की होती है। मैं जब स्टेज पर होता हूँ तो हज़ारों लोग मुझे देखते रहते हैं, परन्तु मैं किसी को नहीं देखता। मेरी हालत ठीक उस मासूम बच्चे जैसी होती है जिसका बयान मैं कर चुका हूँ। ऐसे दौर में मुझे उस अलौकिक शक्ति का दर्शन होता है जिसका बयान मैं ज़ुबाँ से नहीं कर सकता।"

सदाबहार दीखने वाले प्रख्यात तबलावादक किशन महाराज अव्वल दर्जे के बनारसी हैं। आइए, आप भी सुनिए उन्हीं की ज़ुबानी, उनकी श्मसान सिद्धि की कहानी। "मेरी उम्र तेइस वर्ष के आस-पास रही होगी। बम्बई के सांस्कृतिक कार्यक्रमों और सङ्गीतज्ञों से सम्बद्ध हो गया। मेरे कुछ मित्रों ने लाल बाग मुहल्ले के एक तान्त्रिक से मुलाकात करा दी। धीरे-धीरे मुलाकात मित्रता में बदल गयी और एक दिन मैंने उनसे कहा—बाबा! मैं तबलाजगत् में अपना नाम रोशन करना चाहता हूँ और यह तभी सम्भव है जब मैं किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त कर लूँ। उन्होंने मुझे दुर्गामन्त्र दिया और बोले चालीस रोज तक इस मन्त्र का जाप श्मशानस्थल पर करने से निश्चित सिद्धि प्राप्त होगी। उन दिनों सितार वादक पं० रविशङ्कर बोरीवली में रहते थे। शाम को मैं उनके घर पहुँचा और भोजन के बाद जानबूझ कर अपनी खाट बगीचे में डाल दी। आधी रात को जब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सब लोग सो गये तो मैं चुपके-चुपके दबे पाँव वहाँ से निकल कर श्मशान पहुँचा। वहाँ मैंने देखा एक लावारिस मुर्दा चिता पर अधजला पड़ा था। चूँकि मुझे प्रथम दिवस की क्रिया विधि-विधान के साथ करनी थी इसलिए मैं उसके सिरहाने खड़ा हो गया और फूल-माला, और नैवेद्य चढ़ा कर उसका पैर दोनों हाथों से खींचा ही था कि अधजला खौलता हुआ मांस मेरी हथेलियों में चिपक गया। भयानक जलन की पीड़ा से परेशान होकर मैंने एक घंटे तक पानी में अपनी दोनों हथेलियों को डुबोये रखा। जलन शान्त होने पर उस मन्त्र का ग्यारह सौ अट्ठासी बार पाठ करने के बाद साढ़े तीन बजे रात को मैं पं० रविशङ्कर जी के आवास पर पहुँच कर बगीचे में सो गया।

पूर्णसिद्धि के लिये मैंने शिवाजी पार्क स्थित श्मशान को चुना क्योंकि मैं उन दिनों दादर में ही ठहरा हुआ था। करीब नौ बजे रात में मैं श्मशान पहुँचा तो देखा वहाँ एक पहरेदार लाठी लिए खड़ा था। मैंने उससे मिन्नत की, मेरा छोटा भाई बीमार है, मुझे बताया गया है कि श्मशान पर पाठ करने से वह ठीक हो जायेगा। पाठ के बदले मैं तुम्हें एक रुपया रोज़ दे दिया करूँगा। वह राजी हो गया और मेरा नियमित पाठ (जप) चलने लगा। पूर्णाहुति के दिन मैं रात दस बजे श्मशान पहुँचा तो देखा कि वह पहरेदार भी वहाँ नहीं है। एकान्त स्थल पर मैंने अपना पाठ आरम्भ किया। जब २५/३० माला का जप बाकी रह गया तो मुख चिता की ओर किए पाठ करते, मैं पीछे हटने लगा। मेरे क़दम पाँच गज पीछे पड़े होंगे कि मैंने देखा समुद्र की चहारदीवारी के पास से कोई चला आ रहा है और उसकी छाया दीवार पर पड़ रही है। मैंने मन ही मन सोचा, कही मेरी परछाईं ही तो मुझे भ्रमित नहीं कर रही है। मैं एक हाथ से माला के साथ मन्त्रजप करता जा रहा था और दूसरा हाथ यह देखने के लिए ऊपर उठा दिया कि यदि मेरी परछाईं होगी तो ऊपर उठे हाथ की छाया दिखेगी। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। मैं समझ गया कि आज अंतिम रात्रि है इसलिए यह रहस्य उसी से जुड़ा हुआ है। मैं मन्त्र जपता हुआ मुख्य द्वार के नजदीक पहुँच गया तो देखा दो आदमी काली नेकर, सफेद गंजी पहने थोड़ी दूर पर खड़े हो गए हैं। एक ने दूसरे से कहा 'गेट किसने खोला।' मेरा मन्त्र पूरा हो चुका था। मैंने पीछे मुड़कर देखा तो गेट का कहीं पता नहीं था। दूसरे ने पहले वाले से कहा—ठीक है, कल से गेट बन्द कर दिया जायेगा। इतना कहकर वे दोनों तेज गति से दाहस्थल की ओर चले गये। मैं घर आकर काफी रात तक सोचता रहा कि आख़िर वे दोनों व्यक्ति कौन थे?

यह तो सिद्धि की बात हुई। अब मैं आप को सुनाता हूँ, साधना की एक चमत्कारी घटना। मेरी शादी हुए पन्द्रह दिन भी नहीं बीते थे कि अचानक मैं ने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घर छोड़ दिया और जुलाई १९४७ ई० में बनारस के सङ्कटमोचन मन्दिर में रहने लगा। दो वर्ष तक वहाँ रहा और अन्न के नाम पर अंजुली अन्न ग्रहण करता था। रात के बारह-एक बजे तक तबले का रियाज़ करता था। साधना के अन्तिम चरण में एक रात मैंने देखा एक काफी लम्बा सर्प कमरे में घुस आया और मेरे तबले की बोल पर मेरे चारो तरफ रेंगने लगा। फिर भी मेरा बजाने का क्रम जारी रहा। रह-रहकर मेरा ध्यान उस सर्प की ओर बँट जाता था, इसलिए मैंने लालटेन की रोशनी बुझा दी और यह सोचकर कि यह सब हनुमान् जी की कृपा है, अपना रियाज़ जारी रखा ठीक इसी घटना के दूसरे दिन तबला बजाते-बजाते ऐसा अनुभव हुआ कि बड़ी ज़ोर से आरती होने की आवाज़ कानों में ठनकी। जब तबला बन्द करता तो वह आवाज़ ग़ायब हो जाती और फिर शुरू करते ही घंटा-घड़ियाल की आवाज़ मेरे कानों में गूँजने लगती।''

''उन दिनों पं० रविशङ्कर बम्बई में संघर्ष कर रहे थे। परेशानियाँ चरम सीमा पर थीं। वे टूट कर आत्महत्या करने का फैसला कर चुके थे। तभी उनकी मुलाक़ात टाट बाबा से हुई। टाटबाबा ने कहा—''तुम्हें इस दुनिया में अभी बहुत दिन जीना है और दुनिया के कोने-कोने तक अपना नाम रोशन करना है। आत्महत्या का विचार त्याग दो।'' पं० रविशङ्कर जी ने आत्महत्या का विचार त्याग दिया और अपना सम्पूर्ण जीवन सङ्गीत-साधना को समर्पित कर दिया। ज़िन्दगी के इस नये मोड़ के प्रणेता के रूप में टाटबाबा पं० रविशङ्कर के पूज्य बन गए। अमेरिका में भी पं०जी के पूजा स्थल पर टाटबाबा की तस्वीर टँगी रहती है।

पं० रविशङ्कर का ऐसा विश्वास है कि उनकी कीर्ति-सिद्धि में टाट बाबा की ही कृपा है और सङ्कट के क्षणों में भी वे उनकी सहायता करते रहते हैं। सन १९७७ ई० में नवम्बर महीना था। लखनऊ में उनके सितार वादन का आयोजन था। खुले मैदान में शामियाना लगाकर स्टेज बनाया गया था। कार्यक्रम शुरु होते-होते आँधी पानी के साथ ज़ोरों का तूफान आया कि शामियाना टूट-टूट कर बिखर गया परन्तु स्टेज का हिस्सा तब टूटकर गिरा जब पं० रविशङ्कर वहाँ से सुरक्षित निकल कर अपने ग्रीन रूप में पहुँच गये।

दूसरी घटना सिलीगुड़ी में १९७९ ई० के फरवरी महीने में घटी। वहाँ भी ज्यों ही कार्यक्रम शुरू हुआ ही था कि भयानक तूफान आ गया। अंबू-तंबू का कहीं पता नहीं चला और दर्शक अपनी जान बचाकर भागे। स्टेज नाव की तरह हिंडोले लेने लगा किन्तु स्टेज गिर पड़ता इससे पहले ही पं० रविशङ्कर ग्रीन रूम में पहुँच चुके थे।

''बगिया में बोले मोरे नइहर के सुगना'' की प्रसिद्ध गायिका गिरिजा देवी से मिलने उनके बनारस के नाटी इमली स्थित मकान पर गया तो पता चला वह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हृदय रोग से पीड़ित हैं किन्तु धर्मयुग के लिए भेंट की बात से उनका मन खिल उठा और बातचीत चल पड़ी।

गिरिजा देवी ने कहा—"मेरी ज़िन्दगी में चमत्कार के अनेक रंग बिखरे पड़े हैं। मैं शिवभक्त हूँ। शिव की प्रतिमा के समक्ष सङ्गीत साधना करती चली जा रही हूँ। मैं अपने बचपन की एक घटना बताती हूँ। उसके स्मरण से आज भी रोम-रोम गदगद् हो जाता है। उन दिनों मैं रात के तीन बजे ही उठ कर सात सुरों के आने जाने की साधना करती थी। साधना के दौरान आँखे बन्द कर सुरों में लीन हो जाती थी। किन्तु एक उत्सुकता बनी रहती थी। मैं देखना चाहती थी कि, साधना के समय मेरा चेहरा कैसा रहता है। बालों की स्थिति क्या रहती है। साधना की चरम स्थिति पहुँचते-पहुँचते मैं शिवजी की प्रतिमा की ओर से अपने आप को देखने लगी। मुझे इस सब में बड़ा आनन्द आया। पाँच-छः महीने तक यह खेल करती रही, फिर बन्द कर दिया। इस साधना का प्रतिफल मुझे पहली बार तब मिला जब मेरा प्रथम कार्यक्रम रेडियो पर आयोजित किया गया। पहली बार में ही सवा घंटे का ऑडीशन मिला।

इसी सन्दर्भ में मैं एक दूसरी घटना का भी जिक्र करना चाहती हूँ। चार-पाँच वर्ष पहले अमेरिका से एक योगीजी चार-पाँच साथियों के साथ मेरे यहाँ आये। योगीजी सो गए थे इसलिए वे भोजन नहीं कर सके थे। जब उठे तो मैंने कहा कि भइया! खाना खा लीजिए। उन्होंने कहा—दीदी! खाना खाने में प्लेन छूट जायेगा। मैंने कहा—खाना खाकर जायेंगे तो जहाज नहीं छूटेगा और बिना खाये जायेंगे तो हवाई जहाज यहाँ से जायेगा ही नहीं। योगीजी ने कहा—आप काशी में बैठी हैं तो आपका चमत्कार देखेंगे। यहकर वे बाबतपुर हवाई अड्डा जाने लगे तो मेरा शरीर एक क्षण के लिए काँप उठा। फिर मैंने कहा,. गिरिजा के सामने शङ्कर को क्यों चुनौती दे रहे हैं? अन्त में योगीजी बाबतपुर गए तो देखा बोइंग आकर हवाई पट्टी पर खड़ा है पर साथ ही उड़ान के रद्द होने की सूचना भी माइक से प्रसारित हो रही है। योगीजी वापस घर आये। दूसरे दिन जाने के पहले कहा—आज आप खाना खिला दें, नहीं तो विमान का कोई-न-कोई कल-पुरज़ा ज़रूर बिगड़ जायेगा।"

उन्होंने आगे कहा चमत्कार की कितनी बातें बताऊँ। सन १९७४ ई० की बात है। सङ्गीत सम्मेलन में भाग लेने रामपुर गई थी। वहाँ हम लोग पैलेस होटल में ठहरे हुए थे। मेरे साथ उस्ताद विलायत ख़ाँ भी थे। यह नवाब रामपुर का पैलेस था जिसे होटल का रूप दे दिया गया था। वहाँ पहुँचने पर मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसें नवाब साहब आज भी ज़िन्दः हों और उनकी बेगमें शयनकक्ष में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आराम कर रही हों। हम लोग लान में बैठे-बैठे रात में बातचीत कर रहे थे। धीरे-धीरे जब सभी लोग अपने-अपने कमरे में चले गये तो मैंने होटल के बेयरे से चाय लाने को कहा। क्योंकि रात भर जागना था। लान में थोड़ी देर तक टहलने के बाद जब चाय आ गई तो मैंने कुर्सी की हैण्डिल पर धीरे से ठोका दिया। उसमें से फुलझड़ी जैसी चीज़ निकलने लगी। मैंने कुर्सी के गद्दे पर ऐसा किया तो वहाँ से भी फुलझड़ी जैसी रोशनी हुई। यह देख बेयरा बोला, "बीबीजी, ये सोनकीरा हैं। बरसात के दिनों में पैदा हो जाते हैं।" मैंने यह कहकर कि यह सोनकीरा नहीं कुछ और है कुर्सी को खूब ज़ोर-ज़ोर से थपथपाया तो बेयरा डरकर भाग गया। कौतूहलवश मैंने अपने कमरे की पलँग को भी ठोका तो वैसी ही फुलझड़ी जैसी आग की चिनकारी निकली। मैं समझ गई कि यहाँ कुछ बात है। मैंने मन्त्र जप कर कहा, आप चाहें आत्मा हों या परमात्मा, जो भी हों मुझसे आपका नुकसान नहीं होने वाला है और यदि मुझे डराने के लिए यह सब हो रहा है तो सुन लीजिए मैं डरूँगी भी नहीं।

यह सब करते-कराते साढ़े बारह बज गए, और ज्यों ही स्टेज पर बैठकर तानपूरा मिलाने लगी कि एक बल्ब टूट कर गिर गया और आँधी-तूफान के साथ-साथ तम्बू-क़नात भी गिरकर धराशायी हो गए। अधिकांश दर्शक चले गये परन्तु पाँच छः सौ व्यक्ति हम लोगों से होटल के सङ्गीत कक्ष में कार्यक्रम प्रस्तुत करने का अनुरोध करते रहे। मैंने कहा, मैं होटलों और राजदरबारों में नहीं गाती, चाहे आप मुझे हीरे-जवाहरात से तौल दें। उन लोगों ने कहा—पैलेस में एक अलग जलसाघर है आप वहाँ कार्यक्रम प्रस्तुत करें। श्रोताओं का अनुरोध सिर-माथे पर रखकर जलसाघर में गये तो देखा-नवाबों और बेगमों की आदमक़द तस्वीरें लटक रहीं थीं। उस्ताद विलायत ख़ाँ ने पहले अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया। वह पता नहीं क्यों इतना उखड़े-उखड़े से थे कि आधे घण्टे के अन्दर छः राग बजा गए। मेरा कार्यक्रम सुबह तक चला। घटना के बारे में रामपुर के लोगों ने कहा—"नवाब रामपुर सङ्गीत के अनन्य भक्त थे इसीलिए उनकी रूह वहाँ भटक रही थी।"[१]

उक्त प्रसङ्गों के आलोक में सङ्गीत के अनुभवों का यत्किञ्चित् परिचय प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त मैहर के बाबा अलाउद्दीन ख़ाँ की सङ्गीत साधना के समय एक साँप का नियमित आना, सङ्गीत मार्त्तण्ड पं०ॐकार नाथ ठाकुर द्वारा तीस के दशक में इटली के मुसोलिनी को रागालाप करके सुला देने आदि के प्रसङ्ग बहुविदित हैं। इनके साथ ही सङ्गीत सुनाकर फ़स्लों से अधिक अन्न

१. कमलनयन, *धर्मयुग*, २५ अक्टूबर १९८१ ई०, पृ० २४-२५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तथा गायों से अधिक दूध प्राप्त करने के सफल प्रयोग किए जा चुके हैं। साधक सम्प्रदाय अनुभवों को छिपाये रखने में ही सुरक्षित रह पाता है अतः ऐसे प्रसङ्गों का अत्यन्त गूढ–गहन पक्ष मात्र गुरु–शिष्य तक सीमित रहता आ रहा है। सविधि दीक्षा प्राप्त सङ्गीत साधक जाने–अनजाने नारदपाञ्चरात्र के वाक्य "स्वप्न में अथवा आखों के सामने यदि क़ोई आश्चर्यजनक अथवा अत्यन्त हर्षदायक दृश्य आ जाय तो गुरु के अतिरिक्त और किसी से नहीं कहना"[1] का पालन करते आ रहे हैं।

✤

१. स्वप्ने वाक्षि समक्षं वा आश्चर्यमतिहर्षदम्।
अकस्माद् यदि जायेत न ख्यातव्यं गुरोर्विना॥ नारद पाञ्चरात्र

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुवित्ति

मन से उत्पन्न रागों में केवल निर्मल मन द्वारा स्फूर्त राग ही प्रचार में रहते आ रहे हैं। रागरस की अनुभूति का नितान्त 'सज्जन' सीमित होने का यही कारण है। रस विशेष का आस्वादन चित्तविशेष द्वारा ही सम्भव है। स्वर और श्रुतियों के सुमिश्रण से उद्भूत राग ही सज्जन शंसित हुए हैं। ३३ सञ्चारी भावों एवं नवरसों की अनुभूति-संवहन में असमर्थ केवल गणित सिद्ध राग ही अब तक प्रचलित होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। राग और तालों की अनन्तता का आशय गणित का चमत्कार नहीं है। गायन और गलेबाज़ी में फ़र्क़ है। द्रुत, द्रुततर और द्रुततमलय की अति, मणिप्रभा को मणि मान बैठना है। अध्यात्म तत्त्व के विनाशकों में इसका प्रमुख हाथ है।

श्री कन्नोमल का सुझाव, गेय साहित्य रागरसपोषक हो सर्वथा उचित है। पिछले साठ वर्षों की गेय रचनाएँ अपेक्षया सुधरी हुई हैं। तथापि अनेक प्राचीन रचनाएँ साबर मन्त्रों की भाँति 'अनमिल आखरों' से रचित हैं। आशु फलदायक। परंपरया उपासित इन रचनाओं की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

स्वरों के रंग विज्ञानप्रमाणित हो चुके हैं। रागों के ध्यान[१] द्वारा अनुभूत एवं वर्णित चित्र सर्वथा सार्थक हैं। एक राग के विभिन्न ध्यान, अनके ध्यानियों द्वारा अनुभूत तथ्यों पर आधारित हैं। 'जाकी रही भावना जैसी'।

पं० विष्णुनारायण भातखण्डे (सङ्गीत शास्त्र, भाग १, पृ० ५५) के अनुसार, जौनपुर का सुल्तान, हुसैन शर्की ख़याल का आविष्कर्ता नहीं है। ठाकुर जयदेव सिंह ने इसे सर्वथा पुष्ट कर दिया है। पं० भातखण्डे (सङ्गीत शास्त्र, भाग १, पृ० ४९) रागों के प्रयोगकाल को मान्यता देते हैं। किन्तु सङ्गीत श्रवण-प्रसारण के वैज्ञानिक उपकरणों के दुरुपयोग ने रागों के असमय प्रयोग को बढ़ावा दिया है।

पं० रविशङ्कर के अनुसार समस्त विश्व की लोकधुनें केवल ३०-४० मुख्य बानगियों पर आधारित हैं। इनके आधार से रचित-विकसित राग सैकड़ों-हज़ारों में मात्र गणितजन्य होंगे। व्यङ्कटमखी के ७२ थाट मात्र शास्त्रसीमित हैं। इनमें सभी गायन योग्य नहीं हैं। नवसृजित राग प्रायः दो या अधिक रागों के

---

१. ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते, *भगवद्गीता*—१२/१२/मनु १/१२, ६/७२/

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मिश्रण हैं। नये रागरचयिता अपनी रचना के पूर्ण प्रचार हेतु सौ वर्षों की अवधि निश्चित करते हैं। किन्तु हेमन्त, वैरागी भैरव, मधुवन्ती, जोग और चन्द्रनन्दन आदि राग देखते-देखते प्रचलित हुए हैं। अक्षोभ्य और अप्रचलित रागों की तालिका पहले से चली आ रही है। प्रश्न उठता है, कहीं नव-सृजन के उत्साह में हम उक्त तालिका को ही और लम्बी तो नहीं कर रहे हैं ? जो हो।

पिछले ३०० वर्षों में प्रयोग और नवसृजन द्वारा की गई सङ्गीत सेवा का श्रेय मात्र घरानों को है। वर्तमान में हमें पं० भीमसेन जोशी द्वारा सत्यशील देशपाण्डे से कही गई इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है। "प्रत्येक दशक में गायकी परिवर्तित होती है, यह एक बात सभी कलाकारों को स्मरण रखनी चाहिए।"[१] उक्त बात वादन और नर्तन पर समान रूप से लागू है।

अनाहत, निराकार, ॐकार, पश्यन्ती और परा के संघात से अनवरत प्रवाहित सङ्गीत मात्र अनुभवगम्य है। नाद उपासकों के सङ्गीत के विषय में मध्यमा एवं वैखरी कितना ? क्या ? और कैसे कहेंगी ? अन्ततः केवल यही कहा जा सकता है—

आबरू ली क़लम उठाने ने,
लाइक़ी जान ली ज़माने ने।
थी ख़ामोशी बयान से अच्छी,
बात खो दी ज़बाँ हिलाने ने॥

✤

1. As told to Satyasheel Deshpandey, From The Marthi Book, *Swaradhirai*, "Every Decade singing changes. This is something that all artists should remember". Bhimsen Joshi.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिशिष्ट

उस्ताद यूसुफ़ अली ख़ाँ का मानपत्र

सत्यमेवजयते

श्री यूसुफ़ अली ख़ां

१९५८ में

हिन्दुस्तानी संगीत के प्रमुख वादक स्वीकृत हुए हैं जिसके उपलक्ष में यह सनद उन्हें दी जाती है

राष्ट्रपति भवन
१२ मार्च, १९५८

[illegible]
राष्ट्रपति
भारत गणराज्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वरलिपि चिह्न

मध्य सप्तक—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि।
मन्द्र सप्तक—	सा̣	रे̣	ग̣	म̣	प̣	ध̣	नि̣।
तार सप्तक—	सां	रें	गं	मं	पं	धं	निं।
शुद्ध स्वर—	सा	रे	ग	म	प	ध	नि।
कोमल स्वर—	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध॒	नि॒।

मध्यम स्वर स्वयं कोमल है अतः इसका विकृत रूप तीव्र म॑ होता है। वर्तमान पद्धति में षड्ज (सा) तथा पंचम (प) अचल स्वर स्वीकृत किए गए हैं। इनमें कोमल/तीव्र जैसा कोई परिवर्तन नहीं होता।

अप्रचलित शब्दार्थ—अध्याय ११, पृ० ८३/२१ के सीनक शब्द का सङ्गीत क्षेत्र में संभवतः मुसलमान गायकों द्वारा प्रयोग किया गया है। यहाँ इसका प्रयोग परिवर्तित अर्थ विशेष में हुआ है। मद्दाह के शब्दकोश के अनुसार इसका शुद्ध रूप सीकनक है। तुर्की का यह शब्द विशेषण है। इसका अर्थ है— आहिस्तः, धीरे, हौले।

✤

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सन्दर्भिका

१. शार्ङ्गदेव, *सङ्गीत रत्नाकर।*
२. *धम्मपद।*
३. *वृहदारण्यक।*
४. योगाङ्क, *कल्याण,* गीताप्रेस।
५. जगद्धरभट्ट, *स्तुति कुसुमाञ्जलि।*
६. *नाद विन्दूपनिषद्,* निर्णयसागर प्रेस, १९१७ ई०।
७. *ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्,* निर्णयसागर प्रेस १९१७ ई०।
८. *पतञ्जलि योगसूत्र,* गीताप्रेस।
९. *श्वेताश्वतर उपनिषद्।*
१०. पं० दामोदर, *सङ्गीतदर्पण,* सङ्गीत कार्यालय, हाथरस।
११. भर्तृहरि, *नीतिशतक।*
१२. आचार्य बृहस्पति, *ध्रुवपद और उसका विकास।*
१३. *मनुस्मृति।*
१४. *भरतनाट्यशास्त्र,* गायकवाड़, चौखम्बा।
१५. *माधुरी,* मासिक, वर्ष ४, खण्ड २, संख्या ५, दि० १७ जून १९२६ ई०।
१६. ठा० जयदेव सिंह, भूमिका, *भरत का सङ्गीत सिद्धान्त।*
१७. आचार्य बृहस्पति, *भरत का सङ्गीत सिद्धान्त।*
१८. आचार्य बृहस्पति, शास्त्र परिचय, *मूर्च्छनातत्त्व।*
१९. आचार्य बृहस्पति, *सङ्गीत चिन्तामणि,* प्रथम संस्करण।
२०. भवानी शङ्कर शुक्ल, *सङ्गीत बिलावल,* अङ्क १९५३ ई०।
२१. आचार्य कुन्तक, *वक्रोक्तिजीवितम्।*
२२. पं० अहोबल, *सङ्गीत पारिजात,* १९४१ ई० हाथरस।
२३. विवेकशुक्ल, *नवनीत* (मासिक) दिसम्बर १९९५ ई०।
२४. डा० जयसिंह नीरज, *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्णकाव्य।*
२५. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, *हिन्दी साहित्य का इतिहास।*
२६. डा० जयसिंह नीरज, *राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्णकाव्य।*
* रामगोपाल विजय वर्गीय, *राग-रागिनी,* संयुक्त राजस्थान, अक्टूबर-नवम्बर १९५७, पृ० ३१।
* संख्या २६ की पाद टिप्पणी से सङ्कलित, उषागुप्ता तथा सैन्धवी रागिनी।
२७. पार्श्वदेव, *सङ्गीत समयसार।*
२८. श्रीकृष्ण नारायण रत्नजङ्कर, लेख, *आज,* दैनिक।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२९. गजेन्द्र नारायण सिंह, लेख-ध्रुवपद परम्परा के अवशेष, *धर्मयुग,* १० जुलाई, १९८८ ई०।

३०. भातखण्डे, *सङ्गीतशास्त्र,* चतुर्थ भाग (हाथरस)।

३१. *सूरसागर,* खेमराज श्रीकृष्णदास, सं० १९९१ वि०।

३२. गो० तुलसीदास, *विनय पत्रिका,* गीताप्रेस।

३३. ठा० जयदेव सिंह, निबन्ध, 'ख़याल का विकास' *आज,* दैनिक, दि० २६ नवम्बर, १९६१ ई०।

३४. एच०ए० पॉली, *म्यूज़िक ऑफ इण्डिया।*

३५. एच०ए० फॉक्स स्ट्रैंग्वेज़, द *म्यूज़िक ऑफ हिन्दुस्तान,* कैलैरेन्डन प्रेस, ऑक्सफोर्ड १९१४।

३६. एच०पी० कृष्णराव, *साइकोलॉजी ऑफ इन्डियन म्यूज़िक,* बङ्गलौर, १९२३।

३७. स्वामी प्रज्ञानानन्द, *हिस्टारिकल डेवलपमेन्ट ऑफ इन्डियन म्यूज़िक।*

* संख्या ३४ से ३७ तक के ग्रन्थ 'सङ्गीत' के किसी विशेषाङ्क से सङ्कलित हैं। विस्मृतिवश सूचना नहीं दी जा सकी।

३८. डा० वी० चैतन्यदेव, 'मेलॉडिक परसेप्शन', *जर्नल ऑफ म्यूज़िक एकेडमी,* मद्रास, १९६४, ६५, पृ० ११२-१५।

३९. प्रो० ललितकिशोर सिंह, *ध्वनि और सङ्गीत।*

४०. पं० ओम्कारनाथ ठाकुर, *सङ्गीत,* लोकसङ्गीत अङ्क, १९६६ ई०।

४१. पं० कुमार गन्धर्व, (भारतीय सङ्गीत का मूलाधार) *लोकसङ्गीत अङ्क,* जनवरी १९६६ ई०।

४२. पं० रविशङ्कर, *लोकहृदय की धड़कनें,* 'नवनीत' नवम्बर १९६७ ई०।

४३. श्री सरयूप्रसाद द्विवेदी, *सप्तशती सर्वस्व,* पृ० ३७८।

४४. Ravishankar, *My Music : My Life,* p. 30.

४५. श्री सरयूप्रसाद द्विवेदी, *सप्तशती सर्वस्व,* पृ० १०२।

४६. म०म० गोपीनाथ कविराज, *कविराज-प्रतिभा,* पृ० १६९-७२।

४७. *अभिनवतालमञ्जरी।*

४८. पं० राजकिशोरमणि त्रिपाठी, *पाणिनीयोधातु पाठः,* पृ० २२७।

४९. वी० के० नारायण मेनन, *सङ्गीत,* सितम्बर, १९८५ ई०, पृ० २६।

५०. शान्तिभिक्षु शास्त्री, *ललित विस्तर,* पृ० १७६, उ० प्र० हि० संस्थान।

५१. सङ्गीतमकरन्द, माध्यम-सङ्गीत, जनवरी-फरवरी १९६५ ई०।

५२. डा० योगमाया शुक्ल, तबला : उद्गम, *विकास और शैलियाँ,* पृ० १०९।

५३. डा० सुशीलकुमार चौबे, *सङ्गीत के घरानों की चर्चा।*

५४. डा० शत्रुघ्न शुक्ल, *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ।*

५५. नौशाद अली, लखनऊ की गायकी और कथक, *नया दौर* (अवध अङ्क)।

५६. तजम्मुल हुसैन खाँ, लखनऊ के घराने, *नया दौर* (अवध अङ्क)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५७. *काव्य प्रकाश,* संस्कृत हिन्दीकोश (आप्टे)

५८. *साहित्य दर्पण,* संस्कृत हिन्दीकोश (आप्टे)

५९. भातखण्डे, *सङ्गीत शास्त्र।*

६०. पं० भोलादत्त जोशी, *सङ्गीतशास्त्र तथा रागमाला,* सरोज प्रकाशन, दिल्ली।

६१. *रागकोश,* चतुर्थ संस्करण, फरवरी १९९० ई० सङ्गीत कार्यालय, हाथरस।

६२. सङ्गीत, *बिलावल अङ्क* (१९५३), *कल्याण* (१९५४), *खमाज विशेषाङ्क* (१९५६), हाथरस।

६३. श्री विनायक राव पटवर्धन, *राग विज्ञान,* भाग ७, १९७१ ई०।

६४. टी० आर० शुक्ल, नवनिर्मित एवं अप्रचलित रागमञ्जरी एवं शास्त्र।

६५. श्री कैलाश वृत्तिया, *सङ्गीत,* जून १९५६ ई०।

६६. पं० हंसराज, *सङ्गीत,* जनवरी १९४० ई०।

६७. श्री ज० दे० पत्की, *सङ्गीत,* अगस्त १९५६ ई०।

६८. श्री कुमारगन्धर्व, *सङ्गीत,* अप्रैल १९७० ई०।

६९. भगवत शरण शर्मा, पं० रविशङ्कर और उनके कुछ राग, *सङ्गीत,* अप्रैल, १९७०, पृ० ३४, ३५, ५६।

७०. बुद्धदेव दास गुप्ता, साक्षात्कार, *छायानट,* अङ्क ७०, जुलाई–सितम्बर १९९४ ई०।

७१. के० डी० दीक्षित, आकाशवाणी विशेषाङ्क, १ अगस्त १९७७ ई०।

७२. आचार्य बृहस्पति, महान् भारतीय हृदय : अमीर ख़ुस्रो, साप्ताहिक, *हिन्दुस्तान,* ९ नवम्बर, १९७५ ई०।

७३. Stella Kramrisch, *The Art of India.*

७४. Shreepada Bandyopadhyaya, *The Music of India.*

७५. *कल्याण,* साधनाङ्क, १९४० ई०, गीताप्रेस, गोरखपुर।

७६. स्वामी शिवानन्द, *जपयोग।*

७७. कमलनयन, *धर्मयुग,* २५ अक्टूबर १९८१ ई०।

७८. *नारद पाञ्चरात्र।*

७९. अभिनव गुप्त, *अभिनव भारती।*

✤

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

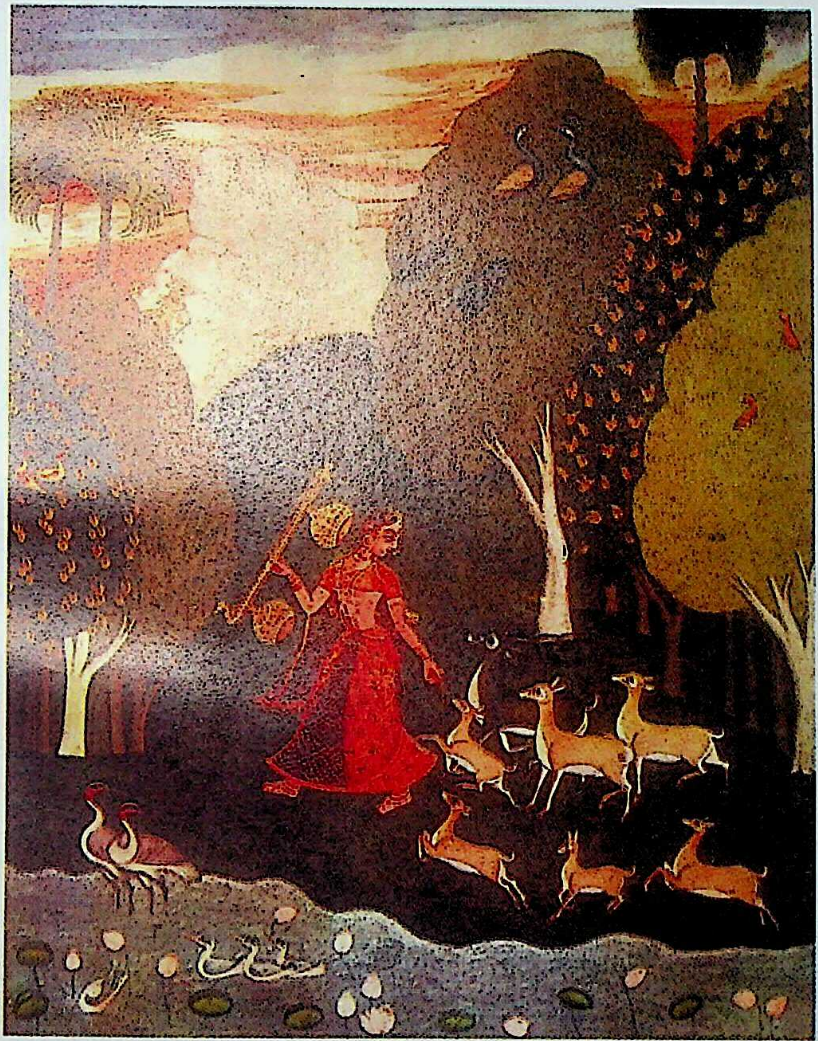

रागिनी तोड़ी

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

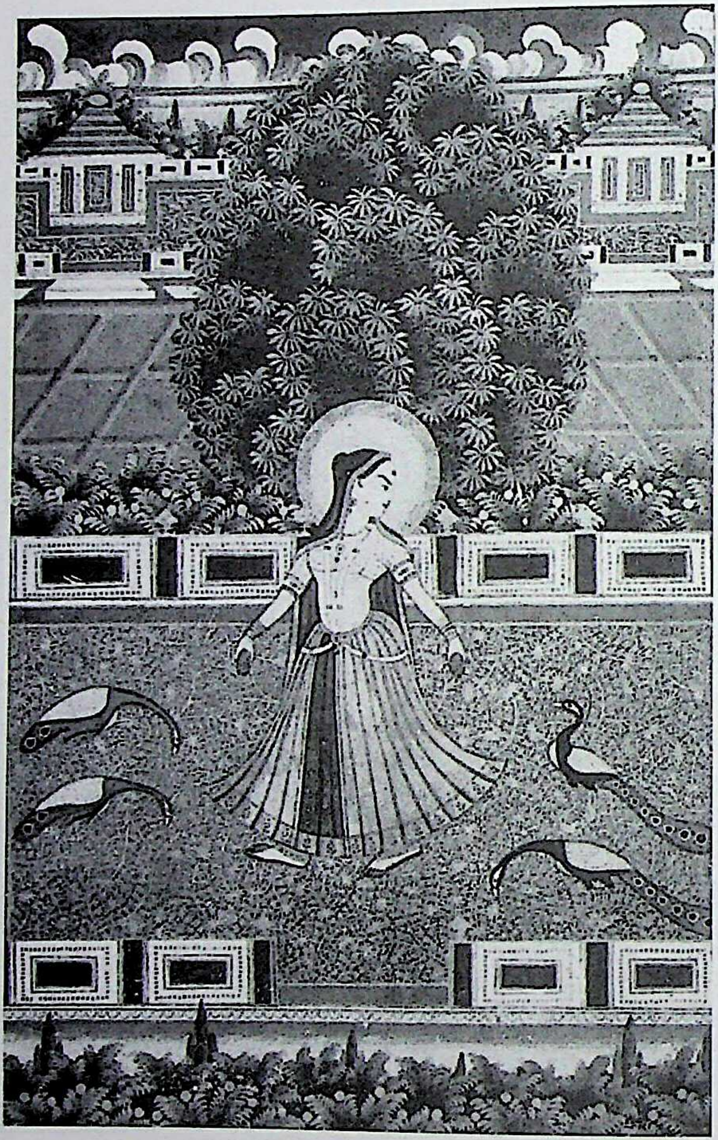

रागिनी कुकुभ

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राग मेघ

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

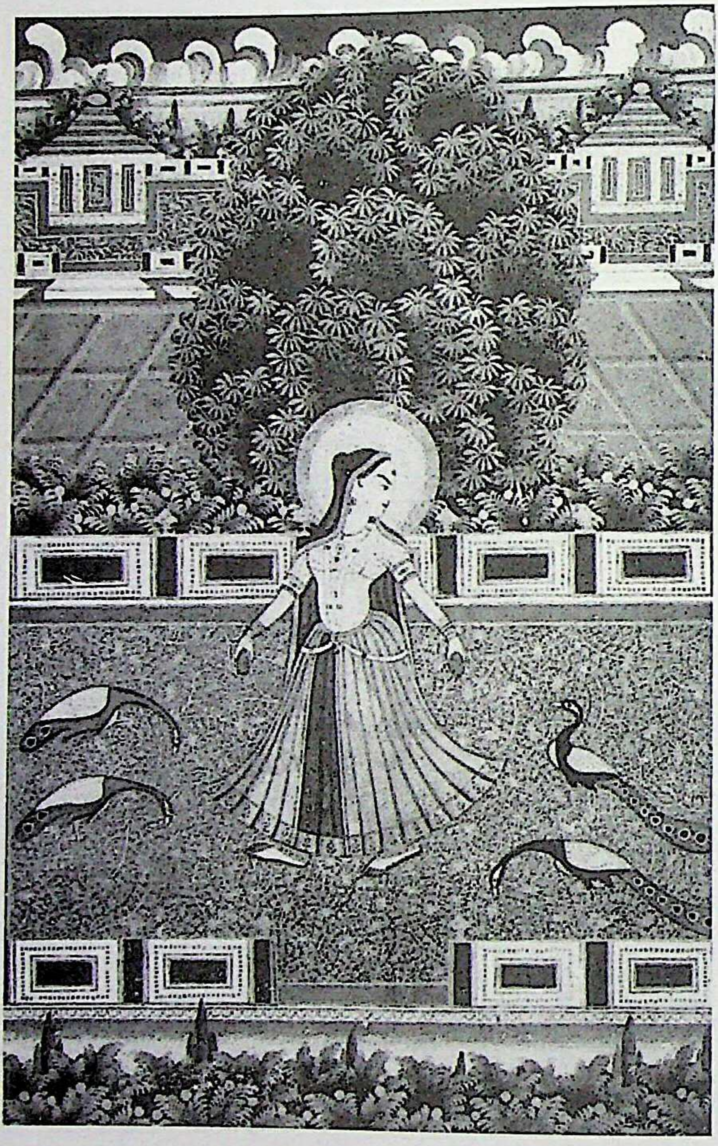

रागिनी कुकुभ

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राग मेघ

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

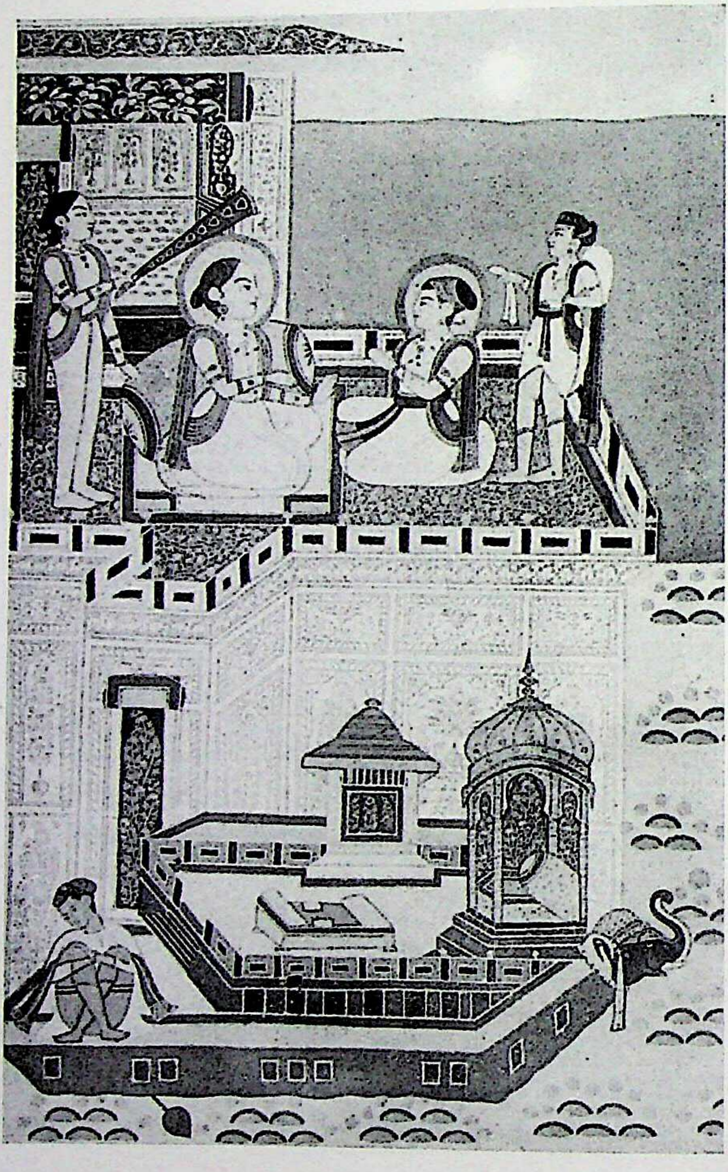

रागिनी केदार

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

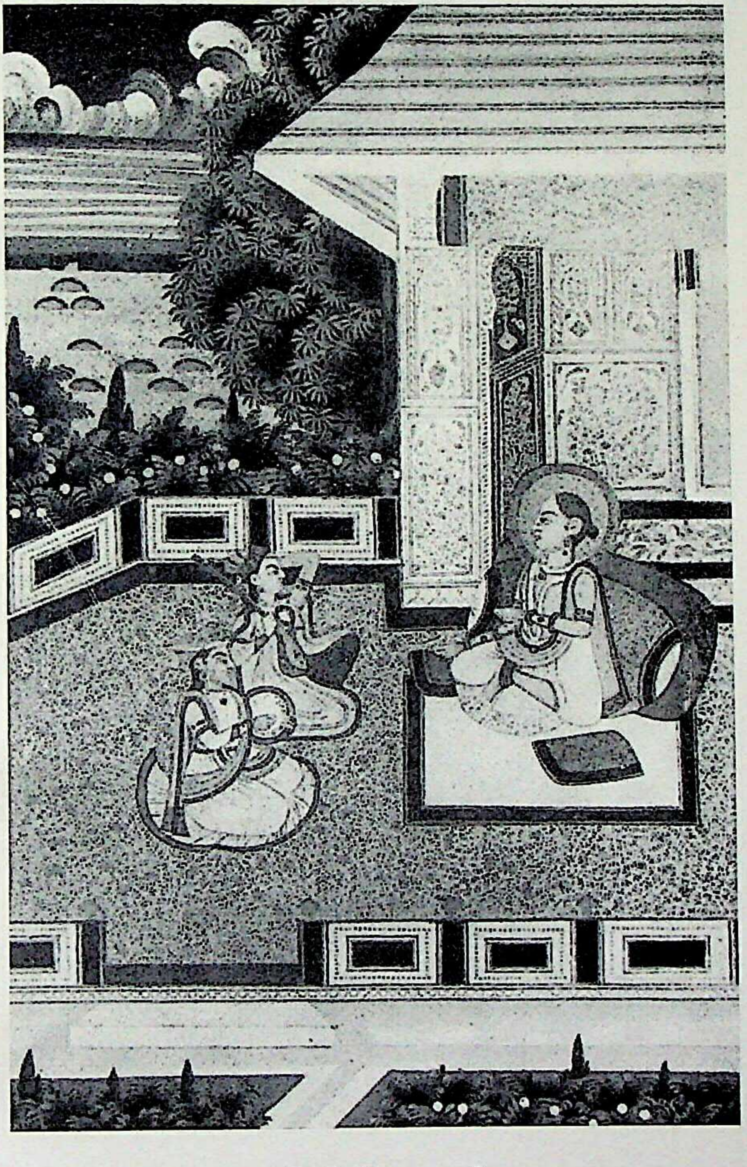

रागिनी देवगान्धारी

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

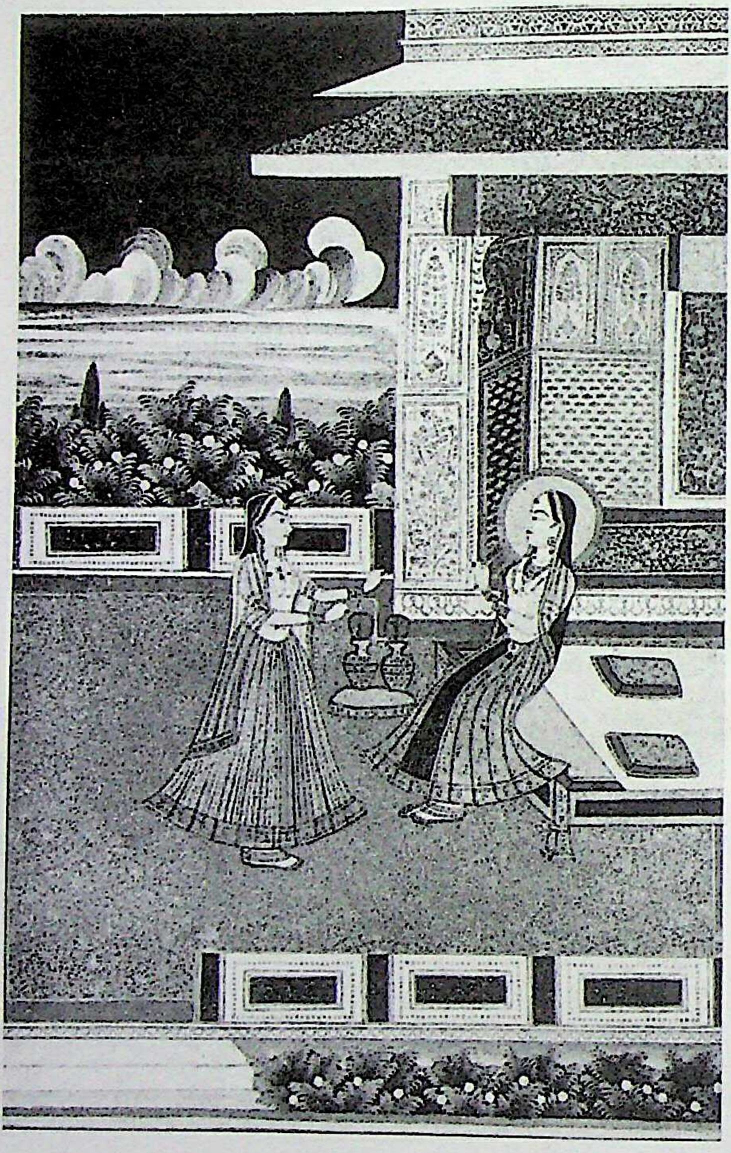

रागिनी मालश्री

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रागिनी गुनकली

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

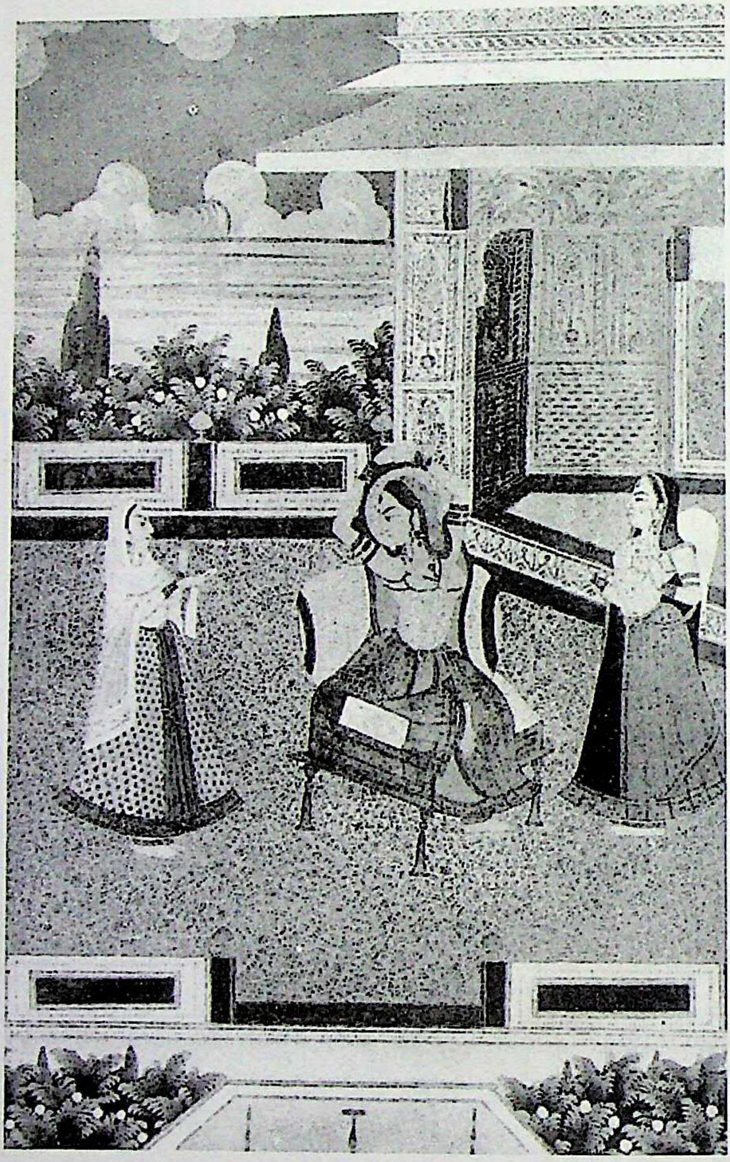

रागिनी पूर्वी

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

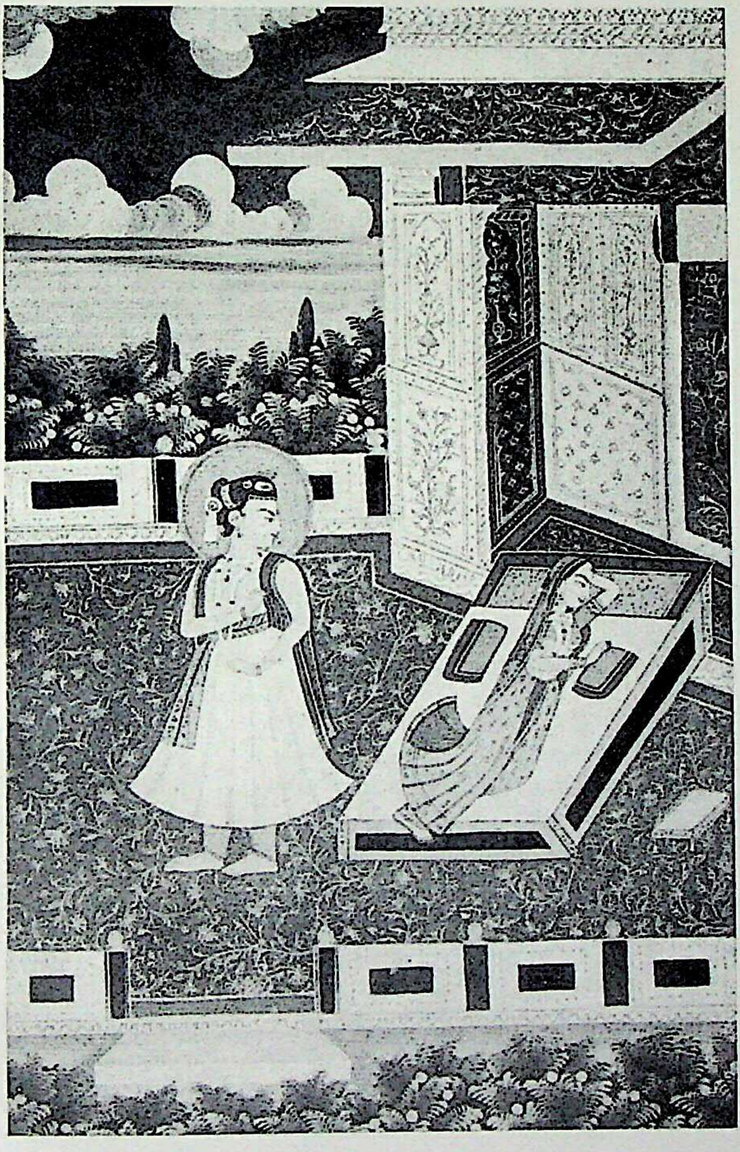

रागिनी ललिता (ललित)

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

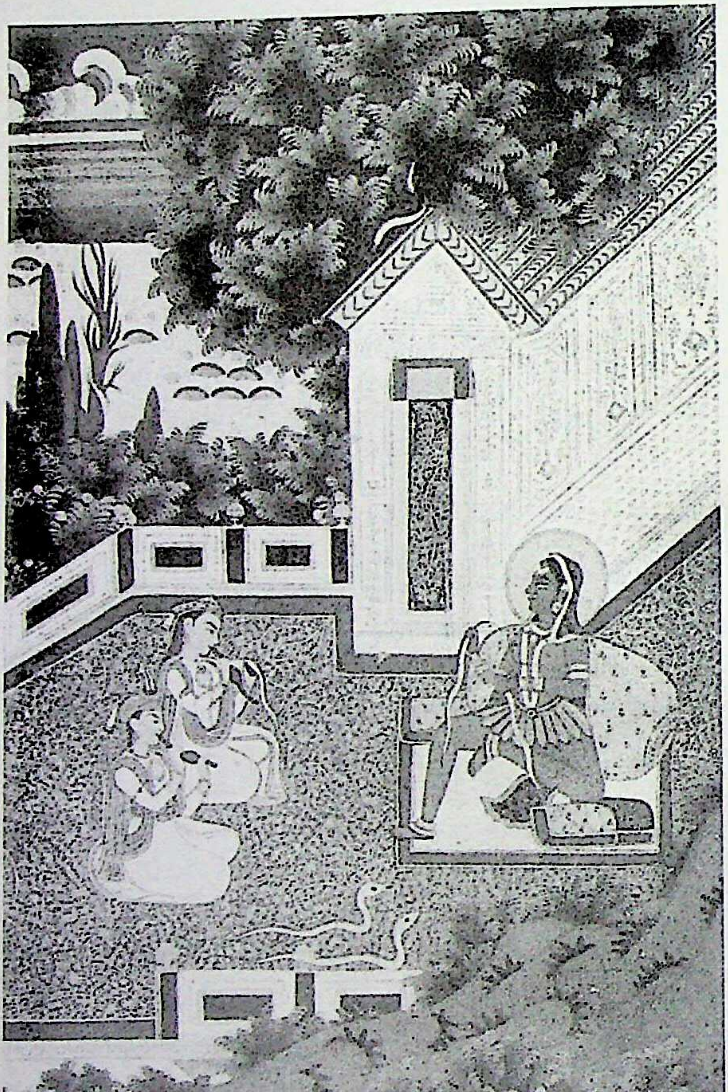

रागिनी आसावरी

पृ० ११६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

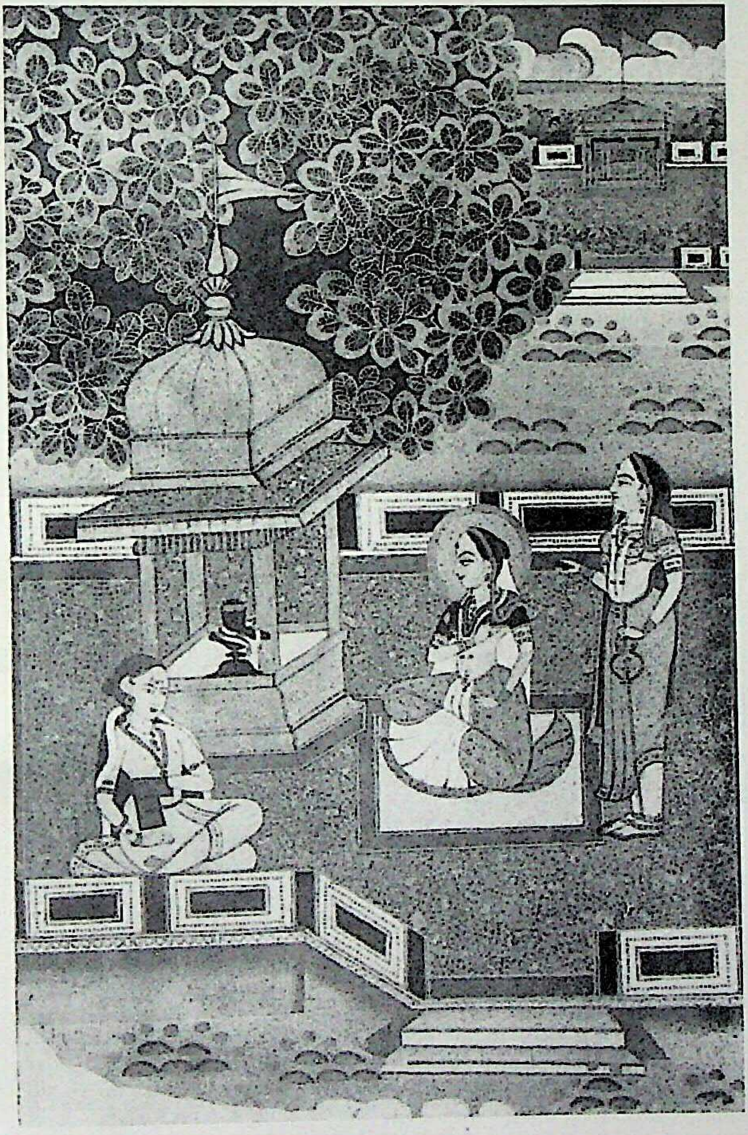

रागिनी भैरवी

पृ० ११७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

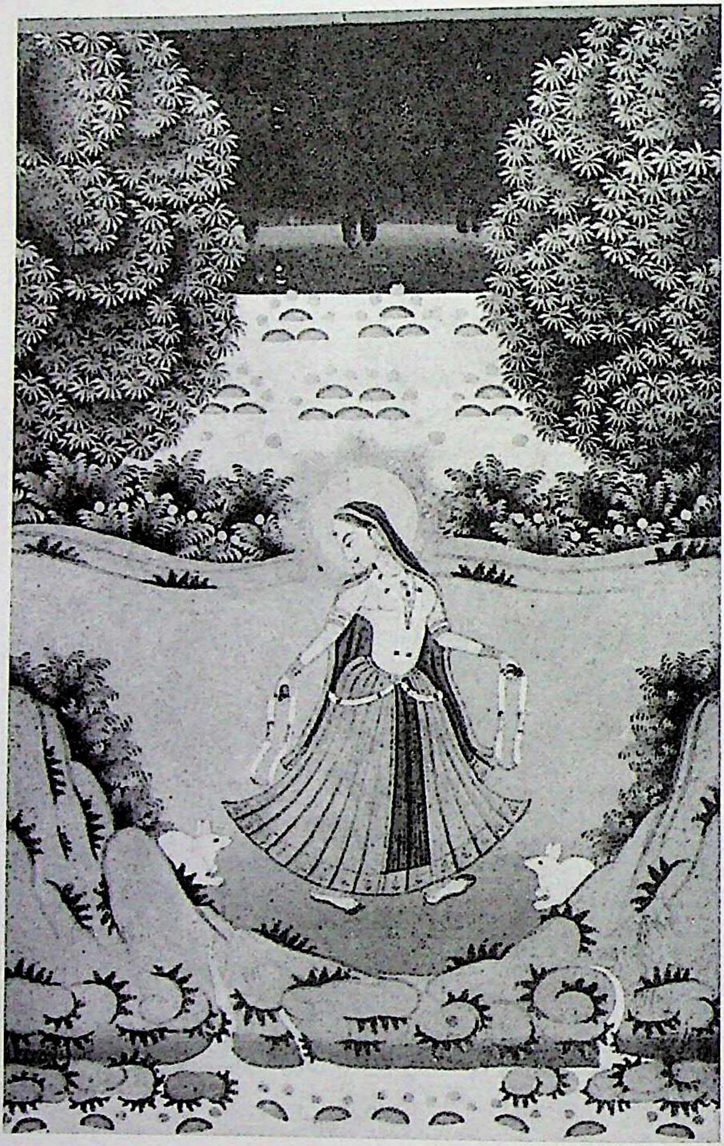

रागिनी कामोद

पृ० ११७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

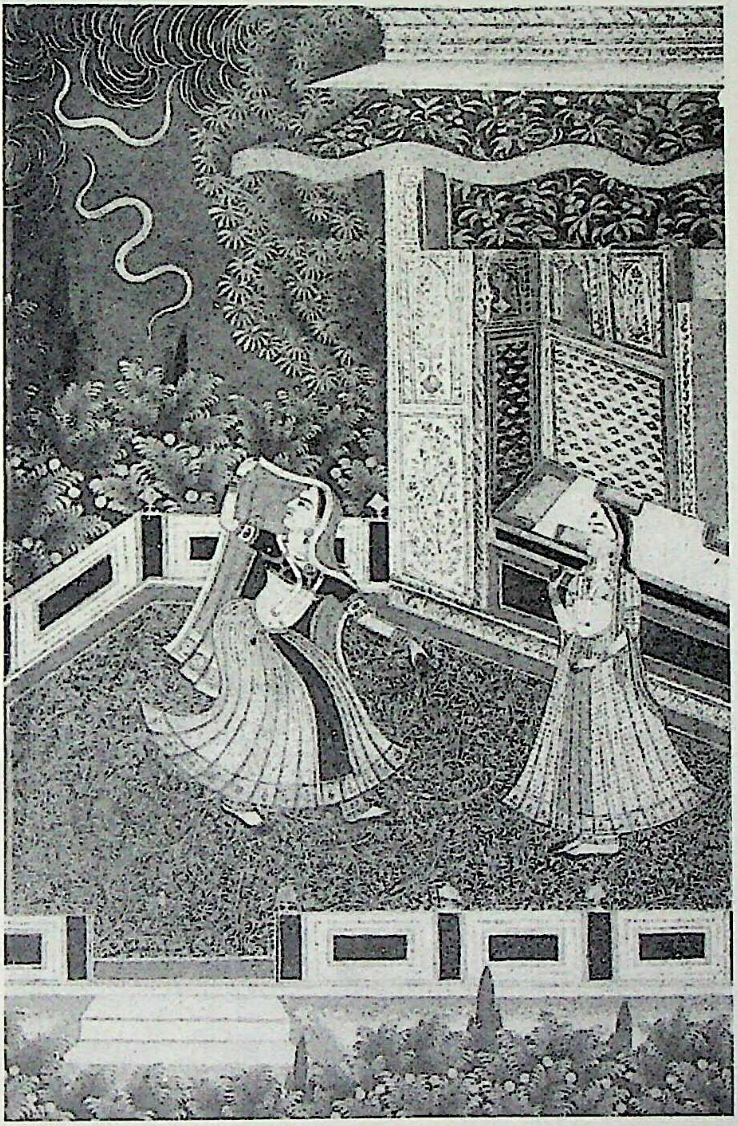

रागिनी मधुमाधवी

पृ० ११७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रागिनी बंगाली

पृ० ११७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

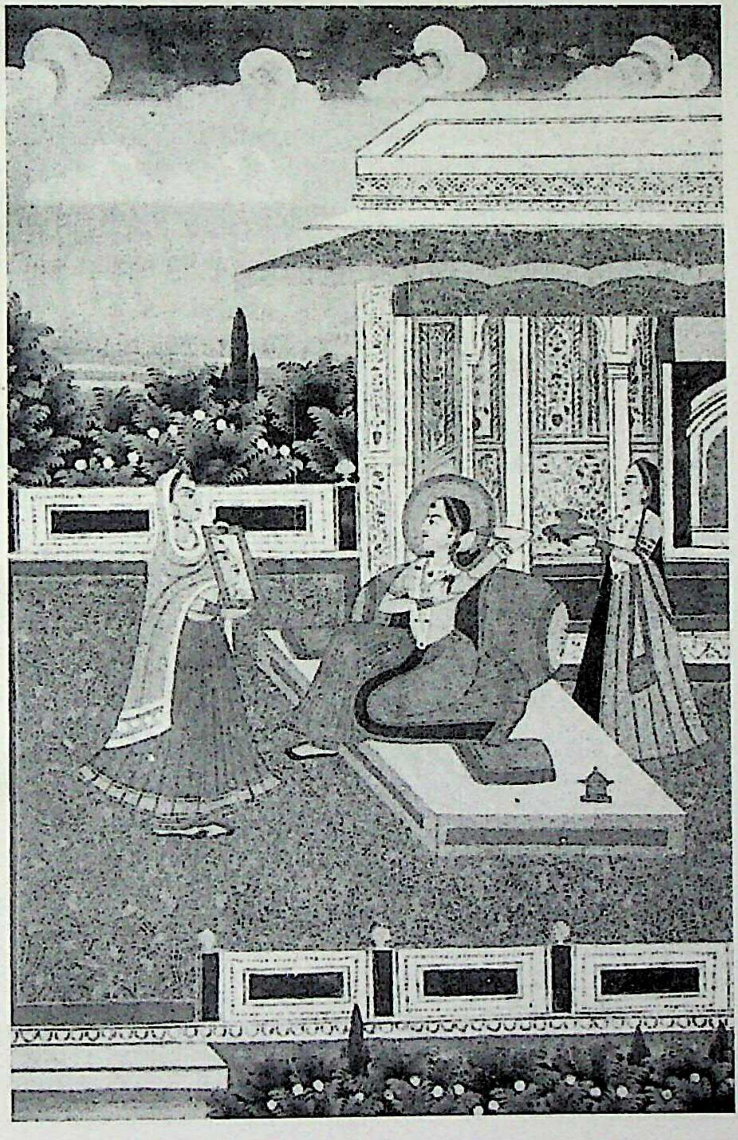

रागिनी बेलावली

पृ० ११७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

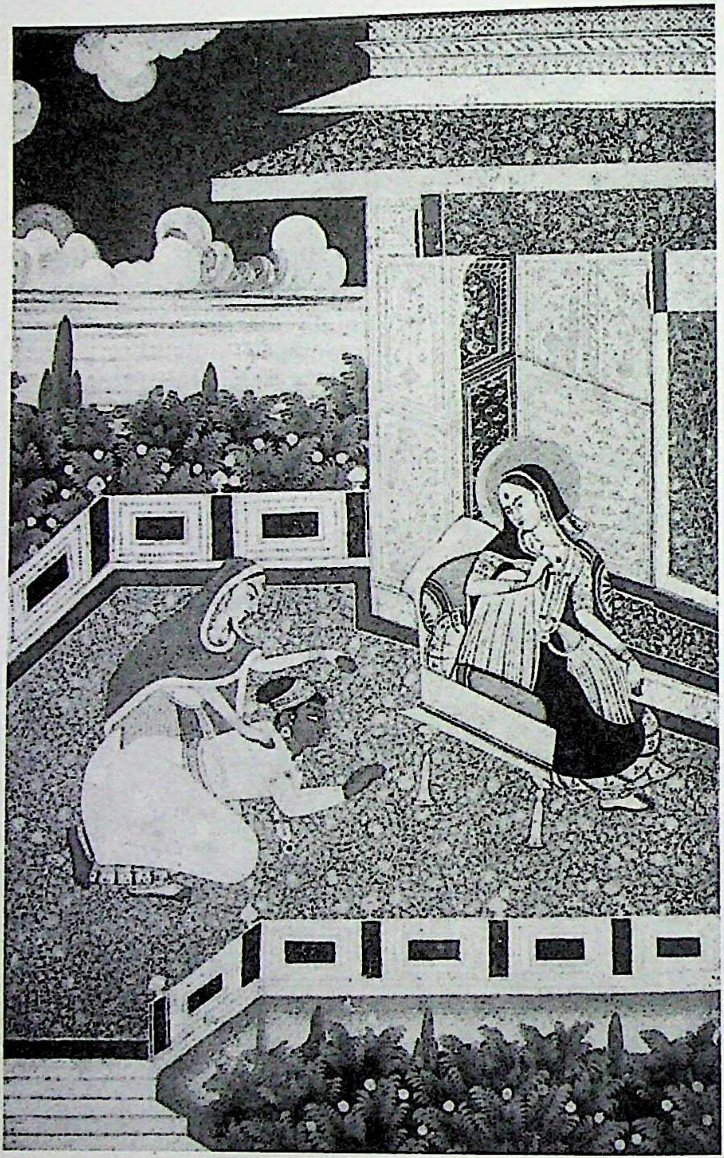

रागिनी रामकली

पृ० ११७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

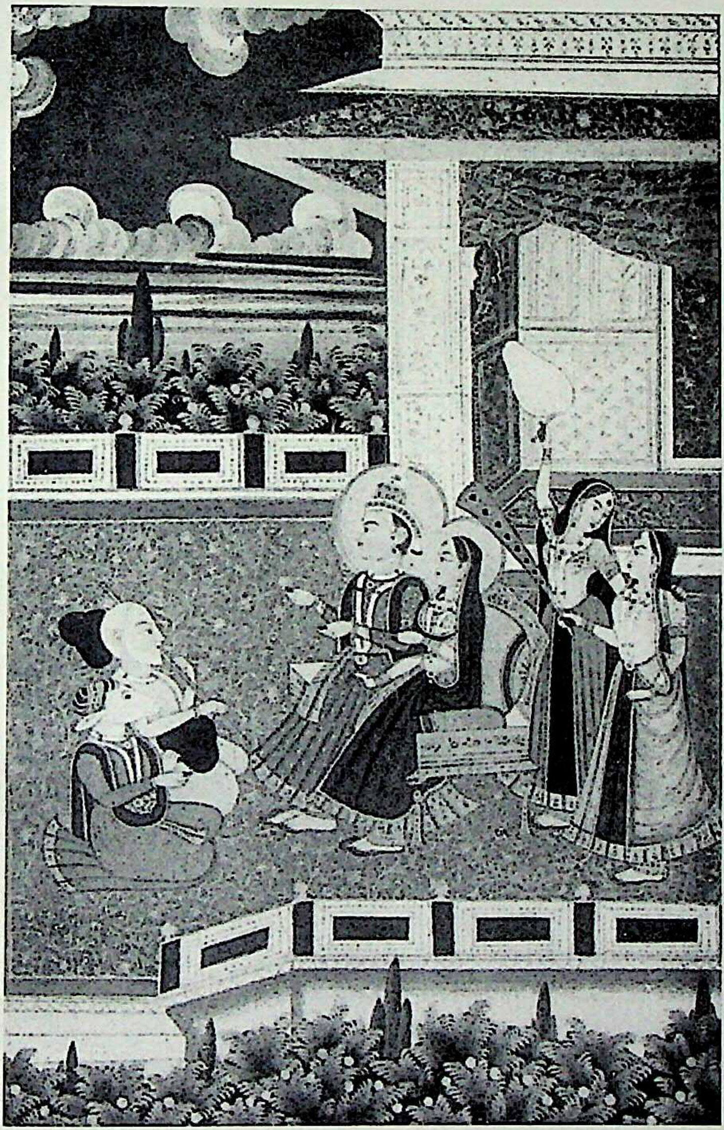

'श्री' राग

पृ० ११७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रागिनी गौड मल्लार

पृ० ११८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

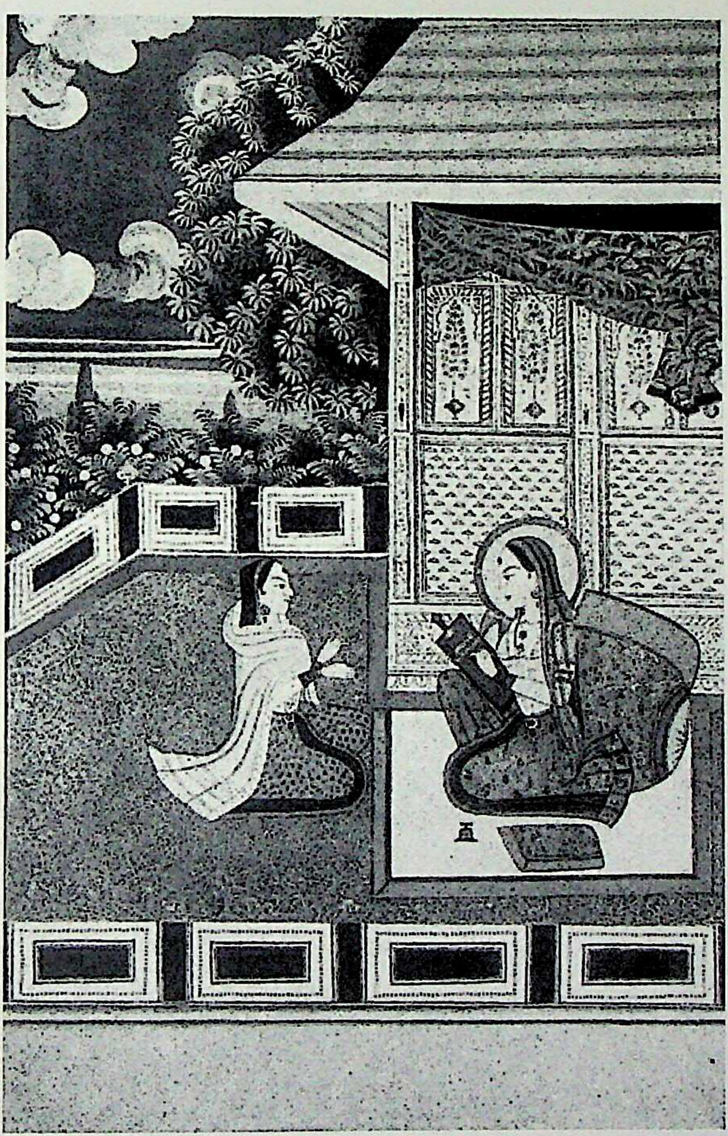

रागिनी धनाश्री

पृ० ११८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राग वसन्त

पृ० ११८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

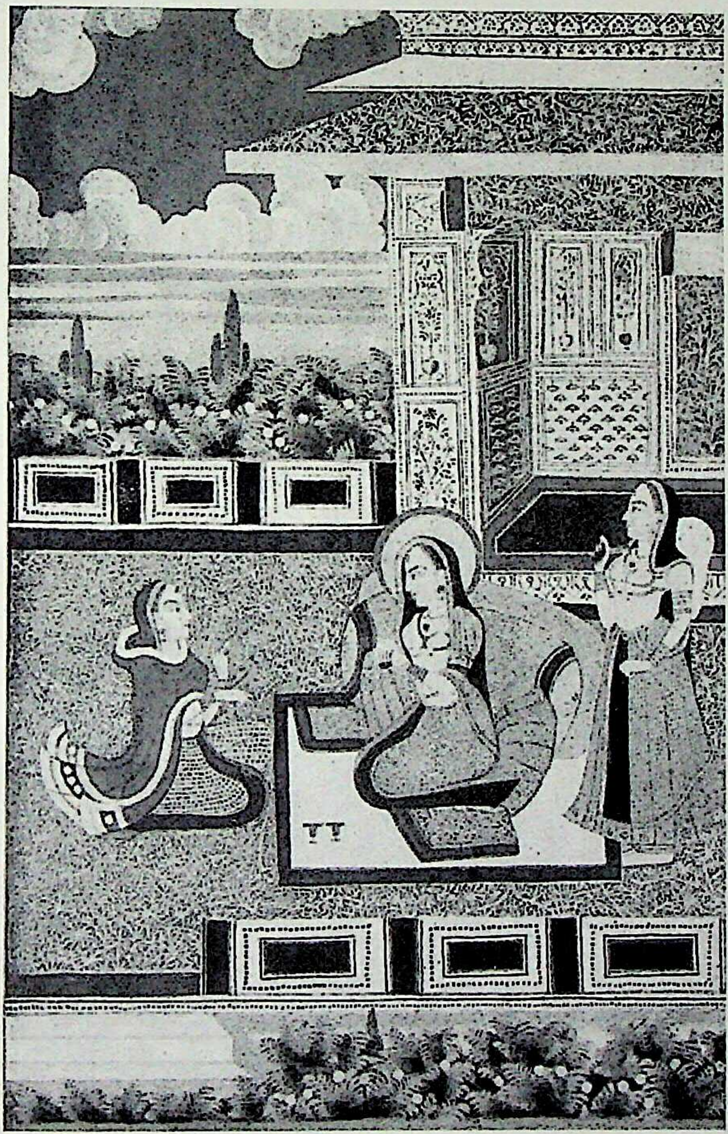

रागिनी पटमञ्जरी

पृ० ११८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रथम सितार शिष्य बनवारीलाल टेकड़ीवाल

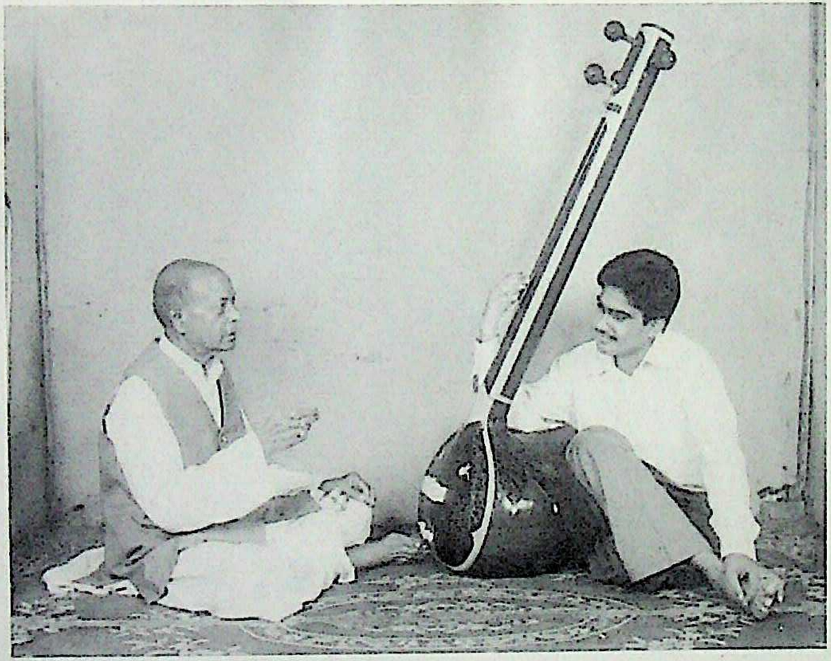

अप्रमेय मिश्र (सम्प्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत छात्र) को गायन सिखाते हुए

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अमेरिकी शिष्य क्रिस साउथॉफ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लेखक की अन्य कृतियाँ

ब्राह्मण समाज का ऐतिहासिक अनुशीलन

आचार्य नरेन्द्रदेव नामित पुरस्कार प्राप्त

✧

'एक संस्कृति : एक इतिहास

"एक संस्कृति : एक इतिहास एक सङ्क्रमण-कालीन, क्षेत्रीय, आचारवान् ब्राह्मणों की संस्कृति और उनका इतिहास तो है ही, लेखन की एक नई विधा भी है।"

प्रो० विशुद्धानन्द पाठक
पूर्व प्रोफेसर, इतिहास विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai